हिन्दी का महिला नाटक : एक अध्ययन (कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के विशेष संदर्भ में)

HINDI KA MAHILA NATAK : EK ADHYAYAN (KUSUM KUMAR AUR NADIRA ZAHEER BABBAR KE VISHESH SANDARBH MEIN)

शोध प्रबंध

THESIS

कालिकट विश्वविद्यालय की डॉक्टर ऑफ फिलासफ़ी हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध

Thesis
Submitted to the University of Calicut
for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI
2016

निर्देशिका:	प्रस्तुतकर्ता:
डॉ. एम.के. अजिताकुमारी	**स्मिता. टी**
भूतपूर्व आचार्या	शोध छात्रा
सरकारी आर्ट्स व साईन्स कॉलज	सरकारी आर्ट्स व साईन्स कॉलज
कालिकट	कालिकट

कालिकट विश्वविद्यालय

Dr. M.K. AJITHAKUMARI
Associate Professor (Rtd), The PG Dept. of Hindi & Research Centre
Govt. Arts & Science College
Meenchanda
Calicut-18

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **'Hindi Ka Mahila Natak : Ek Adhyayan (Kusum Kumar aur Nadira Zaheer Babbar Ke Vishesh Sandarbh Mein)'** is a bonafide record of research work carried out by **Smt. Smitha. T,** under my supervision and that no part of this thesis has hitherto been submitted for a Degree in any University.

Place: Calicut
Date :

Dr. M.K. Ajithakumari
(Supervising Teacher)

DECLARATION

I, **Smitha. T**, do hereby declare that this thesis entitled **'Hindi Ka Mahila Natak : Ek Adhyayan (Kusum Kumar aur Nadira Zaheer Babbar Ke Vishesh Sandarbh Mein)'** is a record of bonafide research carried out by me and this has not been submitted by me for the award of any Degree, Diploma, Title or Recognition before.

Place: Calicut
Date :

Smitha. T
Research Scholar
PG Dept. of Hindi &
Research Centre
Govt. Arts & Science College
Meenchanda
Calicut-18

विषयसूची

पृ. सं.

प्राक्कथन

प्रथम अध्याय

हिन्दी का महिला नाटक : एक सर्वेक्षण **1-58**

1.1 नाटक अर्थ एवं परिभाषा

1.1.1 भारतीय चिंन्तकों के मत

1.1.2 पाश्चात्य विद्धानों की राय में

1.2 नाटक का स्वरुप

1.3 नाटक के तत्व

1.3.1 कथावस्तु

1.3.2 पात्र व चरित्र चित्रण

1.3.3 कथोपकथन

1.3.4 वातावरण

1.3.5 भाषा

1.3.6 रंगमंचीयता

1.3.7 उद्देश्य

1.4 हिन्दी नाटक ऐतिहासिक परिदृश्य

1.4.1 पूर्व भारतेन्दु युग

1.4.1.1 जननाटक

1.4.1.2 कुशीलव का कथा गायन परंपरा

1.4.1.3 यात्रा और शोभायात्रायें

1.4.1.4 चारण परंपरा

1.4.1.5 स्वांग
1.4.1.6 रास
1.4.1.7 संस्कृत नाट्य परंपरा
1.4.1.8 लोक नाटक
1.4.1.9 हिन्दी के प्रारंभिक नाटक
1.4.1.10 हिन्दी नाटक परंपरा
1.4.1.11 भारतेन्दु पूर्व नाटक
1.4.2 भारतेन्दु युग
1.4.3 प्रसाद युग
1.4.4 प्रसादोत्तर
1.4.5 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक
1.5 हिन्दी में महिला लेखन
1.6 हिन्दी महिला नाटककार
1.6.1 श्रीमती लाली देवी
1.6.1.1 गोपीचंद
1.6.2 श्रीमती अनुरुपा देवी
1.6.2.1 कुमारिल भट्ट
1.6.3 कुटुमप्यारी देवी सक्सेना
1.6.3.1 वीर सती सरदार बाई
1.6.4 श्रीमती तारा प्रसाद वर्मा
1.6.4.1 आजकल
1.6.5 श्रीमती शिवकुमारी देवी
1.6.5.1 चन्द्रगुप्त
1.6.6 श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल
1.6.6.1 आदित्यसेन गुप्त

1.6.6.2 अमिया
1.6.6.3 अनंता
1.6.6.4 लक्ष्मी बाई
1.6.6.5 भीगी पलकें
1.6.6.6 आँधी और तूफान
1.6.6.7 माँ की लाज
1.6.7 डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र
1.6.8 शोभना भूटानी
1.6.8.1 शायद हाँ
1.6.9 मन्नु भंडारी
1.6.9.1 बिना दीवारों का घर
1.6.10 मृदुला गर्ग
1.6.10.1 एक ओर अजनबी
1.6.10.2 तुम लौट आओ
1.6.10.3 जादू का कालीन
1.6.11 शीला भाटिया
1.6.11.1 दर्द आयेगा दबे पाँव
1.6.12 शांती महरोत्रा
1.6.12.1 ठहरा हुआ पानी
1.6.13 विमला प्रभाकर
1.6.13.1 भरत की आत्मा
1.6.14 मृणाल पांडे
1.6.14.1 मौजूदा हालात को देखते हुए
1.6.14.2 जो राम रचि राखा
1.6.14.3 आदमी जो मछुआरा नहीं था

1.6.14.4 चोर निकल के भागा
1.6.14.5 मुक्ति कथा
1.6.15 त्रिपुरारी शर्मा
1.6.15.1 काठ की गाडी
1.6.15.2 बहु
1.6.15.3 अक्स पहेली
1.6.15.4 रेशमी रुमाल
1.6.15.5 पोशाक
1.6.15.6 सन सत्तावन की किस्सा अजीजुन निसा
1.6.15.7 बांझ की घाटी
1.6.15.8 माँ का सपना
1.6.15.9 विक्रमादित्य का न्यायासन
1.6.15.10 एहसास
1.6.16 आशा वर्मा
1.6.16.1 आत्महत्या की दूकान
1.6.17 अयेशा अहमद
1.6.17.1 दादी की चारपाई
1.6.18 डॉ. गिरीश रस्तोगी
1.6.18.1 अपने हाथ बिकानी
1.6.18.2 असुरक्षित
1.6.19 डॉ. मधु धवन
1.6.19.1 मैने कब चाहा?
1.6.19.2 भूल
1.6.19.3 त्रास
1.6.19.4 भारत कहाँ जा रहा है?

1.6.20 उषा गांगुली

1.6.21 मीरा कांत

1.6.21.1 ईहामृग

1.6.21.2 नेपथ्यराग

1.6.21.3 भूवनेश्वर दर भुवनेश्वर

1.6.21.4 कन्धे पर बैठा था शाप

1.6.21.5 मेघप्रश्न

1.6.21.6 कालीबर्फ

1.6.21.7 अंत ज़ाहिर हो

1.6.21.8 हुमायूँ को उड जाने दो

1.6.22 विभा रानी

1.6.22.1 आओ तनिक प्रेम करें

1.6.22.2 अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो

उपसंहार

दूसरा अध्याय

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों का सामान्य परिचय **59-95**

2.1 कुसुम कुमार, व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2.1.1 व्यक्तित्व

2.1.2 कृतित्व

2.1.2.1 काव्य

2.1.2.2 उपन्यास

2.1.2.3 एकांकी

2.1.2.4 अनुवाद

2.1.2.5 पुरस्कार

2.1.3 नाट्य रचनायें
2.1.3.1 ओम क्रांति-क्रांति
2.1.3.2 सुनो शेफाली
2.1.3.3 संस्कार को नमस्कार
2.1.3.4 दिल्ली ऊँचा सुनती है
2.1.3.5 पवन चतुर्वेदी की डायरी
2.1.3.6 रावणलीला
2.1.3.7 लश्कर चौक
2.2 नादिरा ज़हीर बब्बर
2.2.1 व्यक्तित्व
2.2.2 निर्देशक के तौर पर
2.2.3 पुरस्कार
2.2.4 नाट्यरचनायें
2.2.4.1 सकुबाई
2.2.4.2 दयाशंकर की डायरी
2.2.4.3 जी जैसी आपकी मर्जी
2.2.4.4 सुमन और सना
2.2.4.5 आपरेशन क्लउडबर्स्ट
उपसंहार

तीसरा अध्याय

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में युगीन संदर्भ **96-178**

3.1 स्वातंत्र्योत्तर कालीन परिस्थितियाँ
3.1.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ
3.1.2 आर्थिक परिस्थितियाँ

3.1.3 सामाजिक परिस्थितियाँ

3.1.4 धार्मिक/सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

3.2 कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में चित्रित समस्यायें

3.2.1 राजनीतिक समस्यायें

3.2.1.1 राजनैतिक नेताओं की स्वार्थता

3.2.1.2 चुनाव कपटता का मापतौल

3.2.1.3 राज समाज नेताओं का दोहरा व्यक्तित्व

3.2.1.4 आदर्शहीन नेता

3.2.1.5 लालफीताशाही और भ्रष्टाचार

3.2.1.6 भारतीय सेना का अंतर्द्वन्द

3.2.1.7 आतंकवाद

3.2.1.8 पूर्वोत्तर राज्यों की समस्यायें

3.2.1.9 शरणार्थियों के संकट

3.2.2 आर्थिक समस्यायें

3.2.2.1 अर्थाभाव

3.2.2.2 महंगाई

3.2.2.3 अमीरों का खोखलापन

3.2.2.4 औद्योगीकरण

3.2.2.5 नौकरों का शोषण

3.2.3 सामाजिक समस्यायें

3.2.3.1 पारिवारिक विघटन

3.2.3.2 दांपत्य का विघटन

3.2.3.3 विवाह-एक तमाशा

3.2.3.4 तलाक की समस्या

3.2.3.5 प्रेम विवाह की सफलता
3.2.3.6 प्रेम का बदलता स्वरुप
3.2.3.7 पीढियों का संघर्ष
3.2.3.8 आत्महत्या
3.2.3.9 वैयक्तिक असफलता
3.2.3.10 पलायन वादिता
3.2.3.11 मानसिक असंतुलन
3.2.4 सांस्कृतिक समस्यायें
3.2.4.1 सांप्रदायिकता
3.2.4.2 जातीयता
3.2.4.3 कलाकारों की समस्यायें
3.2.4.4 झूठमूठ ज्योतिष
3.2.5 शैक्षिक समस्यायें
3.2.5.1 अध्यापकों की कर्तव्य हीनता
3.2.5.2 शिक्षा का व्यावसायीकरण
3.2.5.3 अध्यापक अनुशासन हीनता का उत्तम उदाहरण
3.2.5.4 अशिक्षा
3.2.5.5 शिक्षा का अपचय
निष्कर्ष

चौथा अध्याय

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में स्त्री विमर्श 179-223

4.1 स्त्री विमर्शः आशय एवं परिप्रेक्ष्य
4.2 कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बह के नाटकों में चित्रित नारी समस्यायें
4.2.1 समाज में नारी का अस्तित्व

4.2.2 समाजोद्धार की आड में नारी शोषण
4.2.3 यौनशोषण
4.2.4 नारी-एक बिकाऊ माल
4.2.5 नारी आतंकवाद और सांप्रदायिक दंगे का शिकार।
4.2.6 लिंगभेद की समस्या
4.2.7 गर्भच्छेद- भ्रूणहत्या
4.2.8 शिक्षित नारी
4.2.9 रुढियों में फसी हुई शिक्षित नारी
4.2.10 शिक्षा के अभाव से उत्पन्न समस्याएँ
4.2.11 नारी ही नारी का दुश्मन
4.2.12 नारी: आर्थिक विपन्नता का शिकार
4.2.13 पुरुष केन्द्रित समाज में नारी
4.2.14 वेश्यावृत्ति
4.2.15 पिता द्वारा बेटी का बलात्कार
4.2.16 आत्मविश्वास नारी का शास्त्र
निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय

शिल्पविधान **224-328**

5.1 वस्तुपक्ष
5.2 चरित्र चित्रण
5.2.1 पात्र और चरित्र की अवधारणा
5.3 संवाद एवं भाषा
5.4 रंगमंचीयता
5.5 ओम क्रांती क्रांती
5.5.1 वस्तुपक्ष

5.5.2 चरित्र-चित्रण
5.5.2.1 मिसिस दानी
5.5.2.2 मेनका जोशी
5.5.2.3 अनु
5.5.3 संवाद एवं भाषा
5.5.4 रंगमंचीयता
5.6 दिल्ली ऊँचा सुनती है
5.6.1 वस्तुपक्ष
5.6.2 चरित्र चित्रण
5.6.2.1 माधोसिंह
5.6.2.2 कमला
5.6.3 संवाद एवं भाषा
5.6.4 रंगमंचीयता
5.7 संस्कार को नमस्कार
5.7.1 वस्तुपक्ष
5.7.2 चरित्र चित्रण
5.7.2.1 संस्कार चंद
5.7.2.2 कामोबेन
5.7.3 संवाद एवं भाषा
5.7.4 रंगमंचीयता
5.8 सुनो शेफाली
5.8.1 वस्तुपक्ष
5.8.2 चरित्र चित्रण
5.8.2.1 शेफाली
5.8.2.2 सत्यमेव दीक्षित

5.8.3 संवाद एवं भाषा
5.8.4 रंगमंचीयता
5.9 पवन चतुर्वेदी की डायरी
5.9.1 वस्तुपक्ष
5.9.2 चरित्र चित्रण
5.9.2.1 पवन चतुर्वेदी
5.9.2.2 डॉ. चतुर्वेदी
5.9.3 संवाद एवं भाषा
5.9.4 रंगमंचीयता
5.10 रावणलीला
5.10.1 वस्तुपक्ष
5.10.2 चरित्र चित्रण
5.10.2.1 करताल सिंह
5.10.2.2 चेतराम
5.10.2.3 काशीराम
5.10.3 संवाद एवं भाषा
5.10.4 रंगमंचीयता
5.11 लश्कर चौक
5.11.1 वस्तुपक्ष
5.11.2 चरित्र चित्रण
5.11.2.1 रामदास
5.11.2.2 लीला
5.11.2.3 श्याम
5.11.3 संवाद एवं भाषा
5.11.4 रंगमंचीयता

5.12 सकुबाई
5.12.1 वस्तुपक्ष
5.12.2 चरित्र चित्रण
5.12.2.1 सकुबाई
5.12.3 संवाद एवं भाषा
5.12.4 रंगमंचीयता
5.13 दयाशंकर की डायरी
5.13.1 वस्तुपक्ष
5.13.2 चरित्र चित्रण
5.13.2.1 दयाशंकर
5.13.3 संवाद एवं भाषा
5.13.4 रंगमंचीयता
5.14 जी जैसी आपकी मर्जी
5.14.1 वस्तुपक्ष
5.14.2 चरित्र चित्रण
5.14.2.1 सुल्ताना
5.14.2.2 बबली टंठन
5.14.2.3 छुटकी दीपा
5.14.2.4 वर्षा पोटे
5.14.3 संवाद एवं भाषा
5.14.4 रंगमंचीयता
5.15 सुमन और सना
5.15.1 वस्तुपक्ष
5.15.2 चरित्र चित्रण
5.15.2.1 सुमन

5.15.2.2 सना

5.15.2.3 मु.अली

5.15.2.5 यूसुफ

5.15.3 संवाद एवं भाषा

5.15.4 रंगमंचीयता

5.16 आपरेशन क्लाउडबर्स्ट

5.16.1 वस्तुपक्ष

5.16.2 चरित्र चित्रण

5.16.2.1 मे. गेयकवाड

5.16.2.2 मोरोमी

5.16.2.3 हव राठी

5.16.3 संवाद एवं भाषा

5.16.4 रंगमंचीयता

निष्कर्ष

उपसंहार **329-335**

संदर्भ ग्रन्थ सूची **336-345**

प्राक्कथन

साहित्य और समाज आपस में इतना घुल-मिल गया है कि दोनों चिरकाल से अश्लिष्ट है। समाज के हर एक धडकन का प्रतिफलन साहित्य में होता है। सामाजिक कारोबारों का सीधा प्रस्तुतीकरण साहित्य में हम देख पाते हैं। क्योंकि साहित्य मानव तथा समाज से अभिन्न है। व्यक्ति का परिवेश ही साहित्य का उपादेय है। एक देश के निर्माण में वहाँ का साहित्य भी भागीदार है। दूसरे शब्दों में कहें तो साहित्य जीवन भी है और कला भी, जिसके अंतर सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की भावना निहित है। नाटक, साहित्य की सारी विधाओं में सबसे श्रेष्ठ है तथा सर्वोच्य स्थान प्राप्त भी है। क्योंकि नाटक एक साथ दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य की भूमिका निभा रही है। स्पष्ट रूप से कहें तो नाटक सहृदय द्वारा देखा भी जाता है और पढा भी जाता है। नाटक की इसी विशिष्ट गुण के कारण ही वह सबसे लोकप्रिय माना जाता है। पुराने नाटक साहित्य की कथावस्तु पौराणिक और ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित थी तो आज आम आदमी और उनकी जिन्दगी नाटक के केन्द्र में है। तरह नाटक साहित्य अपने मूल ढाँचें में ही परिवर्तित होकर आज हाज़िर है।

साहित्य के क्षेत्र में महिला लेखन एक चर्चित पहलू है जिसकी और सभी का ध्यान कम रह गया है। पुरुषों के कब्जे में साहित्य जीतनी बनती उतना या उससे ज्यादा स्त्रियों की तूलिका में भी रची जाती है। बदला हुआ सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश नारियों के लिए खुलकर साँस लेने का मौका दिया, जिसमें उनकी सृजनात्मक क्षमता भी पंख पसारकर उडने लगी। लेकिन साहित्य के इस बडे संसार में स्त्री-लेखन हाशिएकृत रहा। फिर भी कुछ महिला लेखक अपने साहित्य-सृजन के

उद्यम में अथाह साहित्यक सृजनात्मकता के साथ आगे बढने लगीं। साहित्य की अन्य विधाओं की तरह नाटक भी महिलाओं की तूलिका से जाग उठी। उनके नाटक-साहित्य भी सबसे लोकप्रिय तथा चर्चित रह गया। ऐसे कुछ महिला नाटककारों के नाटकों का अध्ययन ही प्रस्तुत शोध प्रबंध का उद्देश्य रहा है। मैंने अध्ययन हेतु हिन्दी साहित्य के दो प्रमुख महिला नाटककारों को चुन लिया है। वे हैं डॉ. कुसुम कुमार और श्रीमती नादिरा ज़हीर बब्बर एक तो आठारहवीं सदी का सशक्त महिला नाटककार है तो दूसरा बीसवीं सदी का प्रमुख हस्ताक्षर है। उन दोनों के नाटकों का अध्ययन करने की कोशिश मेरी ओर से हुई है। शोध प्रबंध का विषय है।- **"हिन्दी का महिला नाटक : एक अध्ययन (कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों के विशेष संदर्भ में)"।** अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस शोध प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय है **'हिन्दी का महिला नाटक : एक सर्वेक्षण।'** प्रस्तुत अध्याय में नाटक शब्द की उत्पत्ति नाटक शब्द का अर्थ, विवेचन के साथ ही नाटक परंपराओं का छोटा सा ज़िक्र भी किया है। भारतेन्दु युग से लेकर अब तक के हिन्दी महिला नाटककारों तथा उनके नाटकों का सामान्य परिचय देने का प्रयास इस अध्याय में हुआ है।

दूसरा अध्याय है **'कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों का सामान्य परिचय।'** इस अध्याय में कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को विवेचित किया गया है। साथ ही दोनों का नाटकों का बहुत ही स्थूल रूप से परिचय कराने का प्रयास किया है।

तीसरा अध्याय **'कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में युगीन संदर्भ'** है। इस अध्याय में दानों के नाटकों में अभिव्यक्त युगीन संदर्भों का विश्लेषण है। इसके लिए स्वातंत्र्योत्तर भारत की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए इनके नाटकों में चित्रित सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक/धार्मिक समस्याओं को छाँटने का प्रयास हुआ है।

चौथा अध्याय **'कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में स्त्री-विमर्श'** है। स्त्री-विमर्श ने आज समूचे साहित्य में एक क्रांती उपस्थित की है। महिला लेखक होने के कारण ही दोनों के नाटकों में नारी तथा नारी जन्य समस्यायें शीर्षस्थ है। स्त्री विमर्श के इसे दौर में इनके नाटक प्रासंगिक कह सकते हैं। इनके नाटकों में प्राप्त नारी की प्रायः सभी समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय **'शिल्पविधान'** है। इसमें कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों की शिल्पपरक विशेषताओं को प्रस्तुत करता है। नाटक की शिल्पविधि में वस्तुपक्ष, चरित्र चित्रण, संवाद एवं भाषा तथा रंगमंच का स्थान निर्धारित करने के साथ साथ इनके नाटकों के वस्तुपक्ष, प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण, संवाद एवं भाषा तथा रंगमंचीयता का विश्लेषण हुआ है।

अंत में **उपसंहार** है जिसमें सभी अध्यायों का निष्कर्ष प्रस्तुत है।

इस शोधकार्य को पूर्ण करने में सबसे पहले मैं सर्वेश्वर की आभारी हुँ, जिनकी कृपा के बिना कुछ भी असंभव है।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध आदरणीय गुरुवर **डॉ. एम. के. अजिताकुमारी**, असोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गवः आर्ट्स एंड सयन्स कालेज, कालिकट के सुयोग्य निर्देशन में संपन्न हुआ है। उनके उन्मूल्य सुझाव, समयोचित प्रोत्साहन एवं प्रेरणा के लिए मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हुँ।

गवः आर्ट्स एंड सयन्स कालेज कालिकट की हिन्दी विभागाध्यक्षा आदरणीय डॉ. मिनी. जी से अपना आभार व्यक्त करती हुँ जिसके उचित हस्ताक्षेपों के कारण ही मेरा शोधकार्य पूरा हुआ है।

मेरे लिए शोध की उचित रास्ते दिखाये अनेक पूज्य गुरुवर है उनका में एहसानमंद हुँ। मेरे परिवार का विशेषतः मेरे पति और बच्चों का योगदान शोधकार्य में आद्यंत मेरे लिए बहुत उपकारी रहा है जिसके प्रति भी मैं कृतज्ञ हुँ। इस शोधकार्य के शुरू से लेकर अंत तक जितने दोस्त, सहयोगी, बन्धुजन मेरे लिए सहायक तथा मेरे इच्छुक रहे है उन सबके प्रति मैं आभार प्रकट करती हूँ। मेरे इस शोध प्रबंध में कमियाँ तथा त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है जिसके लिए मैं क्षमा प्रार्थी हुँ।

विनीता

स्मिता. टी

प्रथम अध्याय

हिन्दी का महिला नाटक : एक सर्वेक्षण

साहित्य समाज के प्रांगण में फलित हो रही प्रत्येक थडकन का प्रतिबिंब है। प्रत्येक राज्य और समाज की भौतिक विकास यात्रा की गाथा तो आँकडों में संरक्षित रहती है लेकिन इस विकास संघर्ष की पृष्ठभूमि में जो चेतना प्रवाहमान होती है, उसका निरपेक्ष मूल्यांकन साहित्य से ही प्राप्त हो सकता है। साहित्य मनुष्य के ज्ञानाधार और प्रबुद्ध चिंतन प्रवाह की सबसे बडी उपलब्धी मानी जाती है। साहित्य में मेधा शक्ति से ज्यादा हृदय पक्ष पर अधिक बल देते है और यह मानव की बुनियादी ज़रूरतें आनंद और मनोरंजन पर ज्यादा ज़ोर देती है। साहित्य के ज्यादात्तर विधाओं में नाटक एक ऐसा माध्यम है जो ज़िन्दगी के ज्यादा निकट है। वस्तुतः नाटक में एक ही समय में विभिन्न रुचियों तथा भिन्न लोगों को प्रसन्न करने की शक्ति विद्यमान रहती है। नाटक अत्यंत प्राचीन साहित्यक विधा है जो दृश्य काव्य के अंतर्गत आती है। नाटक को पंचम वेद माना गया है। नाट्यशास्त्र के अनुसार इस पंचम वेद की रचना ब्रह्मा ने अन्य वेदों से सामग्री लेकर की है। ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गान, यदुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्यवेद की रचना हुई। भरत मुनी ने नाट्य शास्त्र को पंचम वेद की संज्ञा दी। भरत मुनी के अनुसार नाट्य में कहीं धर्म है तो कहीं खेल, कहीं अर्थ शास्त्र है तो कहीं खेल, कहीं अर्थशास्त्र है तो कहीं शांति, कहीं हास्य है तो कहीं युद्ध। नाटक केवल एक साहित्यक विधा न हो कर रंगमंचीय प्रतिमान से युक्त एक मनोरंजन का साधन भी है। "वस्तुतः नाटक में एक ही समय में विभिन्न रुचियों तथा भिन्न वर्गों के लोगों को प्रसन्न करने की शक्ति विद्यमान रहती है। नाटक साहित्यक अभिव्यक्ति की ऐसी विधा है जो केवल साहित्य नहीं उससे अधिक कुछ और भी है। नाटक मूलतः सामाजिक स्थितियों की अनुकृति है। नाटक दृश्य एवं श्रव्य काव्य है। प्रत्येक नाटक अपने युग का सत्य दिगदर्शित करता है। किसी न किसी अनुभव को प्रकट करता है यही उसका मौलिक गुण है।"[1]

---

[1] स्वातंत्र्योत्तर साहित्य का इतिहास - डॉ. बप्पुराम देसाई, पृ.47

आज नाटक सामाजिक संवेदना को उजागर करके जीवन की जीवंत समस्याओं का स्पष्ट आविष्कार का साधन रह गया है। मतलब यह है कि लोक जागरण और लोककल्याण की भावना की ओर नाटककार ज्यादा झुके हुए है।

1.1 नाटक: अर्थ एवं परिभाषा

नाटक का अर्थ निश्चित होता है लेकिन परिवेश का बदलाव नाटक की संरचना में बदलाव लाता है। नाटक के उद्भव और विकास की कथा को पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने, नाट्यशास्त्र, अभिनय दर्पण, दशरुपक भाव प्रकाशन आदि के आधार पर प्रस्तुत करते हुए लिखा है- “नाटक ऐसा खेल है, देखा, सुना जा सके, पढने की वस्तु नहीं है।”[2]

भारतीय नाट्यशास्त्र में नाटक शब्द की उत्पत्ति ‘नट’ धातु से मानी जाती है। ‘नट’ शब्द का अर्थ है ‘अभिनय’। जो अभिनेता से जुडा हुआ है। दशरुपकम में धनंजय ने नट धातु से नाटक की व्युत्पत्ति मानी है। डॉ. दशरथ ओझा के मतानुसार “नट धातु का अर्थ गात्र विक्षेपण एवं अभिनय दोनों ही था। कालांतर में नृत धातु का प्रयोग गात्र विक्षेपण के अर्थ में होने लगा और नट्, का प्रयोग अभिनय के अर्थ में होने लगा।”[3]

आखिर यह कह सकते है कि नट् धातु के अर्थ में विद्वानों में मतांतर है फिर भी नाटक की उत्पत्ति अधिकांश विद्धानों ने नट् धातु से ही मानी है। नाटक के विषय में भारतीय और पाश्चात्य विचारकों द्वारा अपनी अपनी अनेक परिभाषायें दी है।

---

[2] नाटक और रंगमंच - संपादक डॉ. शिवरामसाली- डॉ. सुधाकर गोकाकर, पृ.5

[3] हिन्दी नाटक और नाटककार - डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल, कु. नीलम मसंद-विषय प्रवेश

सभी, शास्त्रों और शिल्पों में दर्शन के सम्मिलित रुप को ही नाटक कहते है। भाषा के माध्यम से उल्लास, आह्लाद, दुःख्र जैसे भावनाओं को प्रकट करना नाटक का परम लक्ष्य है। इसलिए ही नाटक स्वान्त सुखाय न बनकर लोककल्याण और परसुखाय का साधन बन जाता है। दर्शक क्षण भर के लिए ही सही अपनी अस्मिता को भूलकर नाटक में लीन हो जाते है जो नाटक के संदर्भ में स्वाभाविक है। इस सत्य की परिभाषा को सफल और सठीक बनाने की कोशिश भारतीय और पाश्चात्य विचारकों द्वारा हुई है।

1.1.1 भारतीय चिन्तकों के मत

भारतीय चिंतकों से भिन्न मत प्राप्त है। वे यों है- भरतमुनि के अनुसार- नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरतमुनि नाटक की परिभाषायें देता है- "यस्मात्स्वंभावं संह्य गाड गोपाड़- गगतिक्यै? अभिनीयते गम्यते च तस्मा द्वै नाटकं स्मृतम्।"[4] अर्थात, सब अंगों उपांगों और गतियों को, क्रम से व्यवस्थित करके उसका अभिनय किया जाता है। और दर्शकों तक पहुँचाया जाता है।

आचार्य विश्वनाथ-"नाटक वह रचना है जिसकी कथावस्तु इतिहास प्रसिध्द हो जिसका नायक उच्च वंश में उत्पन्न धीर-वीर और प्रतापी हो जिसमें अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन हो, अंकों की संख्या पाँच से दस तक हो, श्रंगार अथवा वीर- जिसमें अंगीरस हो, शोक रस अंगीभूत हों संधियों का यथोचित सन्निवेश आदि हो।"[5]

---

[4] भारतेंन्दु की नाट्य कला - प्रेम नारायण शुक्ल, पृ.18

[5] साहित्य दर्पण - आ. विश्वनाथ, छठा परिच्छेद

महिम भट्ट के अनुसार- "जब काव्य को गीतादि से रंजित कर नटों द्वारा उसका प्रदर्शन किया जाता है तो उसे नाटक कहते है।"[6] बाबू गुलाब राय- "नाटक का संबंध नट से है। अवस्थाओं की अनुकृति को नाटक कहते है। इसी से नाटक शब्द की अभिव्यक्ति है।"[7]

जयशंकर प्रसाद- "काव्य एक कला है और ललित कलाओं में सुकुमार कला है...नाटक का कला से संबंध नहीं अपितु वह कला का विकसित रुप है। हृदय को अनुभूति कराने के लिए दो द्वार है- कान और आँख। इधर काव्य की अनुभूति भी दृश्य और श्रव्य दोनों प्रकार से होती है।"[8]

नेमीचन्द्र जैन नाटक के बारे में लिखता है कि-"अपनी मूल प्रवृत्ति की दृष्टि से नाटक वह संवाद मूलक कथा है जिसे अभिनेता रंगमंच पर नाट्यव्यापार के रुप में दर्शक वर्ग के सामने प्रस्तुत करते है।"[9]

1.1.2 पाश्चात्य विद्वानों की राय में...

पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाओं में भी एकता नहीं है। अरस्तु ने नाटक को ट्राजडी के रुप में स्वीकार किया और उसे जीवन के व्यापारों का अनुकरण माना है। "A tragedy, then, is the imitation of an action, that is serious and also as having magnitude complete in itself in language with pleasurable accessories

---

[6] व्यक्ति विवेक - महिम भट्ट, पृ.381

[7] हिन्दी नाट्य विमर्श - गुलाब राय, पृ.6

[8] हिन्दी साहित्य सम्मेलन - जयशंकर प्रसाद, कानपुर, कार्य विवरण, भाग दो, पृ.106

[9] हिन्दी नाटक में समसामयिक परिवेश - डॉ. विपिन गुप्त, पृ.37

each kind brought in separately in the parts of the work, in drammatic not in a narrative from with incidents arousing pity and fear where with to accomplish it catharasis of such emotions."[10]

यहाँ ट्राजडी जीवन व्यापारों का अनुकरण कहा गया है। ट्राजडी में कलात्मक तथा आलंकारिक भाषा विषमतायें, वर्णनात्मक शैली के स्थान पर दृश्यात्मक शैली होती है।

अभिनेयता, संवादात्मकता और मनुष्य के क्रियाकलापों को महत्वपूर्ण ठहराकर निकेल ने नाटक की परिभाषा यों दिया है। "Drama is the art of expressing ideas about life in such a manner as to render to that expression capable to interpretation by actors and witness the action."[11] अर्थात, नाटक जीवन संबंधी विचारधाराओं को प्रस्तुत करने की ऐसी कला है जिसमें अभिनेताओं के भाषणों और क्रियाकलापों द्वारा वह प्रस्तुति अत्यधिक शक्तिशाली बनकर दर्शकों को आनंदित करती है।

अकिर की राय में -"Drama is the presentation of will of man in unflict with the misterious powers of natural forces which limit and be little (It is one of as on the stage there to struggle against fatality, against social law, against one of fellow mortals, against himself if need be, against the amibitions, in the interest, the prejudices the folly the melevolance of those around him.)"[12]

अर्थात, मनुष्य की आकांक्षाओं का प्रतिफलन नाटक में प्राप्त है। जीवन को वृत्त प्रदान करनेवाली आकांक्षायें वही है। जिनमें हमारा जीवन रंगमंच पर कष्टों के

---

[10] Play marking - William Archer, p.23

[11] Quoted in Drama, from Ibson to Eliot - Raymond Williams, p.18

[12] Theory of Drama - Allar Dyce Nicoll, p.35

विरुद्ध, सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध मित्रों अथवा आकांक्षाओं से संघर्ष करने के लिए अवतारित हुआ है।

ऐसे भारतीय और पाश्चात्य विचारकों के मतों को देखते समय नाटक मानव जीवन में गहरा परिवर्तन लाने में सक्षम दिखाई देता है क्योंकि यही एकमात्र विधा है जो मानव-हृदय को गहरे रूप में प्रभावित करती है।

1.2 नाटक का स्वरूप

नाटक एक भाषिक कला है। साहित्य के संप्रेषण में चरित्र के प्रदर्शन में समूचे चरित्र पर ध्यान देते है। नाटक के स्वरूप के संबंध में नाटककार-अभिनेता और दर्शक गण इन तीनों को महत्व देना आवश्यक है। 'दृश्य होता है जो काव्य'- वही नाटक है। डॉ. चातक ने सही लिखा है- "किसी भी नाट्यकृति के तीन संरचनात्मक स्तर होते है। एक स्तर उसकी साहित्य अवधारणा से संबंद्ध होता है, दूसरा भाषा से तीसरा रंगानुभूति से। ये तीनों स्तर एक दूसरे से भिन्न न होकर परस्पर संश्लिष्ट होते है। जिसके कारण कोई भी नाट्यकृति अपनी पूर्णता में एक कलावस्तु के रूप में रूपायित होती है।"[13] इस प्रकार नाटक का स्वरूप तीन स्तरीय और जटिल है और अन्यविधाओं की अपेक्षा अनूढे रूप संश्लिष्ट है। दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य का ऐसा मणिकांचन संयोग नाटक के स्वरूप को अलौकिक गरिमा से संपन्न बनाता है। नाटक का एक अतिरिक्त, अनिवार्य और विशिष्ट गुण दृश्यव, मानव मन को आह्लादित करते हुए प्रभावोत्पादन-प्रक्रिया में उपादान की भूमिका अदा करता है।

---

[13] आधुनिक हिन्दी नाटक: भाषीक और संवादीय संरचना - डॉ. गोविन्द चातक, पृ.39-40

1.3 नाटक के तत्व

नाटक के तत्वों को लेकर भारतीय और पाश्चात्य विचारकों में थोडा मतभेद है। कई विचारक एक तत्व में दो या तीन तत्वों को सम्मिलित करके देखते है तो कई इन्हीं तत्वों को अलग-अलग करके देखते है। विचारकों के मत को ध्यान में रखकर, निम्नलिखित तत्वों को नाटक के प्रमुख आवश्यक अभिकरण कहा जा सकता है।

1.3.1 कथावस्तु

सबसे प्रमुख और अभिन्न तत्व के रूप में कथावस्तु को माना जाता है। अरस्तु नाटक की कथावस्तु को सबसे औन्नत्य में मानता है और उसे विशेष महत्व देते है। उनकी राय में नाटक को वास्तविक स्वरुप प्रदान करनेवाला सत्य ही कथावस्तु है। यही नाटक का प्राण तत्व है। यह जहाँ एक और नाटककार की कुशल रंगदृष्टि की कसौटी है, वहीं दूसरी ओर वह नाटक का केन्द्रबिन्दु है जहाँ, नाटक के सभी तत्व, सभी कलाऐं ऊर्जा ग्रहण कर सार्थक बनती है। नाटक में रंगमंच की सारी योजनायें कथावस्तु में ही नियोजित होती है। कथानक में कम घटनायें तथा संक्षिप्तता का गुण होना चाहिए। इन सब के अलावा नवीनता, मौलिकता, सरलता, विश्वसनीयता आदि भी कथानक के प्रमुख आवश्यक गुण माने जाते है।

1.3.2 पात्र व चरित्र चित्रण

पात्र व चरित्र चित्रण नाटक के प्रमुख तत्वों में एक है। दर्शक की भावनायें उन प्रमुख केन्द्रीय पात्रों पर केन्द्रित होती है जो कार्यव्यापर को आगे बढाने में मुख्य भूमिका निभाती है। वही प्रमुख पात्र नाटक के चरित्र है जो चरित्रों को जीवन्त तथा प्रभावशाली बनाकर एक सच्चे नाटककार का निर्माण करते है। उपर्युक्त पात्रों के चयन के द्वारा नाटक प्रभावी बना सकते है। स्वाभाविकता, सहजता, सरलता आदि

गुणों के साथ पात्रों का चयन युगानुरूप होना चाहिए। नाटक के अंतर्गत, नायक, नायिका आद्यंत और गौण पात्र कथा के बीच-बीच कथावस्तु को गति देते है। नायक व नायिका आरंभ से लेकर अंत तक नाटक के केन्द्र में रहते है। एक तरह से कहे तो पात्रों व उनके चरित्र-चित्रण संबंधी नियमों का पालन करना भी आवश्यक होता है।

1.3.3 कथोपकथन

संपूर्ण नाटक कथोपकथन अथवा वार्तालाप के साँचे पर टिका होता है। एक नाटक की पूर्णता कथोपकथन या संवाद के जोश पर आधारित है। संवादों से ही नाटक आगे बढता है। संवादों की व्यवस्था ही दर्शकों अथवा पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। नाटक की संवादयोजना कालानुसार परिवर्तित होती रहती है। संवादों की व्यवस्था सीधी-सरल भाषा में हो, जो कि दर्शक पाठक, श्रोता सरलता से समझ जाये। रोचकता, नाटकीयता, रहस्यात्मकता, संवेदना, परिवेश की पूर्णता आदि गुण भी कथोपकथन में होना ज़रूरी है। इसके साथ साथ संवाद कथानक को भी गतिशीलता प्रदान करनेवाले होनी चाहिए।

1.3.4 वातावरण

वातावरण को देशकाल, माहौल या पर्यावरण भी कहा जा सकता है। अपने समय को प्रस्तुत करने में नाटककार को सजग रहना चाहिए। नाटककार को ध्यान रखना चाहिए कि वो किस प्रकार के नाटक की रचना करने जा रहा है। अर्थात् ऐतिहासिक, सामाजिक, राजीनीतिक, धार्मिक आदि नाटकों में वातावरण अलग-अलग होता है। एक उत्तम वातावरण के निर्माण में बाहरी और मानसिक परिवेश

का मिलावट ज़रूरी है। नाटक को दृढता प्रदान करनेवाले तत्व में वातावरण का विशेष महत्व है। यह भी कहा जा सकता है कि नाटक की सफलता इसी तत्व पर निर्भर करती है।

1.3.5 भाषा

साहित्य की अन्य विधाओं की भाषा नाटक की भाषा से बहुत भिन्न होती है। नाटक की भाषा मंच की भाषा होती है। दर्शकों व पाठकों को एकसाथ संतृप्त कराने की क्षमता नाट्यभाषा में होनी चाहिए। युगानुरुप भाषा परिवर्तित होती रहती है। यथा-पहले संस्कृत नाटक अधिक देखे जाते थे, आज खडी बोली ने उस भाषा का स्थान ले लिया है। नाटकों की भाषा सरल, सहज व सारगर्भित होना चाहिए। नाटक में आकर्षण पैदा करनेवाली भाषा ही उसे पहचान प्रदान करती है। भाषा विषय-वस्तु के अनुसार होना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि भाषा पात्रों के अनुकूल, सरल, सहज परिवेश के अनुसार होनी चाहिए। पात्रों की वेशभूषा क्षेत्र विशेष का ध्यान रखना भी भाषा के आवश्यक होता है।

1.3.6 रंगमंचीयता

नाटक और रंगमंच साधन साध्य है नाटक की पूर्णता रंगमंचीयता से ही होती है। क्योंकि नाटक रंगमंच के लिए ही लिखा जाता है। रंगमंच नाटक की वास्तविक कसौटी होती है। जिस नाटक का मंचन किया जाता है वही सफल नाटक की कोटि में आता है। जो नाटक काफी लंबे होते है, जिनका मंचन करना कठिन होता है। आज उनके कथानक को सरल बनाकर उनका मंचन भी किया जा रहा है। नाटक

जैसे विधा को अधिक आकर्षक, सशक्त, लोकप्रिय बनाने में रंगमंचीयता की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

1.3.7 उद्देश्य

कोई भी कृति बिना किसी उद्देश्य के नहीं लिखी जाती। नाटकों का मुख्य उद्देश्य भी नाटककार पहले से ही निर्धारित करके रखता है। आरंभ से ही साहित्यकारों का उद्देश्य जन-कल्याण की ही रही है। बिना किसी उद्देश्य के कृति का निर्माण करना ही व्यर्थ है। सोद्देश्यपूर्ण कृति ही सफल, लोकप्रिय, प्रभावशाली व उत्तम मानी जाती है। इस प्रकार 'उद्देश्य' भी नाटक के तत्वों में अपना महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित करती है।

1.4 हिन्दी नाटक ऐतिहासिक परिदृश्य

हिन्दी नाटक साहित्य का ऐतिहासिक विवेचन अपने आप में कठिन कार्य है। एक ओर यह विशाल एवं व्यापक है तो दूसरी और हिन्दी नाटक के प्रारंभ कालीन स्थितियों का विवरण बहुत कम है। हिन्दी नाटक के आरंभकालीन कृतियाँ एवं उनकी प्रस्तुति के संबंध में विद्वानों में भी मतभेद है। अतः हिन्दी नाटक साहित्य की केवल एक ऐतिहासिक रूपरेखा प्रस्तुत करना ही उनका उद्देश्य है। पूर्व भारतेन्दु युग, भारतेन्दु युग, प्रसादयुग तथा समसामयिक युग जैसे चार सोपानों में नाटक परंपरा का अध्ययन ही उनका उद्देश्य है।

1.4.1 पूर्व भारतेन्दु युग

भारतीय नाटक साहित्य हज़ारों वर्ष पुरानी परंपरा है। सामान्यतय यही बताया जाता है कि भारतीय नाटक के प्रारंभिक रूप संस्कृत नाट्य परंपरा से विकसित हुआ है। ऋग्वेद, रामायण, महाभारत जैसे विविध ग्रन्थों में नाट्य संबंधी

विविध सूचनायें मिलती भी है। भारतीय परंपरा के अनुसार बताया जाता है कि त्रेतायुग के प्रारंभ में देवताओं ने ब्रह्मा से मनोरंजन के एक साधन का निर्माण करने की प्रार्थना की तो ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य वेद की रचना की। बाद में भरतमुनि ने अपने सौ पुत्रों के साथ नाट्य की सफलतम प्रयोग भी किये। यह तो निसंदेह कहा जा सकता है कि एक परमविकसित नाट्य परंपरा अचानक जन्म नहीं लेते बल्कि पूर्व के किसी अविकसित व अपरिष्कृत नाट्य रूप से विकसित होकर ही संपन्नता के शिख़र पर पहुँची है। डॉ. इंदुजा अवस्थी की राय में- "संस्कृत की सुविकसित नाट्य-परंपरा के पहले भी कोई नाट्य परंपरा होगी, जो एक और तो संस्कारित (अथवा संस्कृत) होकर महान नाटकों के रूप में प्रतिफलित हुई है।"[14] ऐसी ख़ोज हमारे पंडितों को लोकनाट्य रूपों के उस पार तक ख़डे कर दिये। अतः हमें निसंदेह कहना पडेगा कि संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति लोक मनोरंजनात्मक व अनुष्ठानपरक परंपराशील नाट्यों से ही हुई है। यह तर्कविहीन बात है कि नाटक के विकास में कुशीलव कथागायन परंपरा, यात्रा और शोभायात्रायें, चारण परंपरा, स्वांग, रास आदि परंपराओं का सर्वोपरि ऐतिहासिक महत्व है।

1.4.1.1 जननाटक

जननाटक लोक मनोरंजनात्मक नाट्य के रूप में जाना जाता है। यह भारत के मूलवासियों के असंस्कृत नृत्य, गीत, कथा और अभिनय के समन्वित रूप है। साहित्यक नाटकों के शताब्दियों पूर्व ही जन नाटक देश भर में प्रचलित थे। बंगला में यात्रा एवं कीर्तीनया, बिहार में बिदेसिया, अवधी पूर्वी हिन्दी ब्रज में रास, स्वांग,

---

14 रामलीला परंपरा और शैलियाँ - डॉ. इंदुजा अवस्थी, पृ.15

गुजरात में भवाई, महाराष्ट में तमाशा, केरल में पोराट्टुकली, काक्कारशी नाटकम, तमिलनाटु में तेरुकूतु, कामन केट्टु, आन्ध्रा में वीथि भागवत, वालकम आदि बहुत से नाट्य रूपों को उन नाटकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते है।

1.4.1.2 कुशीलव का कथा गायन परंपरा

पुराण और देवाख्यानों की परंपरा अतिप्राचीन काल से ही देश में प्रचलित थी। रामायण, महाभारत आदि कथा गायन के साथ-साथ नृत्य और अभिनय भी इसकी विशेषता थी। यह आख्यान परंपरा कुशीलव के साथ जोड सकते है। कुशीलव शब्द की उत्पत्ति रामायण के कुश और लव से ही मानी जाती है। कुशीलव राज दरबारों में ही नहीं बल्कि ग्रामीण जन विभाग के बीच में भी, धार्मिक एवं सांस्कृतिक कथाओं के गायन छोटे-मोटे संवाद और अभिनय के साथ करते-रहते थे।

1.4.1.3 यात्रा और शोभायात्रायें

यात्रा और शोभायात्राओं की परंपरा भी अतिप्राचीन है। यह एक नृत्त-नृत्य रूप है। यात्रा रूप के संबंध में डॉ. दशरथ ओझा का अभिमत है कि-“यात्रा नाटक मानव इतिहास के उस युग में प्रचलित हुआ होगा, जब संसार की विभिन्न जातियाँ प्रारंभ में अपने उपास्य देव की प्रतिमाएँ जुलूस के रूप में निकालकर नृत्य और संगीत के साथ अभिनय किया करती थी।”[15] राज्यारोहण, युद्धविजय, सांस्कृतिक और धार्मिक पर्वों पर शोभायात्रायें निकालने की परंपरा प्राचीन युग में भी प्रचलित रही है।

---

[15] हिन्दी नाटक उद्भव और विकास - डॉ. दशरथ ओझा, पृ.40

1.4.1.4 चारण परंपरा

मनुष्य के सांस्कृतिक उत्थान में चारण परंपरा का अपना वैभव एवं ऐतिहासिक महत्व है। प्राचीन काल में प्रचलित कुशीलव का कथागायन परंपरा मध्ययुग में चारण कला के रूप में विकसित हुए। इस संबंध में डॉ. इंदुजा अवस्थी का अभिमत है कि-"प्राचीन काल में प्रचलित कथा गायन परंपरा का मध्ययुग में बहुत विकास हुआ। दसवीं शताब्दी तक नाट्यकथाकारों का एक निश्चित वर्ग-चारण उत्पन्न हो चुके थे। ये चारण प्राचीन कुशीलवों की परंपरा में माना जा सकते है।"[16] प्रत्येक राज दरबार के चारण विभाग अपने-अपने राजाओं की वीरगाथायें अमानुषिक ढंग से अपने गायन द्वारा करते थे। बाद में चारण द्वारा कथागायन की रीती लोक समाज में भी उतर आई।

1.4.1.5 स्वांग

पौराणिक, राजनैतिक और सामाजिक विषयों को लेकर नृत्य संगीत एवं अभिनय से समन्वित प्रमुख्र नाट्य रूप है स्वांग। स्वांग की लोकप्रियता के बारे में कबीरदास, मालिक मुहम्मद जायसी आदि ने बहुत पहले ही जिक्र किया था।

"कथा होय तहाँ स्रोता सोवैं, वक्ता मूंड पचाया रे।
होय जहाँ कहीं स्वांग तमाशा, तनिक न नींद सताया रें।"[17]

इसमें स्पष्ट हो जाता है कि चाहे पुरुष हो या स्त्री हो बच्चे हो या बूढे समाज के सभी वर्ग इन प्रदर्शनों से बहुत अधिक प्रभावित होते थे।

---

[16] रामलीला परंपरा और शैलियाँ - डॉ. इंदुजा अवस्थी, पृ.24-25

[17] कबीर ग्रंथावली - अयोध्या सिंह उपाध्याय, पृ.216

1.4.1.6 रास

समाज के साधारण जनता की रुचि और योग्यता को ध्यान में रखकर निर्मित एक जन नाट्य शैली है रास। रास पूर्णतया विकसित नाटकों के प्रारंभिक काल का रूप है। रास की अबसे बडी विशेषता यह है कि संपूर्ण नाटक छन्दोबद्ध एवं गेय होता था, गद्यांश सर्वथा उपेक्षित रहता था। रास नाटकों में नृत्य को प्रमुख स्थान दिया जाता था। इस प्रकार चौदहवीं शताब्दी तक देशी भाषाओं में पारंपरिक रंगमंच विकसित होने लगा था।

1.4.1.7 संस्कृत नाट्य परंपरा

संस्कृत नाटक समाज के परिष्कृत जन विभाग की मनोरंजनोपाधी थी। ये साधारण जन विभाग की बुद्धि और योग्यता के बदले शास्त्रधर्मी अधिक थी। संस्कृत नाटकों का आयोजन राज महल में या किसी मंदिर के प्रांगण में ही होता था। संस्कृत नाटकों में गद्य-पद्य आदि का प्रयोग नियमानुसार होता था। भवभूति कालिदास, कृष्णमित्र, शूद्रक, टर्क, भट्टनारायण आदि प्रसिद्ध नाटककार संस्कृत में ही हुए है। महाकवि कालिदास का नाम संस्कृत नाट्यपरंपरा में प्रमुख है। 'अभिज्ञान शाकुंतलम','विक्रमोर्वशीयम', तथा 'मालविकाग्निमित्रम' इनकी प्रमुख रचनायें है। इनके बाद शूद्रक का नाम आता है जिन्होंने 'मृच्छकटिकम' से अपनी ख्याति प्राप्त की।

1.4.1.8 लोकनाटक

विदेशी आक्रमणों व उनसे उत्पन्न अशान्त परिस्थितियों में ह्रासोन्मुख नाट्य कला को जीवंत बनाने में लोकनाटकों की भूमिका रही है। लोकजीवन में लोक

नाटकों के रुप में नाट्य-परंपरा जीवित रही। बादलों का उमडना, बरसात की रिमझिम, लहतहाती, फसलें, बल-कल, बहते झरने, बसन्त, हेमन्त आदि प्रकृति का अक्षयलोक जितना मुक्त है उतना ही मुक्त नाट्य-लोकनाट्य। लोकनाट्य मानव-संभ्यता और संस्कारों के समांतर ही प्रवाहमान है। "बंगाल में जात्रा, बिहारी में बिदेसिया, अवधी पूर्वी हिन्दी-बाण तथा खडी बोली में राम, स्वांग नौटंकी, भांड आदि परंपरा में ही डाक्टर दशरथ ओझा हिन्दी नाटक की परंपरा का मूल स्रोत भी जननाटकों से ही स्वीकार करते है।"[18] लोक नाटक की अपनी विशेषता है कि वह अपनी प्रस्तुति हेतु किसी विशिष्ट रंगमंच की अपेक्षा नहीं रखता।

1.4.1.9 हिन्दी के प्रारंभिक नाटक

पन्द्रहवी शताब्दी में देश में एक धार्मिक आन्दोलन शुरु हुआ। वैषणव धर्म के प्रचार प्रसार के कारण संस्कृत अध्ययनाध्यापन भी चल पडे। उस समय कतिपय विद्वानों ने जनरुचि के अनुकूल कथानक, भाषा तथा शैली का ध्यान रखकर नाटक रचने लगे। संस्कृत नाटकों से प्रभावित होने पर भी उन नाट्यकारों ने रास शैली पर छन्दोपद्ध नाटकों की रचना ही की। भगवान भक्ति ही इन नाटकों का प्रमुख उद्देश्य रहा। इनमें हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक', बनारसी दास कृत 'चैतन्य चद्रोदय', कवि सामराज कृत 'श्रीदामा चरित', कवि भूदेव शुक्ल कृत 'धर्म विजय' आदि प्रमुख है।

1.4.1.10 हिन्दी नाटक परंपरा

हिन्दी नाटक परंपरा में प्रमुख है- भारतेन्दु पूर्वयुग, भारतेन्दु युग, प्रसादयुग, प्रसादोत्तर युग। प्रसादोत्तर युग में स्वातंत्रतापूर्व हिन्दी नाटक परंपरा तथा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक परंपरा।

---

[18] हिन्दी नाटक उद्भव और विकास - डॉ. दशरथ ओझा, पृ.42

1.4.1.11 भारतेन्दु पूर्व नाटक

भारतेन्दु पूर्व युग में प्राणचन्द्र चौहान, उदयकवि, विश्वनाथ सिंह, रघुराय-नागर आदि प्रमुख है। इस युग में मौलिक तथा अनूदित नाटक दोनों मिलते है। भारतेन्दु पुर्व नाटक परंपरा पर विद्धानों के बीच व्यापक मतभेद रहा है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- "भारतेन्दु के पूर्व जिन नाट्यकृतियों- प्राणचन्द्र चौहान कृत 'रामायण महानाटक' (1610), लछिराम कृति 'करुणा भरण' (1657), नवाज़ कृत 'शकुन्तला' (1680), महाराज विश्वनाथ सिंह कृत 'आनंदरघुनंदन' (अनुमानतः (1700 ई), रघुराय नागर कृत 'सभासार' (1700), उदय-कृत 'रामकरुणाकर' एवं 'हनुमान नाटक' (1840) का उल्लेख मिलता है, वे वस्तुतः नाटक नहीं है। ये पद्यात्मक प्रबंध है।"[19] ये सब व्रजभाषा में रचित थे और यह व्रजभाषा नाटक संस्कृत नाट्य-प्रणाली की छाया में ही लिखे गए है क्योंकि इनके कथानकों का आधार धार्मिक, पौराणिक, आख्यान ही है। डॉ. वीरेन्द्र कुमार शुक्ल की राय में- "पूर्व भारतेन्दु काल से भारतेन्दु युग तक नाटककारों की प्रवृत्ति संस्कृत नाट्य साहित्य तथा पौराणिक आख्यानों को भाषांतर रुप देकर हिन्दी-नाट्य-साहित्य की परंपरा का आविर्भाव करना रहा है। ... नाटककारों की मूल प्रवृत्ति-अनुवादों की ओर थी।"[20] पूर्व भारतेन्दु युग के नाटकों को भारतीय नाट्य परंपरा में प्रमुख स्थान देने में भी मतभेद रहा था।

---

[19] हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र, पृ.468

[20] भारतीय नाट्य साहित्य - सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.261-62

1.4.2 भारतेन्दु युग

अन्य विधाओं के समान हिन्दी में नाटक का सूत्रपात भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है। राष्ट्रीय चेतना एवं सांस्कृतिक उत्थान का युग था। राष्ट्रीय जागरण के युग में नाटक प्रचार के लिए बहुत उपयोगी प्रमाणित हुआ। तत्कालिन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल सृजन प्राप्त नाटक केवल मंचित होने के लिए लिखा जाता था। भारतीय और पाश्चात्य नाट्य कला का एक सम्मिश्रण तत्कालीन नाट्य कला में पाया जाता है। प्रदर्शन एकमात्र लक्ष्य होने के कारण नाटक रंग संस्कारों से संपन्न थे। भारतेन्दु के प्रमुख नाटक 'भारतदुर्दशा', 'अंधेर नगरी', 'भारत जननी', 'कर्पूर मंजरी', 'धनंजय विजय', 'नीलदेवी', 'चंद्रावली', 'विषमस्य विषमौषधम' आदि नवोत्थान व नवजागरण की किरणों के साथ भारतेन्दु युग का उदय हुआ। जिस प्रकार की चेतना से लैस नाटक आज हमारे बीच मौजूद है, उनके लिए ज़मीन तैयार हो रही थी, भारतेन्दु युग में, कहना अतिशयोक्ति न होगी। भारतेन्दुयुगीन प्रमुख नाटककार और उनके नाटक का विवरण आगे है।

प्रतापनारायण मिश्र- 'हठी हम्मीर', 'दूध का दुध', 'पनी का पानी', 'जुआरी', 'फूआरी', 'कलि कौतुक रूपक', राधाकृष्ण दास- 'महाराणा प्रताप', 'महाराणी', 'मद्‌मावती', 'दुःखिनी-बाला', 'धर्मालाप', अंबिकादत्त व्यास- 'ललिता भारत सौभाग्य', बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन- 'भारत सौभाग्य' और 'वारांगना रहस्य', लाला श्रीनिवास दास- 'संयोगित स्वयंवर', 'प्रह्लाद चरित्र', 'नटता संवरण', 'रणविर प्रेम मोहिनी', बालकृष्ण भट्‌ट- 'सीता वनवास', 'शिशु

पाल वध', 'चंद्रसेन', 'नल दमयंती स्वयंवर', 'वेण सैहल', देवकी नंदन त्रिपाठी- 'रामलीला', 'रुक्मिणी हरणं', 'कंस वध', 'बाल विवाह', किशोरी लाल गोस्वामी- 'प्रणयिनी परिणय', 'मयंक मंजरी' आदि।

1.4.3 प्रसाद युग

हिन्दी नाट्य साहित्य को प्रौढत्व देने का कार्य वास्तव में जयशंकर प्रसाद ने ही किया है। प्रसाद युग हिन्दी नाट्य-सृजन के उत्थान का युग है। इसी काल में हिन्दी साहित्य में उच्चकोटि के नाटकों का प्रादुर्भाव हुआ था। "राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्र में गाँधीजी की भांति प्रसाद ने हिन्दी नाट्य कला को प्राचीन मर्यादाओं की अनावश्यक रुढियों से उन्मुक्त कर जीवन की नवीन स्फूर्ती से विकासोन्मुख बनाया।"[21]

नाटकों के कथानकों का चयन भारत के गैरवपूर्ण अतीत से किया है। उन्होंने ऐतिहासिक और पौराणिक कथानक के माध्यम से वर्तमान समस्याओं को प्रस्तुत किया है। हिन्दी में एक दर्जन से अधिक नाटकों की रचना की है। उनमें प्रमुख है- सज्जन, कल्याणी परिणय, करुणालय, प्रायश्चित, राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, कामना, स्कन्दगुप्त, जनमेजय का नागयज्ञ आदि।

प्रसाद के समकालीन नाटककार और उनके नाटकों का परिचय आगे है।

बदरी नाथ भट्ट- 'कुरुवन दहन', 'दुर्गावती', 'वेन चरित्र', 'चन्द्रगुप्त', 'लबड घोघो', 'विवाह', 'विज्ञापन', 'मिस अमेरिकन' आदि। डॉ. बलदेव मिश्र- 'वासना वैभव', 'शंकर दिविजय', 'समाज सेवक', 'मृणालि परिणय' आदि।

---

21 हिन्दी नाटक उद्भव और विकास - डॉ. दशरथ ओझा, पृ.270

माखनलाल चतुर्वेदी- ‘कृष्णार्जुन युद्ध’, सुदर्शन- ‘दयानंद’, ‘धूप’, ‘छाँह’, ‘आनररी मजिस्ट्रेट’, जी.पी. श्रीवास्तव- ‘गडबड झाला’, ‘भर्दानी औरत’, ‘कुर्सीमेन’, ‘भक्तिन’ आदि। हिन्दी नाट्य जगत को नयी दिशा प्रदान करने का कार्य प्रसाद और उनके समकालीन नाटककारों ने किया है।

1.4.4 प्रसादोत्तर

प्रसादयुगीन आदर्शो को छोडे बिना, समस्या नाटकों की रचना को लेकर आगे बढ़नेवाले नाटककार ही इस युग के अंतर्गत आते है। नयी भाव भूमि और नये शिल्प-विधि से युक्त ऐसे नाटकों में पश्चिमी जगत के नाट्यकता और विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है। प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक, समस्यामूलक, गीतनाट्य, रेडियोनाटक आदि विविध प्रकार के नाटक रचे गये। इस युग के प्रमुख नाटककारों और उनके प्रमुख नाटक यों है।

वृन्दावनलाल वर्मा - ‘सेनापति दल’, ‘पूर्व की और’, ‘कश्मीर का कोटा’, ‘धीरे-धीरे’, ‘मंगलसूत्र’, ‘पायल’ आदि। हरिकृष्णप्रेमी - ‘ममता’, ‘छाया’, ‘बंधन’, ‘शिवा साधना’, ‘प्रतिशोध’ आदि। सेढ गोविन्ददास - ‘पाकिस्तान’, ‘दुख क्यों’, ‘बडा पापी कौन’, ‘र्हियाया अहिमा’, ‘भूदान यज्ञ’ आदि। गोविन्द वल्लभ पंत- ‘वरमाला’, ‘राजमुकुट’, ‘अन्तःपुर का छिद्र’, ‘ययादि’, उदय शंकर भट्ट- ‘विद्राहिणी अंबा’, ‘सागर विजय’, ‘शक विजय’, ‘मुक्ति-पथ’, ‘मत्स्यगंधा’ आदि। डॉ. रामकुमार वर्मा- ‘विजय पर्व’, ‘अग्निशाखा’, ‘पृथ्वी का स्वर्ग’, ‘जय भारत’, ‘अशोक को शोक’ आदि। इब्सन और शाह से प्रभावित होकर हिन्दी में समस्या- नाटकों की रचना हुई थी। इसमें लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क

आदि उन्में प्रमुख है। लक्ष्मीनारायण मिश्र- ‘सन्यासी’, ‘राक्षस का मंदिर’, ‘मुक्ति का रहस्य’, ‘राजयोग’, ‘सिंदूर की होली’, ‘कवि भारतेन्दु’, ‘मृत्युंजय’ आदि। उपेन्द्रनाथ अश्क- ‘अंजोदीदि’, ‘जय-पराजय’, ‘अलग-अलग रास्ते’, ‘कैद उडान’, भंवर आदि। इस युग की समस्त नाटककारों ने हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है।

1.4.5 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक

आज़ादी के बाद विशेष रूप से सन्, साठ के दशक में हिन्दी नाटकों में एक नया भावबोध का जन्म हुआ। नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक धरातल से उतरकर जीवन से निकट आने लगा।

आलोच्य काल के प्रमुख नाटककार और उनके नाटक का विवरण आगे है जगदीश चन्द्र माथुर- ‘कोणार्क’, ‘शारदीया’, ‘पहल राजा’, मोहन राकेश- ‘आषाढ़ का एक दिन’, ‘लहरों का राजहंस’, ‘आधे-अधूरे’, लक्ष्मीनारायण लाल- ‘अंधा कुआ’, ‘मादा काक्ट्स’, ‘रात रानी’, ‘रक्त कमल’, ‘कलंकी’ आदि। ज्ञानदेव अग्निहोत्री- ‘नेफा की एक शाम’, ‘शुतुर्मूग’, ‘अनुष्ठाना’, आदि। सुरेन्द्रवर्मा- ‘द्रौपदी’, ‘सूर्य की अंतिम किरण से पहली किरण तक’, ‘सेतुबंध’, ‘कैद-ए-हायात’, ‘आठवाँ सर्ग’, ‘छोटे सैयद बडे सैयद’, मुद्रा राक्षस- ‘तेन्दुआ तिलचप्ठा’, ‘मरजीवा’, ‘यॉर्स फैथफूली’ आदि। गिरिराज किशोर- ‘नरमेध’, ‘प्रजा ही रहने दो’ आदि। विष्णु प्रभाकर- ‘टूटते परिवेश’, ‘युगे-युगे क्रांती’, ‘तीसरा आदमी’ आदि। मन्नु भंडारी- ‘बिना दीवारों के घर’, शंकर शेष- ‘फन्दी’, ‘एक

ओर द्रोणाचार्य', विपिन अग्रवाल- 'तीन अपाहिज', 'लोटन', 'कुत्ते की मौत' आदि। हमीदुल्वा- 'दरिन्दें', 'उत्तर अर्वशी', 'उलझी आकृतियाँ', 'समय-संदर्भ' आदि। सुशील कुमार सिंह- 'नागपाश', 'उग उगे गये', 'सिंहासन खाली है' आदि। मणि मधुकर- 'रस गंधर्व', 'दुलारी बाई', 'खेला पोलम पुर' आदि। मृणाल पांडे- 'मौजूदा हालात को देखते हुए', 'आदमी जो मछुआरा नहीं' आदि।

ऊपर बताये हिन्दी नाटक परंपरा में और भी अनेक प्रमुख नाटककार है जिनका योगदान हिन्दी नाटक साहित्य को संपन्न किया है। कुसुम कुमार, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, सुरेन्द्रवर्मा, भीष्म साहनी, हमीदुल्ला, शरदमोडी, मुद्राराक्षस, स्वदेश दीपक, ऋतुमती, हबीब तनवीर, नागबोडय आदि प्रमुख है।

हिन्दी नाटक ऐसे नये नाटककारों की नयी चेतना से संपन्न दिखाई देता है जो नाट्य प्रेमियों और नाटक परंपरा के लिए खुशी की बात है।

1.5 हिन्दी में महिला लेखन

आज साहित्य कितने व्यापक सरोकारों तथा बहुआयामी संदर्भों में लिखा जा रहा है, उनमें स्त्री भी लेखन में अपना सहभाग दे रही है और अपनी एक पहचान बना रही है। साहित्य के क्षेत्र में स्त्री का सहभाग नया नहीं है। स्त्री-शिक्षा और आर्थिक स्वालंबन के कारण नारी को अपने व्यक्तित्व की अलग पहचान मिलने लगी है। सामाजिक मूल्यों के साथ उस में व्यक्तित्य मूल्य और अपना अस्तित्व बोध उभरने लगा है। आज उसकी सहभागिता स्त्री-अस्मिता और स्त्री स्वतंत्रता को लेकर चल रही है। भारत के बदलते परिदृश्य में उनका साहित्य स्त्री की स्वतंत्रता, उनके वैचारिक विस्तार और नये संस्कार संदर्भों को रेखांकित करते है। साहित्यक क्षेत्र में महिलाओं

की सर्जनात्मक प्रतिभा स्वातंत्र्योत्तर काल में ही तीव्रता के साथ उभरने लगी है। आज़ादी के बाद जागरण की नई चेतना की लहर चल पडी थी। उसमें महिलाओं को आत्माविष्कार के नये संदर्भों से जोड दिया। साहित्य रचना में भागीदारी देकर लेखिकाओं ने सबसे पहले अपने हीनत्व बोध को नकारते हुए पुरुष के समकक्ष अपने को उपस्थित करने का कार्य किया। साहित्य क्षेत्र में पुरुष के वर्चस्व को चुनौती देती हुई आनेवाली इन महिलाओं ने अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर यह सिद्ध किया कि संवेदनात्मक स्थितियों की गहराई को आँकने में स्त्री-पुरुष से कहीं आगे है। उनकी दृश्टि पुरुष लेखकों की दृष्टि से नितांत भिन्न रही है। यह भेद विषय चयन में नहीं, आविष्कार के ढंग में पात्रों के विज्ञान में भावानुभूति के स्तरों में भी देखा जाता है। "साहित्यकार का मूल धर्म है सृजन/सृजन के उत्स में जो पीडा और संवेदना है, जो अनुभूति और दृष्टि है, जो उल्लास और उन्मेष है, उन्में महिला और पुरुष साहित्यकार की समानता भी और अंतर भी। वे दोनों एक ही जीवन के भोक्ता है फिर भी उनके जा हाशिए अलग है उनकी व्याख्याओं के मर्म अलग है, उनकी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अलग है क्योंकि कही कूध है कि पुरुष और स्त्री होकर भी अलग है और अलग होकर भी एक है। अभिव्यक्ति की कई समस्यायें और कई संकट सब साहित्यकारों के लिए समान है, इसमें कोई संदेह नहीं। किन्तु अभिव्यक्ति के कुछ पडाव और प्रतिबंध एवं कुछ अवरोध और अभिलोग ऐसे है जो भारतीय महिला साहित्यकारों की अपनी विशेष विरासत है।"[22] हिन्दी में लेखिकायें अपनी क्षमता के बलबूते पर अभिव्यक्ति के इस क्षेत्र में पूरी ईमानदारी के साथ प्रयत्नशील है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय मध्यवर्गीय स्त्रीयों के जीवन को समग्र रुप से पकडने का

---

22 नये आयामों को तलाशती नारी कमला सिध्वी- महिला साहित्यकार और अभिव्यक्ति का संकट (लेख) - सं. दिनेश नंदिनी डालमिया, रश्मि मलहोत्रा, पृ.91

प्रयास उन्होंने किया है। समाज का बृहद परिदृश्य उनके सामने है। सांस्कृतिक संकट के भी ज्वलंत पक्षों से वे जूझ रही है नई भाषा और नये रचनात्मक स्वर उनकी खूबी है। उनकी रचनायें सांस्कृतिक संकट की विविधायामी अभिव्यक्ति है। एक पुरुष-प्रधान सामाजिक व्यवस्था के विषम सामाजिक वातावरण महिला लेखिकाओं के लेखन के मूल में है। नारी पर होनेवाला अन्याय, अत्याचार तथा नारी मन की कुंठा, घुटन को प्रकट करना इनके लेखन की विशेषता रही है साथ ही बाहर की सभी बातों पर उनका लेखन, महिला साहित्य की विशिष्टताओं की ओर ध्यान खीचतें है। महिला लेखक समाज के साथ अपने वाङमय के माध्यम से जो न्याय किया, उन पर सोचने की ज़रूरत आ पडी है। हिन्दी साहित्य को महिलाओं का देन अमूल्य है। आधुनिक काल में महिलाओं ने काफी तादात में अपनी लेखनी से आधुनिक महिला को महामंडित किया है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि क्षेत्रों में महिला साहित्यकारों की भागीदारी अभूतपूर्व है। एक पुरुष वर्चस्व समाज में नारी अपने बारे में क्या सोचती है, समाज के ऊपर उसके दृष्टिकोण क्या है, अपनी परिस्थितियों से वह कितना कुछ सजग है ये सब जानने के लिए महिला लेखन स्पष्ट एहसास बनकर हमारे सम्मुख खडी है। इनका लेखन सच्चाई और बेबाक प्रसंगों के साथ साथ पाठकों की चिंताओं तथा मनोवेगों को उचित ढंग से समृद्ध करता है।

1.6 हिन्दी की महिला नाटककार

अन्य सभी क्षेत्रों की तरह नाटक-साहित्य का क्षेत्र में भी महिलाओं के लिए अछूत न रहा। नाटक के क्षेत्र में भी वे अपनी सर्जनात्मकता का परिचय दे चुकी है। बदलते सामाजिक परिवेश के प्रति उनकी प्रतिबद्धता उनके नाटकों में हम देख सकते है। अपनी ही परिस्थितियाँ उसे ऊर्जा देने में भददगार है क्योंकि सारे परिवेश, जो

उसके इर्द गिर्द ही घटित है। किसी भी साहित्य विधा के जैसे महिला नाटक का आधार भी भारतेंन्दु युग से संबब्द्ध है। स्वतंत्रता संग्राम से स्वतंत्रता प्राप्ति तक लगभग सौ साल के अन्तर्गत हिन्दी नाट्य-साहित्य के इतिहास में केवल एक ही महिला नाटककार का नाम प्राप्त है श्रीमती लाली देवी। लेकिन साहित्येतिहास के लेखकों द्वारा उनकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद छठे-सातवें दशक से महिला रचनाकारों ने साहित्य-सृजन की ओर विशेष लगाव रहा। लेकिन वह भी नाटक के अलावा अन्य साहित्यक विधाओं में। सुमन राजे की राय में- "एक बार कथा साहित्य को अपनाने के बाद महिला रचनाकार बहुत कम, लगभग न के बराबर अल्प विधाओं की ओर गयी। इसके ठोस सामाजिक और रचनात्मक कारण ज़रूर रहे होंगे। एक सूत्र तो निर्विकल्प रूप से स्वीकार किया जा सकता है और वह यह है कि कथेतर गद्य खुले मैदान का गद्य है, इसीलिए महिला रचनाकारों ने उस ओर जाने का साहस, हाँ साहस कम किया है। कविता यदि दर्पण में देखकर पत्थर चलाना था, तो कथ्य-साहित्य अपने रचे नाम रूपों को अपनी प्रतिनिधि के रूप में उतार देना। लेकिन अन्य विध्यायें बीच की पर्देधारी को पसंद नहीं करती शायद इसीलिए गद्य के संदर्भ में महिला लेखन का अर्थ कथा लेखन ही रहा।"[23] साहित्य-रचना में नाटक-रचना महिलाओं के लिए अछूते रहने का स्पष्टीकरण इससे ज्यादा ओर कहीं से न मिलेगा। प्रस्तुत अध्याय में, हिन्दी साहित्याजगत में अब तक जितनी महिला नाटककार उपलब्ध है उनमें चुने हुई महिला नाटककारों का जिक्र करने का प्रयास किया गया है।

---

[23] हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास - डॉ. सुमन राजे, पृ.294

1.6.1 श्रीमती लाली देवी

हिन्दी साहित्य में सर्व प्रथम महिला नाटककार होने योग्य भारतेन्दु युग की श्रीमती लाली देवी को है। उनके ही मतानुसार उनके नाटक 'गोपीचंद' का 15 दिनों में सृजन हुआ है। गोपीचंद उनका एकमात्र नाटक है।

1.6.1.1 गोपीचंद

यह एक आदर्श प्रधान नाटक है। इसमें गोपीचंद की दो संपत्तियों का पारस्परिक प्रभाव चित्रित किया है। डॉ. गोपीनाथ तिवारी की राय में- "इस नाटक में आदर्श स्थापन करने का प्रयास हुआ है। फिर भी यह नाटक विद्वानों की दृष्टि में साधारण कोटी के नाटकों में ही स्थान रखता है।"[24] व्रजरत्न दारा ने प्रस्तुत नाटक के बारे में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है कि यह नाटक सभी दृष्टियों में अच्छा बन पडा है। नायक गोपीचंद की मैनावती तथा नव पत्नी कूसूदा के विलापों में स्त्री हृदय का खुल्लम-खूल्ला वर्णन मिलता है। महाराज गोपीचंद भर्तृहरि के चरित्र से संबंधित यह नाटक बहुत श्रेष्ठ है। इसमें नारी को प्रमुख्र स्थान दिया गया है। नाटक के गीत अति सुन्दर है।

1.6.2 श्रीमती अनुरूपा देवी

दूसरा नाम श्रीमती अनुरूपा देवी का है। महिला नाटककारों की श्रेणी में। उनका एकमात्र रचना 'कुमारिल भट्ट' है। इसका प्रकाशन 1934 में आर्य महिला हितकारिणी महापरिषद काशी से हुआ।

---

[24] भारतेन्दु के नाटकों का शास्त्रीय अनुशीलन -गोपीनाथ तिवारी, पृ.22

1.6.2.1 कुमारिल भट्ट

पाँच अंकों वाला नाटक है कुमारिल भट्ट। इसमें आर्य धर्म को उन्नति पर पहुँचाने में अक्षम महात्मा कुमारिल भट्ट की वैदिक धर्मेद्धार पद्धति का परिचय मिलता है। वैदिक भावनाओं और मान्यताओं से दमघुटकर जीने की हाल से मुक्त कराने का प्रयास अपने तर्कबल और चरित्रबल से उन्होंने किया है।

1.6.3 कुटुमप्यारी देवी सक्सेना

हिन्दी महिला नाटककारों में कुटुमप्यारी देवी सक्सेना का प्रमुख स्थान है। उनका एक ही नाटक 'वीर सती, सरदार बाई' ज्ञात है।

1.6.3.1 वीर सती सरदार बाई

इस नाटक का प्रकाशन वर्ष 1936 है। एक ऐतिहासिक नाटक है यह। इसमें वीरांगना सरदार बाई द्वारा समाज और राष्ट्र को मिले योगदान वर्णित है। प्रस्तुत नाटक राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत है।

1.6.4 श्रीमती तारा प्रसाद वर्मा

स्वतंत्रतापूर्व हिन्दी महिला नाटककारों में तारा प्रसाद वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। 1939 में प्रकाशित 'आजकल' नामक नाटक उनके द्वारा प्रकाशित एकमात्र उपलब्धी है।

1.6.4.1 आजकल

तीन अंकों वाला नाटक है आजकल। इस सामाजिक नाटक द्वारा देशसेवा और देशप्रेम जगाना उनका लक्ष्य था। यह भी उद्देश्य था कि गांधीजी की छाया में,

अनबूझ लोग निरपराधियों पर कितना अत्याचार करते है। नाटक का अस्तित्व वास्तविक धरातल पर उतरे समय में ही तारा प्रसाद शर्मा का साहित्य सृजन हुआ था। अतः तत्कालीन परिस्थितियाँ ही उनके नाटक में भरे पडे है। तत्कालीन कपट, गांधीवादियों और चापलूस कांग्रेसों पर प्रहार नाटक का लक्ष्य रहा।

1.6.5 श्रीमती शिवकुमारी देवी

श्रीमती शिवकुमारी देवी स्वतंत्रतापूर्व युग में हिन्दी महिला नाट्य लेखन को संपन्न बनानेवालों में एक है। उनकी एकमात्र रचना 'चन्द्रगुप्त' प्राप्त है जिसके द्वारा वे ज्यादा ख्यातिप्राप्त है।

1.6.5.1 चन्द्रगुप्त

यह 1939 ई में रचित नाटक है। 'चन्द्रगुप्त' नाम से ही समझ सकते है कि यह एतिहासिक नाटक है जो गुप्तकाल से संबंद्ध है। यह नाटक सम्राट चन्द्रगुप्त के जीवन चरित्र को रेखांकित करता है और तत्कालीन परिस्थितियाँ व्यक्त करता है।

1.6.6 श्रीमती कंचनलता सब्बरवाल

प्रसादयुगीन महिला नाटककार है कंचनलता सब्बरवाल। एम.ए, पी.एच.डी तथा शास्त्री जैसी उपाधियों से प्रतिष्ठित कंचनलता लखनऊ के महिला कालेज में प्राध्यापिका रही है। ऐतिहासिक, सामाजिक, राष्ट्रीय नाटकों की रचना की है

उन्होंने। 'आदित्यसेन गुप्त', 'अमिया', 'अनंता', 'भीगी पल्कें', 'आंधि और तूफान' आदि उनके प्रकाशित नाटक है। आपके अधिकांश नाटक ऐतिहासिक है।

1.6.6.1 आदित्यसेन गुप्त

इस नाटक में गुप्तवंशी मगध सम्राट आदित्यसेन गुप्त की वीरता पूर्ण कार्यों का नये सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। देश गौरव की महित्ता दर्शाने तथा बनाये रखने का परिश्रम इस नाटक में किया गया है। कुमार आदित्यसेन के माध्यम से देश प्रेम की ज्वाला धधकाने की कोशिश नाटक में है। यह देशप्रेम के अनुपम, अभूतपूर्व नमूना है। आदित्यजननी श्रीमती देवी उसे युद्धादि से दूर रख परियों के लोक में रखना चाहती है। देवप्रिया जिसे आद्यंत प्राणाधिक प्रिय है, तो भी वह उसे माँ की आकांक्षाओं के विरुद्ध देश गौरव को उन्नत करने की शिक्षा देती है। श्रीमती देवी को अन्य सैनिकों के प्रति भी उदार बनने को कहती है। जीवन की सार्थकता एवं व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए नारी एवं पुरुष दोनों की आपसी पूरकता अनिवार्य है। प्रस्तुत नाटक वीरभावना और हृदय की कोमल वृत्तियों को साथ-साथ लिये है।

1.6.6.2 अमिया

तीन अंकों वाला नाटक है 'अमिया'। 'अमिया' एतिहासिक नाटक में अमिया की वीरता, प्रेम, देशसेवा, तथा प्रेमी राजकुमार वज्रगुप्त के प्रति पूर्ण श्रद्धा व्यक्त किया है। डॉ. दशरथ ओझा के हिन्दी नाटक कोश से प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु प्राप्त है। इस में अमिया की वीरता तथा युगीन परिस्थितियों को आंका गया है। यह एक मंचीय नाटक है।

1.6.6.3 अनंता

अनंता 1959 का नाटक है। इसमें ज्ञानेश्वर के वर्धनों, मालवा के गुप्तों, और कनौज के मौखरी राजाओं की पारस्परिक ईर्ष्या, शत्रुता तथा मित्रता का वर्णन मिलता है। अनंता का देवगुप्त को हमेशा सन्मार्ग पर लाने के प्रयत्न के साथ उनके प्रति रहा प्रेम भी इसमें चित्रित है। यह आपका दूसरा नाटक है।

1.6.6.4 लक्ष्मी बाई

1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम की गाथा नाटकीय रूप में प्राप्त है। लक्ष्मीबाई द्वारा दिखाई गयी, वीरता, तेजस्विता तथा अंग्रेज़ो के सारे तंत्रों को विफल करने के लिए सक्षम उनकी कुशलता इस नाटक की कथावस्तु है।

1.6.6.5 भीगी पलकें

एक सामाजिक नाटक है। इसमें स्त्री और राष्ट्र के प्रति आदरभाव प्रकट की है। नारीवादी विचारों का सशक्त उदगार नाटक में प्राप्त है।

1.6.6.6 आँधी और तूफान

आलोच्य नाटक परिवार तथा राष्ट्रप्रेम, दोनों पर ज़ोर देने वाला है। भारत पर चीनी हमला की प्रतिक्रिया स्वरुप लिखा गया नाटक है यह। परिवार के सभी सदस्य राष्ट्र के लिए अपने जान तक देने के लिए तैयार होने से, पारिवारिक महता के साथ राष्ट्रप्रेम को भी उजागर करते है।

1.6.6.7 माँ की लाज

'माँ की लाज' में भारतवासियों की, अपने देश के प्रति रखनेवाली निष्ठा का उत्तम रूप दर्शनीय है। नाटक की विशेषता यह है कि जातियता की संकीर्ण मनोवृत्ति

और आपसी कलह को उपेक्षित करके अपने देश के लिए सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार हुए कुछ लोगों को चित्रित किया है। देशप्रेम तथा जातिभेद से दूर एक आदर्श समाज का चित्रण 'माँ की लाज' में हम देख सकते है।

1.6.7 डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र

उत्तरप्रदेश में जन्में मिथिलेश कुमारी हिन्दी महिला नाटककोश में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उनके द्वारा सृजित रचनायें मात्रा-विविधता तथा गुणवत्ता तीनों ही दृष्टियों से प्रभावी और श्रेष्ठ है। पौराणिक चरित्रों को लेकर चलनेवाला 'कीचक वध' और 'धनंजय विजय' जैसे श्रेष्ठ नाटक पौराणिकता को कायम रखके समसामयिक चेतना को प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत करते है।

1.6.8 शोभना भूटानी

महिला नाटककारों में शोभना भूटानी का अपना विशिष्ट स्थान है। शोभना भूटानी ने, नाटक के प्रचलित ढंग से अलग चलकर अपनी विशिष्ट शैली का परिचय दिया है। 'शायद हाँ' उनका एकमात्र नाटक है।

1.6.8.1 शायद हाँ

शोभना भूटानी का एकमात्र नाटक है 'शायद हाँ'। दो पात्रोंवाला प्रस्तुत नाटक अब तक के प्रचलित ढंग से कुछ हटकर बिना कथानक, बिना घटनाओं बिना मंचीय परिवर्तनों और बिना पात्रों के आने जाने के क्रम से आगे चलता है। पति-पत्नि के चिरंतन द्वन्द इस नाटक का विषय है। नारी-पत्नी का पद और स्वतंत्र व्यक्तित्व दोनों एक साथ चाहती है तो हमेशा के लिए संघर्ष को कायम रखती है।

1.6.9 मन्नु भंडारी

मन्नु भंडारी हिन्दी साहित्य में बहुत ख्याति प्राप्त लेखिका है। पिता से पैतृक में मिली लेखन संस्कार से नाटक, उपन्यास जैसी विधाओं में अपनी दक्षता दिखाने में उन्हें मदद मिली। एम.ए तक शिक्षित मन्नु जी ने दिल्ली विश्वविद्यालय के मिरांडा हाउस में प्राध्यापिका के रूप में कार्य किया। नारी जीवन की जटिलताओं को उघाडने में उनका साहित्य कामयाब रहा। 'भहाभोज', 'आपका बंटी, 'स्वामी', 'एक इंच मुस्कान', 'कलवा' आदि उनके उपन्यास और 'एक प्लैट सैल्ष', 'में हार गयी', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर', 'यहीं सच है', 'त्रिशंकु' आदि उनका प्रसिब्द्ध कहानी संग्रह है। 'बिना दीवारों के घर' उनका नाटक है जो जीवंत समस्याओं से ओतप्रेत है।

1.6.9.1 बिना दीवारों का घर (1965)

मध्यवर्गीय परिवार में लक्षित वैवाहिक जीवन की समस्यायें इस नाटक की प्रेरणा है। घर के दीवारों के बीच आदमी अपने को सुरक्षित मानता है। जब मानवीय सहज स्नेह, विश्वास, और आत्मदान जैसे त्याग से संबंद्ध बनते निभाते चलते है, तभी 'घर' बनता है। और एक भावनात्मक परिवेश बनाता है। इन सबके अभाव में घर बिना दीवारों का घर बनता है। पुरुष प्रधान संस्कृति में पुरुष स्त्री को अपनी निजी संपती समझता है, उसे अपने विचारों के अनुसार ढालना चाहता है। भारतीय नारी की नियति का चित्रण उसमें पाते है।

डॉ. श्याम सुन्दर पांडेय की राय में “एक तरफ पुरुष आधुनिक बनने का स्वांग भले ही भर रहा हो लेकिन मानसिक रूप से वह आज भी रूढिवादी ही बना हुआ है। दूसरी तरफ नारी अब पारिवारिक बंधनों को तोड देना चाहती है। वह न केवल पुरुष के अधीन रहकर जीवन यापन करना चाहती है बल्कि स्वयं की भी एक नई पहचान बनाना चाहती है।”[25] नाटक तत्कालीन या चिरकालीन समाज के पुरुष अहंवादिता का स्पष्ट एहसास देता है।

1.6.10 मृदुला गर्ग

मृदुला गर्ग का जन्म 1938 अक्तूबर 25 को कलकत्ता में हुआ। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम.ए. किया। दिल्ली में प्राध्यापिका के रूप में भी कार्य किया। साथ ही उद्योग बस्तियों में रहकर मज़दूरों की समस्यायें जानने की कोशिश भी की। नाटक, उपन्यास में लेखनी चलायी मृदुला गर्ग ने अभिनय भी किया। उनके प्रमुख उपन्यास है- ‘हिस्से की धूप’, ‘वंशज चित्तकोबरा’, ‘अनित्य’, ‘मैं और मैं’ आदि। कहानी संग्रह में ‘डैफोडिल जल रहे हैं’, ‘टुकडा टुकडा आदमी’, ‘कितने कैदें’, ‘ग्लेशियर’ प्रमुख है। ‘एक ओर अजनबी’, ‘तुम लौटजाओं’, ‘जादू का कालीन’ आदि उनके नाटक है। कथा साहित्य में एक बॉल्ड चिंतनशील रचनाकार रही मृदुलागर्ग स्त्री-पुरुष संबंधों के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों को लेकर लेखनी चलायी है।

1.6.10.1 एक ओर अजनबी

स्त्री-पुरुष के प्रेम संबंधों का अनेकपक्षीय दृष्टि से उद्‌घाटन करता है। दो पुरुषों के बीच विभजित एक औरत और उसकी विडंबनापूर्ण ज़िन्दगी का चित्रण इस

---

[25] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : संवेदना और शिल्प - डॉ. श्याम सुन्दर पांडेय, पृ.32

नाटक में मिलता है। नाटक में शानी के माध्यम से नारी के अंतर्विरोध और मनोवैज्ञानिक जटिलताओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। जगमोहन और इंदर खोसला पति और प्रेमी की भूमिकाओं में पुरुष का सामान्य चरित्र का परिचायक है। ज़िन्दगी के दुविधाग्रस्त मौके पर अपने अस्तित्व को तलाशनेवाली व्यक्ति की नियति नाटक में शानी के माध्यम से प्रस्तुत है।

1.6.10.2 तुम लौट आओ

एक सामाजिक नाटक है तुम लौट आओ। निष्ठुर, कठोर महत्वाकांक्षायें मनुष्य को सामान्य से विशेष की ओर ले जाती है। यही इस नाटक का विषय है। सीता इस नाटक की नायिका है। नये जीवन का आकर्षण सीता की ज़िन्दगी की विडंबना बन जाती है। सीता स्वयं अपनी ज़िन्दगी की त्रासद स्थितियों का कारण है। वह भूल जाता है कि, "ज़िन्दगी में कुछ चुनना पडता है...सब कुछ एक साथ चाहने पर नहीं मिलता।"[26] ऐसा एक आत्म पहचान सीता की ज़िन्दगी संघर्षपूर्ण बनाती है। आधुनिक द्वन्द भरी ज़िन्दगी का स्पष्ट एहसास है तुम लौट आओ।

1.6.10.3 जादू का कालीन

बालमज़दूरी पर आधारित नाटक है 'जादू का कालीन'। चौदह वर्ष के कम उम्र के बच्चों की अंगुलियों की कहानी है 'जादू का कालीन'। प्रस्तुत नाटक ने प्रमुख्र रूप से बाल मज़दूरों की दयनीय दशा, उनके पुनर्वास, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और स्वयंसेवी संस्थाओं से जुडे हुए लोगों के पाखंड को बडे ही मर्मस्पर्शी ढंग से उद्घाटन किया है। कालीन उद्योग में कार्यरत बालश्रमिकों पर आधारित यह नाटक,

---

[26] तुम लौट आओ - मृदुला गर्ग, पृ.92

बाल मज़दूरों की अवस्था, उनके पुनर्वास की समस्या, प्रशासनिक भ्रष्टाचार और अदूरदर्शिता के साथ-साथ स्वयंसेवी संगठनों से जुडे लोगों के पाखंड को भी सामने लाता है। बच्चों से काम करवाकर आर्थिक शोषण करनेवाली बुरी और दर्दनाक नीति इस नाटक में देख पाती है। ऐसे स्वार्थतत्पर बने अधिकारियों के भ्रष्टाचार तथा सरकार की कुरीतियों का नंगा प्रस्तुतीकरण है प्रस्तुत नाटक।

1.6.11 शीला भाटिया

शीला भाटिया का जन्म सियाल कोट में हुआ और वहीं पर उनकी शिक्षा भी हुई। बाद में लाहौर के कालेज से बी.ए तथा सर गंगाराम स्कूल एंड ट्रेनिंग कालेज से बी.टी किया। नाटक और अभिनय के प्रति उनकी अदम्य चाह ही उन्हें गणित विषय के अध्यापन कार्य से अभिनय की प्राध्यापिका की भूमिका तक खींच लिया। उन्होंने नाट्य लेखिका, निर्देशिका, संगीतकार, नृत्य संरचना-परिकल्पना और संयोजक की विविध भूमिकाओं में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। एन. एस.डी में अभिनय की प्राध्यापिका रही शीला भाटिया ने अपने नाटकों के द्वारा खोये हुए मानवमूल्यों को ढूँढ लाने को और इनसानियत को श्रेष्ठ दिखाने की कोशिश की है। शीला भाटिया नाटककार के साथ-साथ ही निर्देशक, अभिनेत्री, आदि भूमिकाओं में भी अपनी निपुणता दर्शायी है। 'काल आफ द वाली', 'रुक्खे खोत', 'हीर संज़ा', 'नादिशाह', 'मानसरोवर', 'तेरे मेरे लेख', 'धरती' आदि उनके पंजाबी, उर्दु हिन्दी में लिखित एवं निर्देशित नाटकों में प्रमुख है। बहुमुखी प्रतिभा धनी शीला भाटिया, मध्यप्रदेश सरकार का सर्वेच्चि पुरस्कार और भारत सरकार का पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित है।

1.6.11.1 दर्द आयेगा हबे पाँव

प्रस्तुत नाटक 1979 में लिखित है। उर्दु के महान शायर फौज अहमद फैज की शायरी, व्यक्तित्व और जीवन पर रचित है प्रस्तुत नाटक। शायर के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करनेवाला यह नाटक दो अंकों में और सत्तर ग़ज़लों और नज्मों पर आधारित है। फैस की शायरी और उनके द्वारा झेली गयी कठिनाइयों को पेश करने को यह नाटक सक्षम है। नाटक शायर के जीवनगाथा के साथ-साथ तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था, राजनीति आदि पर भी व्यंग्य है। श्रीमती विनोद जैन की राय में नाटक की कथा "आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार और व्यावसायिकता को प्रस्तुत कर नाटक को समसामयिक संदर्भों से जोडकर आर्थिक और सामायिक चेतना को अभिव्यक्त करता है।"[27] इस प्रकार एक शायर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर लिखा गया प्रस्तुत नाटक तत्कालीन समाज के सारे पक्षों को उभारता है।

1.6.12 शांती महरोत्रा

शांती महरोत्रा का जन्म 9 मार्च 1926 को राजस्थान के नेनवाँ में हुआ था। लखनऊ विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र में एम.ए प्राप्त किये और बाद में आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र में प्रोडूसर के तहत अनेक रेडियो नाटकों की रचना की। प्रसिद्ध नाटककार के साथ-साथ कवयित्री कहानीकार-व्यंग्यकार आदि रुपों में वे बहुचर्चित रही। कविताओं से साहित्य यात्रा शुरु किये उनके प्रसिद्ध काव्य संग्रहों में 'निष्कृति' 'मरीचिका', 'रेखा', 'पगध्वनी' आदि प्रमुख है। हास्य-व्यंग्य में 'सूरखाब के पर',

---

27 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना- विनोद जैन, पृ.53

'दंतकथा' जीवनियों में 'आनीष्चन्द' तथा 'विश्रुत नारियाँ', बाल नाटकों में 'सेर को सवा सेर' तथा मूर्गे की चोरी आदि श्रेष्ठ है। 'ठहरा हुआ पानी' और 'एक ओर दिन' उल्लेखनीय नाट्य रचनायें है।

1.6.12.1 ठहरा हुआ पानी

प्रस्तुत नाटक में पारिवारिक विघटन, मूल्यों के अंतर और पीढियों के संघर्ष तथा संवेदनाऐं भरपूर है। तीन अंकों में विभाजित 'ठहरा हुआ पानी' में पिताजी के कठोर अनुशासन में रहकर तडपनेवाले सन्तानों की दयनीय अवस्था का अंकन है। परिवार की इस विघटनात्मक स्थिति के बारे में सीता कहती है-"सब टूटता चल जाता है, जुडता कही कुछ नहीं, भीतर कितनी घुटन है। कितना अंधेरा है।"[28] नाटककार की दृष्टि से यह नाटक एक अर्थहीन जीवन और उसकी अंतहीन व्यवस्थता की कहानी है। जीवन की जडता, ठहराव, एकरसता इस नाटक में व्यक्त किया है जो शीर्षक को सार्थक बनाता है।

1.6.13 विमला प्रभाकर

विमला प्रभाकर का जन्म 1936 सितंबर को हुआ। पहले ही उन्हें साहित्य में रुची थी। उनकी कहानी 'शिकस्त' हिन्दी में सबसे अधिक चर्चित कहानी है। कविता के क्षेत्र में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। हिन्दी साहित्य का एक प्रतिष्ठित हस्ताक्षर है विमला प्रभाकर जो "भरत की आत्मा' नामक एकमात्र नाटक से ही उन्हें ख्याति प्राप्त है।

---

[28] ठहरा हुआ पानी - शांती महरोत्रा, पृ.36

1.6.13.1 भरत की आत्मा

'भरत की आत्मा' पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित पहला नाटक है। नाटक की कथा राम-राज्य से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक की समय-सीमा में है जो उस समय की घटनाओं को लेकर चलता है। इस सीमा में राम, कृष्णा, बुद्ध, अशोक जैसे महारथ भी है और पृथ्वीराज चौहान तथा चन्दबरदाई जैसे समाज श्रेष्ठ भी।

समाज में आलस्य, प्रसाद, असत्य, लोभ, मोह, हिंसा आदि लक्षण बढ गये थे। इस विश्व में स्वार्थ की कोई सीमा नहीं। भरत इन घटना-क्रमों का मूक-नायक बना है। खिन्न मन से सोचता है- "ऋषि मुनियों की तपोभूमि भरत की यात्रा कर राम ने अपने भाग्य को सराहा था। आज कहाँ गया भारत? कहाँ गयी उसकी अद्वैत परंपरा? भाई से भाई का अलगाव, एक राष्ट्र में राष्ट्रवासी से दुराव, जाति, धर्म, भाषा के नाम पर वैमनस्य, ऐसा भारत तो किसी काल में नहीं रहा। कभी नहीं रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व एक सूत्र में बंधा हुआ देश स्वतंत्र होते ही बिखरने लगा। निहित स्वार्थो की दल-दल में घिरने लगा।"[29] हमें इस सच्चाई को समझना चाहिए कि स्वार्थता एक ऐसी आग है जो अपनी परंपरा, इतिहास, संस्कार, आदर्श सब को जला देती है।

1.6.14 मृणाल पांडे

मृणाल पांडे का जन्म 1946 फरवरी 26 को मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ में हुआ है। सुप्रसिद्ध कथाकार शिवानी उसकी माँ है जिनसे उनको लिखने

---

[29] भरत की आत्मा - विमला प्रभाकर, पृ.100

की प्रेरणा मिली। प्रयाग विश्वविद्यालय से एम.ए किया बाद में भोपाल, प्रयाग तथा दिल्ली विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी का अध्यापन कार्य भी किया। मृणाल पांड़े ने पाँच नाटकों की रचना की। नाटककार के साथ-साथ वह कहानीकार, उपन्यासकार, नाट्यरुपांतरकार, पत्रकार भी है। नाटक की ओर उनकी विशेष रुचि थी।

1.6.14.1 मौजूदा हालात को देखते हुए

वर्तमान राजनीति के चुनावी अभियान पर सशक्त व्यंग्य किया है प्रस्तुत नाटक में। आम आदमी समर्थ सत्ताधारियों और उनके पिट्टु के शिकंजे में फँसकर विवशता, निर्धनता, लाचारी, बेबसी का जीवन झेलती है जो आज हम देखते है और अनुभव भी करते है। देश के जननायक लोकतंत्र के मुखौटे में गांधीवादी आदर्शों की आड लेकर हिंसा, आतंक, असत्य, छल, कपट, सांप्रदायिकता आदि को शास्त्र बनाकर चुनाव जीतते है और कुर्सी पर सटे रहते है। डॉ. विनोद जैन की राय में- "यह नाटक वर्तमान राजनीतिक नीतियों पर एक सशक्त व्यंग्य है जिसे लेखिका ने लोक नाट्यशैली के द्वारा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है।"[30] इस प्रकार यह नाटक वर्तमान परिस्थितियों से जन्मा एक सशक्त और तीक्ष्ण राजनीतिक व्यंग्य है।

1.6.14.2 जो राम रचि राखा

विजयदान देथा की राजस्थानी लोककथा पर आधारित कहानी 'खोजी' को केन्द्र में रखकर पिता-पुत्र के वैचारिक द्वन्द को इस नाटक में चित्रित किया है।

---

[30] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना - विनोद जैन, पृ.59

अभिजात वर्ग के विद्रोही तथा क्रांतीकारी मनोवृत्ति पर आधारित नाटक है 'जो राम रचि राखा'। मन्नेसेठ के दोगने चरित्र पर व्यंग्य नाटक का केन्द्र है। भगवान जाधव के अनुसार-"नाटक में धन्ने सेठ के पुत्र मन्नेसेठ का विद्रोही चरित्र जो अपने संस्कारों के प्रति उत्कंट घृणा के बाद भी कहीं अपने वर्ग संस्कारों से अकार्य रूप से जुडा हुआ दिखाई देता है। प्रस्तुत नाटक आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाया रखता है।"[31] वैयक्तिक स्वार्थपरता का एक उत्तम प्रतिरूप है इस नाटक का नायक मन्नेसेठ।

1.6.14.3 आदमी जो मछुआरा नहीं था

एक लोक कथा पर आधारित नाटक है 'आदमी जो मछुआरा नहीं था'। राज्य और राजकर्मचारी के रिश्ते, वरदान और अभिशाप के आंतरिक तंतुजाल की त्रासदी आदि नाटक का विषय रहा है। मछुवारे द्वारा मछली रानी से तीन वर मांगने की लोककथा में आम आदमी का मछुआरा बनने और वर माँग-माँगकर सब कुछ छीन लेने की चाह में बदलते है। जयदेव तनेजा के अनुसार-"लेखिका के व्यक्तिगत प्रामाणिक अनुभव और आसपास की कुछेक वास्तविक घटनाओं पर आधारित यह नाटक एक नर्म दिल व्यक्ति के बाहर से बनने और भीतर से टूटने के साथ-साथ उसके घर-परिवार की त्रासदी, राज सता की विडंबना और उसके अंतर्विरोध, प्रजातंत्र में प्रेस की शक्ति और सीमा तथा शासन तंत्र के दुर्दमनीय प्रभाव और निरंकुश स्वाभाव का भी रेखांकन करता है।"[32] व्यक्ति के बाह्य और भीतरी

---

[31] हिन्दी महिला नाटककार - भगवान जाधव, पृ.81

[32] हिन्दी नाटक आजकल - जयदेव तनेजा, पृ.90

अंतर्विरोधों, विवश नियति से उत्पन्न विडंबनाओं, समकालीन जीवन विद्रूपताओं को नाटक बडी कुशालता से उद्‌घटीत करती है।

1.6.14.4 चोर निकल के भागा

फैन्टसी शैली में लिखित यह नाटक वर्तमान उपभोक्तावादी समाज की विसंगतियों को उभारता है। नाटक तीन युवा रंगकर्मी की दार्शनिक विचार-विमर्श से शुरू होता है। आधुनिक संदर्भ में कला, सौन्दर्य-प्रेम और परंपरा जैसे मूल्यों की बिक्री हो रही है और इसमें राष्ट्रीय अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कितने ही सफेद पोश शामिल है।

नाटक की अंतःवस्तु को उद्‌घाटित करने के लिए लेखिका ने प्रेम और सौन्दर्य के प्रतीक ताजमहल की चोरी की फैन्टसी की है। "ताजमहल की चोरी? उस सामन्ती प्रेम को उडाओगे? क्या वक्त है उसकी?"[33] मनुष्यजाती की तमाम कलात्मक उपलब्धियों को निरर्थक बनाने को सदास, खतरों पर लेखिका ने ज़ोर दिया है जो मानव मूल्यों पर भी आघात पहुँचता है।

1.6.14.5 मुक्ति कथा

मृणाल पांडेय जी का प्रमुख नाटक है 'मुक्ति कथा'। आज़ादी के बाद हमारे प्रजातंत्र में संपादकों, पत्रकारों पर मालिकों द्वारा लगाये गये ज़बरदस्त अंकुश और उनपर किये जानेवाले अमानवीय अत्याचार का घिनौना रूप 'मुक्तिकथा' का विषय है। ऐसे बीमारों की सही जगह सिर्फ पागलखाना है। प्रबुद्ध एवं जागरूक रचनाकार

[33] चोर निकल के भागा - मृणाल पांडेय, पृ.20

मृणाल पांडे का यह नाटक अख़बार के मालिकों एवं प्रबंधकों की निरंकुशता के सामने एक संवेदनशील हिन्दी पत्रकार की लाचारी और त्रासदी-बहुत कुशलता से चित्रित किया है।

1.6.15 त्रिपुरारी शर्मा

त्रिपुरारी शर्मा का जन्म 1956 जुलाई 31 को दिल्ली में हुआ। प्रेज़ेन्टेशन कान्वेंट स्कूल में शिक्षा प्राप्त किया। राष्ट्रीय नाट्यविद्यालय की स्नातक रही। शर्माजी हिन्दी महिला नाटककारों में ही नहीं बल्कि पूरे नाटक साहित्य में ख्यातिप्राप्त लेखिका है। साहित्य की अन्तर्विधाओं में भी तत्पर त्रिपुरारी जी की, नाटक में विशेष रुचि रही। कविता लेखन, निर्देशन व सचालन के साथ बालरंगमंच तथा नुक्कडनाटक में भी उन्होंने अपनी दक्षता दिखाई है। समाज निष्ठ सृजन-प्रक्रिया द्वारा अपने साहित्य को संपन्न करने में उनका योगदान उल्लेखनीय है। लोककल्याण की भावना से युक्त उनकी लेखन शैली एक समाजोन्मुख मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय देते है। 'काठ की गाडी', 'बहु', 'अक्स', 'पहेली', 'माँ का सपना', 'एहसास', 'बाँझ घाटी', 'विक्रमादित्य का सिंहासन', 'बिरसा मुंडा', 'संपदा', 'रेशमी रुमाल' आदि उनके प्रमुख नाटक है।

1.6.15.1 काठ की गाडी

समाज में कुष्ठरोगियों पर होनेवाले बुरी नज़र पर एक झांकी है प्रस्तुत नाटक। प्रस्तुत नाटक 1986 में लिखा है। राजनीतिज्ञों तथा समाज के मन में कुष्ठरोगियों के प्रति जो अवज्ञा है उसका पर्दाफाश नाटक में हुआ है। लोग कुष्ठरोग संबंधी अंधविश्वास के कारण अपमानित तथा ज़िन्दगी में पीडित होते है। नाटक की

भूमिका में कही है-"आम दर्शक को कुष्ठरोग के बारे में थोडी सी जानकारी देना और उसी दर्शक का कुष्ठरोगियों के जीवन, रहन-सहन और समझ से परिचित करना।"[34] उसके अंतर्मन में यह पीडा है कि मुझे अपने वतन में आम नागरिक के अधिकार नहीं मिल पाए।

1.6.15.2 बहु

एक नारी की खोज रचना है बहु। सामन्ती समाज तथा जर्जर ग्रामीण समाज की एक नारी की खोज बहु का इतिवृत है। "बहु स्त्री समस्याओं पर केंन्द्रित नाट्यरचना है कथावस्तु पंजाब की है, लिहाजा, भाषा में पंजाबी संस्पर्श स्वाभाविक रुप में है। मेरा पुत्तर पापी जगनूं छड गया... रोती माँ को छड गया...गया वो रबा दे घर...।"[35] मज़दूरों और सामन्तों के यथार्थ वातावरण के ज़रिए दो अलग परिवेश की घुटन भरी हालात का स्पष्ट रुप नाटक में चित्रित है। दीपा कुचेकर के अनुसार- "यह नाटक रुढ़ वृत्त से ठीक उलटा है। इसका प्रारंभ तो होता है एक मृत्यु में और मरनेवाले के प्रति शोक से, और अन्त बहु के शिशु के जन्म से ही नहीं बल्कि उसके अपने जन्म से भी होता है, जिससे उसकी सार्थकता सिद्ध होती है।"[36] एक सफल मंचनाटक की कोटि में इसे रखा जा सकता है।

---

[34] काठ की गाडी, भूमिका से - त्रिपुरारी शर्मा

[35] बहु/अक्स पहेली - त्रिपुरारी शर्मा, पृ.12

[36] कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य - दीपा कुचेकर, पृ.33

1.6.15.3 अक्स पहेली

अक्स पहेली नाटक के केन्द्र में एक मध्यवर्गीय नारी खडी है। इस नारी की मानसिकता तथा बौद्धिक द्वन्द नाटक में चित्रित है। भगवान जाधव के अनुसार "अतः नाटक नारी के अंतर्मन की पीडा को, कलाकार की वास्तविक जीवन को पौराणिक पात्रों के माध्यम से व्यक्त करता है।"[37] उच्चकोटी की मंचीय गुणों से युक्त प्रस्तुत नाटक का कई बार प्रस्तुतीकरण हुआ है।

1.6.15.4 रेशमी रूमाल

आम हिन्दुस्थानी परिवारों की महिलाओं के जीवन की विसंगतियों पर लिखा गया नाटक है। उनके घुटन, पीडा, कुंठा और विडंबना को प्रस्तुत नाटक उभारता है। शहरी और ग्राम्य जीवन की टकराहट नाटक में चुनौती के रूप में है। जयदेव तनेजा की राय में- "अक्स पहेली, बहु, काठ की गाडी और बांझ घाटी के बाद इस वर्ष के संस्कृति पुरस्कार से सम्मानित त्रिपुरारी शर्मा का यह नया नाटक, उनकी सामाजिक संबंद्धता एवं जागरुकता का एक नया आयाम प्रकट करता है।"[38] प्रस्तुत नाटक का मंचन प्रगति मैदान के 'कादंबरी' आंगन मंच पर मंचित है।

1.6.15.5 पोशाक

पोशाक नाटक की रचना 1991 में हुई है। अस्तित्ववाद का एक झलक नाटक में मिलता है। व्यक्ति के अपनापन और सार्थकता की खोज इस नाटक में हुई है। एक व्यक्ति पर, पारिवारिक, सामाजिक तथा आर्थिक दबावों का दुष्परिणाम ही

---

[37] हिन्दी महिला नाटककार - भगवान जाधव, पृ.89

[38] हिन्दी रंगकर्म दशा और दिशा - जयदेव तनेजा, पृ.187

नाटक का विषय है। एक नवयुवक की निराशा, अकर्मण्यता और दिशाहीनता के ज़रिए नयी पीढ़ी के युवकों को सठीक ढंग से चित्रित किया है।

1.6.15.6 सन सत्तावन की किस्सा अजीजुन निसा

नारी जीवन के विशेष पहलू की ओर प्रकाश डाला गया एक नाटक है यह। नारी जीवन की बिडंबना तथा उससे उभरे एक नये पक्ष को उद्घाटित करने में अजीज़ुन का चरित्र महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अजीजुन तथा शमसुद्धीन के प्रेम के ज़रिए देशप्रेम, त्याग तथा वीरता को नाटक में उत्कृष्ट ढंग से चित्रित किया है। अजीज़ुन ही नाटक के केन्द्र में है जो एक आदर्श औरत के रूप में हमारे मन हरती है। प्रस्तुत नाटक एक आदर्शप्रधान नाटक हैं।

1.6.15.7 बांझ की घाटी

भोपाल गैस दुर्घाटना की विभीषिकाओं का जीवंत प्रस्तुतीकरण है बांझ की घाटी। यूनियन कार्बैड में हुई गैस लीकेज की घटनायें इस नाटक का आधार है। प्रस्तुत नाटक का सृजन भोपाल की वास्तविक धरातल पर है। भोपाल की वास्तविक आधार पर दस आँखों देखी परिस्थितियों को सुगंठित कर इस नाटक का मंचन अत्यंत खूबी से किया गया है।

1.6.15.8 माँ का सपना

नागदा उज्जैन के पास का एक छोटा सा औद्योगिक नगर है। यहाँ रसायन और गैस से दूषित है चंपल का पानी। प्रांत की मिलों में काम करनेवाले मज़दूरों की ज़िन्दगी का दर्दनाक चित्रण इस नाटक में मिलता है। यहाँ की परिस्थिति इतनी दूषित है कि इस परिणाम यहाँ की मज़दूर और यहाँ के औरतों को भोगना पड़ता है।

"जेल, कचहरी, रासायनिक फैकटरियों की जगह से वक्त बीमारी और मौत यह वहाँ की संपदा है।"[39] यह एक समाज की दयनीय अवस्था का स्पष्ट चित्रिण है।

1.6.15.9 विक्रमादित्य का न्यायासन

प्रस्तुत नाटक 1979 में लिखित है। उज्जैन की लोककला के माँग पर यह लिखा गया है। निवेदिता नामक औरत की कहानी नाटक के केन्द्र में है।

1.6.15.10 एहसास

कालेज की छात्राओं और नौकरीपेशा महिलाओं को साथ लेकर तैयार किया गया नाटक है एहसास। कई स्थानों में यह नाटक प्रदर्शित गया है।

1.6.16 आशा वर्मा

हिन्दी की महिला नाट्यलेखिकाओं में महत्वपूर्ण है आशा वर्मा। उन्होंने सिर्फ एक नाटक लिखकर हिन्दी नाट्यविधा को संपन्न बनाने की कोशिश की। उनका एकमात्र नाटक है आत्महत्या की दूकान। यह एक प्रहसन के रूप में लिखित है।

1.6.16.1 आत्महत्या की दूकान

प्रस्तुत नाटक 1984 में लिखित है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज की समस्याओं को प्रस्तुत नाटक में उभारा है। नवयुवकों का स्वप्नभंग, दहेज-समस्या, अल्पवेतन भोगी कर्मचारीयों की अतृप्ति भरी ज़िन्दगी जैसी नंगी समस्याओं का एक स्पष्ट बयान यह नाटक। अटपटे लाल की दूकान, कई समस्याओं से पीडित, आत्महत्या पर शारण पाने वालों के लिए एक सहारा बन जाता है। व्यक्ति अपनी समस्याओं व

---

[39] कुसुमकुमार का नाट्य साहित्य - दीपा कुचेकर, पृ.34

परिस्थितियों से जूझकर जीवन का अंत चाहते है। लेकिन ऐसे व्यक्तियों को अपनी परेशानियों से उभारने के लिए तथा जीवित रखने के लिए कोई तय करेगा तो, ये लोग आत्महत्या छौड दे और पुनः ज़िन्दगी से प्यार करने लगे यही इस नाटक का उद्देश्य तथा संदेश है। असामाजिक तत्वों पर घृणा भी नाटक का लक्ष्य रहा है।

1.6.17 अयेशा अहमद

अयेशा अहमद हिन्दी महिला लेखिकाओं में प्रमुख है जिसने सिर्फ दो नाटकों की रचना के द्वारा ही नाटक साहित्य को संपन्न किया है। 'दादी की चारपाई' उनका सबसे प्रमुख नाटक है।

1.6.17.1 दादी की चारपाई

इस नाटक में नवाब के पतन की कहानी को मर्मस्पर्शी ढंग से अभिव्यक्त किया है। नवाब साहब का आर्थिक संकट ही नाटक का केन्द्र बिन्दु है। खानदान का जुए और शराब की कोठियों में तवायफों की वजह से ही पतन हुआ। नवाब खानदान की ऐश और शान की अवस्था से लेकर उसके पतन तक को इस नाटक में दिखाया है। नाटक में दादी के देश के प्रति अपनापन की भावना, देश प्रेम आदि व्यक्तरूप में मिलता है। अंग्रेज़ी दवा खाना वह नहीं चाहती। परिवार के नवाबी ठाठ बाट से लेकर देशप्रेम, मातृभाषा के प्रति आग्रह अपनापन आदि नाटक में देशप्रेम को उजागर करते है। श्रीमती विनोद जैन के अनुसार-"लेखिका ने दादी की चारपाई के प्रतीक के माध्यम से राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभाषा प्रेम को समकालीनता के स्तर पर उभार कर सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय चेतना को सुन्दर और सजीव रूप में

उभारा है।"[40] इस प्रकार नाटक राष्ट्रप्रेम, स्त्री की ज़िन्दगी, चुनाव प्रक्रियाओं की विसंगतियों को उभारते है।

1.6.18 डॉ. गिरीश रस्तोगी

गिरीश रस्तोगी का जन्म उत्तर प्रदेश के बदायूँ में 1935 में हुआ। हिन्दी रंगजगत में निर्देशक, अभिनेत्री, नाट्यांतरकार, नाट्य प्रशिक्षक एवं नाटककार के रूप में वे प्रसिद्ध है। एम.ए, एम.एड, पि.एच.डी की उपाधि उनको प्राप्त है। रंगकर्म उनके जीवन का प्रमुख अंग है। मौलिक तथा अनूदित नाटकों का मंचीकरण इनमें प्रमुख है। काव्य तथा कहानी लेखन में भी वे प्रमुख है। 'ताज की पाया' उनका एक प्रमुख कविता संग्रह है। महादेवी पुरस्कार, नागरिक पुरस्कार आदि मूल्यवत पुरस्कारों से सम्मानित गिरीश रस्तोगी हिन्दी महिला नाटक में अनमोल धरोहर है। 1968 में 'रूपांतर नाट्यमंच' की स्थापना की। नाटक प्रशिक्षक एवं नाट्य समीक्षक के रूप में गिरीश रस्तोगी का योगदान व्यापक रहा है।

1.6.18.1 अपने हाथ बिकानी

नाटक में 'बिन्दु' नायिका है जिसके अछूते अनुभव को सच्चे ढंग से इससे प्रकट किया है। अपने पिता को अन्य पुरुषों के समान संवेदनशील समझनेवाली युवती की दोहरी मानसिकता का स्पष्ट एहसास नाटक देता है। पिता भी समाज की मानसिकता के साथ तादात्म्य पाता है -"समाज में रहता है तो समाज के नियम भी

---

[40] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना - विनोद जैन, पृ.82

मानने है।”[41] ऐसे, एक दोहरी मानसिकता वाले समाज का विश्लेषण नाटक में मिलता है। नाटक नारी की अदम्य, स्वतंत्रता की इच्छा को व्यक्त करता है। स्त्री शिक्षा पर भी प्रस्तुत नाटक ज़ोर देता है।

1.6.18.2 असुरक्षित

इस नाटक में सामाजिक तथा मानसिक स्थितियों का मार्मिक चित्रण किया है।

1.6.19 डॉ. मधु धवन

दसवीं दशक की महत्वपूर्ण महिला लेखकों में सबसे प्रमुख है डॉ.मधु धवन। नाटक के अलावा उपन्यास, काव्य, खंडकाव्य, आलोचना और पत्रकारिता में अपनी बहुमुखी प्रतिभा दिखाई मधु जी पेशे से प्राध्यापक रही है। ‘प्यार भरे दादाजी’, ‘करवट लेता वक्त’, ‘जुर्माना’, ‘आकांक्षा’ आदि उनके प्रमुख उपन्यास है तथा ‘स्वर्णिम भारत’ प्रसिद्ध काव्य संग्रह है। समीक्षक के रूप में भी प्रसिद्ध मधु जी का आलोचनात्मक ग्रन्थ है नरेश मेहता की ‘शबरी’ और मैथिली शरण गुप्त का ‘नहुष’। मधु जी के साहित्य प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, करुणा सत्य, अहिंसा आदि मूल्यों पर ज़ोर देकर मानवीयता को साध्य बनाने की कोशिश रहा है। गांधीजी के विचार तत्व सर्वजन हिताय के लिए ज़रूरी मानकर ये तत्व समाज में ओर अधिक रूपायित करने का प्रयास हुआ है।

[41] अपने हाथ बिकानी - डॉ. गिरीश रस्तोगी, पृ.55

1.6.19.1 मैने कब चाहा?

बढती हुई पारिवारिक समस्याओं की ओर खुली दृष्टि है प्रस्तुत नाटक में। उच्चवर्ग समाज की थोथी मानसिकता अहंकार का दुषित परिणाम आदि पर ज्यादा ज़ोर देते है। आज की युवा पीढियों में बढते प्रेम विवाह, अनमेल विवाह आदि पर नाटक का ध्यान गया है। एक पत्नी की पहचान नाटक में बहुत मर्मस्पर्शी रह जाती है- "मैं आज जान गयी हुँ कि एक पति के बिना पल भर भी जिया नहीं जा सकता... मैने कब चाह...मैं परित्यक्ता होऊँ, पुत्र बेबाप का कहलाये...मुझे मेरा पति मिल जाये....वे जो कहेंगे मैं वही करूँगी।"[42] नाटक समकालीन स्थितियों को यथार्थ रूप से उभारता है। सामाजिक पहलुओं पर नाटक चर्चा करता है।

1.6.19.2 भूल

सिंधिया एक उच्च सरकारयुक्त संयुक्त परिवार है। ऐसे परिवारों के आदर्श नाटक में चित्रित है। सिंधिया परिवार की तीन बहुओं की कथा नाटक के केन्द्र में है। प्राचीन परंपराओं और मान्यताओं को सुरक्षित रखने का उपदेश भी नाटक देता है। श्रीमती विनोद जैन के अनुसार-"लेखिका ने नारी शिक्षा, संयुक्त परिवार, नारी अहं, एकाकी परिवार का आकर्षण, अपरिपक्व हाथों में उद्योग के परिणाम स्वरूप टूटने की ओर अग्रसर संयुक्त परिवार के माध्यम से समसामयिक संदर्भों को प्रस्तुत किया है।"[43] स्त्री शिक्षा की महत्ता परिवार के अस्तित्व के लिए कितना कुछ उपयोगी है-यह भी नाटक दिखाता है।

---

42 मैने कब चाहा? - डॉ. मधु धवन, पृ.39

43 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना - विनोद जैन, पृ.100

1.6.19.3 त्रास

'त्रास' नाटक शौक्षिक क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों का स्पष्ट रूप है। पब्लिक स्कूलों में जो व्यावसायिक मनोभाव उपस्थित है, उस पर नाटक चर्चा करता है। पैसों की बढती हुई मांगें, स्कूलों में जमा होता चंदा आदि बातें शिक्षा के व्यावसायीकरण के प्रमाण है। पाठ्यक्रम समित के बैठकों की व्यर्थ लक्ष्य पर भी नाटक व्यंग्य करता है। विनोद जैन के अनुसार "शिक्षा-जगत पर छाऐ त्रास का सुन्दर वर्णन किया है। नाटक की सामाजिक और आर्थिक चेतना इसी स्तर पर उभरती हुई दिखाई देती है।"[44] बच्चों को महंगें स्कूलों में दाखिल दिलाने की, माता-पिता का दिखावा आदि मनोवृत्ति पर नाटक व्यंग्य करता है। साथ ही शिक्षा-जगत की व्यावसायिक मनोवृत्ति का भी स्पष्ट एहसास नाटक देता है।

1.6.19.4 भारत कहाँ जा रहा है?

मानवीय मूल्यों का तथा नैतिक चेतना का ह्रास 'भारत कहाँ जा रहा है' नाटक का विषय है। तकनीकी प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में बढावा देने वाली भारत की वर्तमान सामाजिक नियती के दयनीय दशा ही प्रस्तुत नाटक में चित्रित है। युवा पीढ़ी अपनी आदर्शहीनता से ऊब चुकी है। तभी गांधीवादी विचारधाराओं की प्रधानता सामने उभरती है। डॉ. भगवान जाधव के अनुसार "गांधीजी जी के भावनाओं में निहित स्वर को पहचानकर उसे जीवन में उतारने की बात कही है जिसकी आज अत्यंत आवश्यकता है। अतः नाटककार ने भारत की अर्थिक,

---

[44] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना - विनोद जैन, पृ.101

सामाजिक और नैतिक स्थिति के हो रहे पतन को प्रतिपादित किया है।"[45] गांधीजी के विचारों को वार्तालाप और दृश्यों के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

1.6.20 उषा गांगुली

उषा गांगुली का जन्म 1945 अगस्त 20 को राजस्थान में हुआ। बिकानेर से पढाई पूर्ती करने के बाद कोलकत्ता में वे कार्यरत थी। उन्हें सुप्रसिद्ध निर्देशिका अभिनेत्री, नाटककार, नाट्य रुपांतरकार और अनुवादक के रुप में ख्याति प्राप्त है। उन्होंने अपने कर्म की शुरूआत अभिनय से ही की है। अनेक नाटकों में प्रमुख भूमिकाओं में अपनी क्षमता को प्रदर्शित उषा गांगुली ने 'अन्तर्यात्रा' में एकल अभिनय द्वारा स्त्री के संघर्ष को साकार किया है। 1994 में 'खोज' नामक नाटक के साथ मौलिक नाट्य लेखन शुरु किया। कर्मठ, अनुशासन प्रिय रंग व्यक्तित्व के रुप में उषा गांगुली हिन्दी नाट्य जगत में प्रस्तुत है। तीन मौलिक नाटक उनके द्वारा रचित है- 'खोज', 'अंतर्यात्रा' और 'भोर'- जो आजतक प्रकाशित नहीं है।

1.6.21 मीरा कांत

मीरा कांत का जन्म 1958 में श्रीनगर में हुआ। मीरा कांत ने एम.ए.की शिक्षा दिल्ली विश्वविद्यालय से और पी.एच.डी जामिया मिलिया इस्लामिया से प्राप्त की। बहुमुखी प्रतिभा से धनी मीरा कांत कविता, कहानी-निबंध, उपन्यास, नाटक जैसे अनेक विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। इनके साहित्य में संघर्षशील औरत और हाशिएकृत व्यक्ति प्रमुख है। 'तुम क्या निर्वस्त्र करोगे मुझे?', 'घर से धूल कब साफ होगी?' दोनों उनकी लंबी कवितायें है। 'हाइफन', 'कागज़ी बुर्ज', 'गली

---

45 हिन्दी महिला नाटककार - भगवान जाधव, पृ.111

दुल्हनवाली' आदि कहानी संग्रह तथा 'तत किम', 'उर्फ हिटलर', 'एक कोई था कहीं नहीं सा' उपन्यास है। बाल साहित्य, अनुवाद-यात्रा वर्णन, नाट्य रूपांतर, नुक्कड नाटक और शोधकार्य में भी मीरा कांत का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनके नाटकों में उपेक्षित और पीडित नारी तथा मानसिक और शारीरिक रुप से पिछडे हुए भाग्यहीन व्यक्तियों की व्यथा प्रस्तुत हुई है। उन्हें 2005-2006 से हिन्दी अकादमी दिल्ली के साहित्यकार सम्मान से विभूषित किया।

1.6.21.1 ईहामृग

ईहामृग नाटक रागात्मक संबंधों पर केन्द्रित है। नाटककार ने रागात्मक संबंधों के ज़रिए विचार-बिंदुओं के संयोग पर बल दिया है। ज़िन्दगी में पंचतत्वों के संतुलन की महत्ता अति श्रेष्ठ है यही नाटक का प्रमुख कथ्य है। सत्य और मिथ्या के बीच नारी मन व्यथित है। संपूर्णता की तलाश में भटकने वाली नारी हमेशा द्वन्द में जूझती रही है। मानव संबंधों की गहराइयों में डुबकियाँ लगानेवाला यह नाटक अत्यंत चर्चित है।

1.6.21.2 नेपथ्यराग

महिलाओं की पहचान का संघर्ष है प्रस्तुत नाटक। समाज रुपी रंगमंच में प्रमुख पात्र बनने के लिए संघर्षरत एक नारी की कथा है इस नाटक में। विदुषी स्त्री किसी भी देशकाल में समाज द्वारा स्वीकृत नहीं। आधुनिक और प्राचीन प्रसंगों से नाटक गुज़रकर दोनों ज़माने की कथा कहता है। वास्तव में नेपथ्यराग महिलाओं के संघर्ष को आवाज़ देती है। प्रस्तुत कथा इसका उदाहरण है कि-"उनका कहना है कि यदि स्त्री सभासद बने तो पहले उसकी जीभ काट ली जायें।"[46] औरत आज के इस

[46] नेपथ्यराग - मीरा कांत, पृ.61

युग में भी नेपथ्य में अपनी सारी मज़बूरियों के साथ उसी ढंग से, उसी दर्द में बन्द है जिनको मंच पर उपस्थित होने का मौका अब तक मिला ही नहीं।

1.6.21.3 भुवनेश्वर दर भुवनेश्वर

आधुनिक हिन्दी एकांकी के जनक भुवनेश्वर जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधारित है। यह नाटक उनके जीवन का ब्यौरा नहीं है बल्कि उसके जैसे असामान्य प्रतिभा को तत्कालीन वरेण्य हस्तियों द्वारा मिली प्रताडना को उद्‌घाटित करना है इस नाटक का लक्ष्य। प्रतिभाशाली असाधारण व्यक्तियों की पीडा, प्रताडना, भुवनेश्वर परंपरा को प्रकाश में लाने का प्रयास ज़रूर इस नाटक में हुआ है। भुवनेश्वर जी के जीवन को वश में करने के बदले उन्होंने नाटकों के संवाद को चुनकर उनके द्वारा ऐसी अवस्था का बयान किया है। भुवनेश्वर नाटक में कुछ बडे सवालों पर खुलकर बहस करने का सुप्रयास किया है।

1.6.21.4 कन्धे पर बैठा था शाप

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 'कंधे पर बैठा था शाप', 'मेघ प्रश्न' तथा 'कालीबर्फ' नाटकें प्रकाशित है। कालिदास की मृत्यु के कथानक को लेकर यह नाटक लिखित है। गणिका वृत्ति करनेवाली स्त्रीयों की मनोदशा का चित्रण, नाटक में कामिनी के माध्यम से किया है और इस व्यवस्था के भीतर झांककर उसकी समस्या को समझने की कोशिश भी इस नाटक में हुई है। स्वयं नाटककार के अनुसार-"कालिदास की विद्योत्तमा हो अथवा महात्मा गांधी की जीवन संगिनी हो, उन्हें गुरु अथवा देहविहीन श्रद्धेय अर्कीटाईप बनाने का पुरुष का एक पक्षीय फैसला

समानता के मूल्यों का अपहास है।"[47] स्त्री को देहविहीन श्रध्देय देखने का पुरुष का दृष्टिकोण समानता के मूल्यों का उपहास माना है।

1.6.21.5 मेघप्रश्न

'मेघप्रश्न' में नाटककार ने कालिदास रचित मेघदूतम, के कथा तत्व के अंतिम सिरे को एक नया रुप देने की कोशिश की है। यहा-यक्षिणी की विरह-व्यथा की अभव्यक्ति जिस मेघ से होती है उसी पर नाटक आधारित है। मेघदूतम में अंत तक मौन धारण करनेवाले पात्र इस नाटक में अपना मौन तोडते है। मेघ की व्यथा को स्वर देने के प्रयास के साथ-साथ जीवन के परम लक्ष्य की ओर भी नाटक दृष्टि फेरता है। भौतिक तृप्ति को परम लक्ष्य माननेवाले एक ज़माने को चेतावनी देता है प्रस्तुत नाटक।

1.6.21.6 कालीबर्फ

आतंकवाद और उसकी विसंगतियों पर प्रकाश डालता है 'कालीबर्फ' नाटक। कश्मीर का आतंकवाद और उसके परिणामों को नाटक प्रस्तुत करता है। विस्थापितों की करुणा भरी आवाज़ इस नाटक में गूँजती है। श्रीनगर के लोग आतंकवाद के कारण दिल्ली में विस्थापित है फिर भी वे अपनी धरती को भूला नहीं पाए। अपने घर, जायदाद, रिश्ते नातों आदि को खो देने का दर्द उनके दिल में हमेशा रहता है। मन में लगी यह खरोंच इन्सान को लहु-लूहान करती रहती है। "नाटक में कश्मीर

[47] कंधे पर बैठा था शाप - मीरा कांत, पृ.17

के हालात को मानवता वादी दृष्टिकोण से देखने समझने का प्रयास किया गया है।"[48] नाटक का शीर्षक 'कालीबर्फ' आतंकवाद के संदर्भ में सार्थक निकलता है।

1.6.21.7 अंत ज़ाहिर हो

2007 में लिखित नाटक है 'अंत ज़ाहिर हो'। समाज में बढती हुई अमानवीयता, व्यक्ति संबंधों में कितना बुरा असर डालती है यही नाटक का कथ्य है। घरवालों द्वारा किये जानेवाले अमानवीय व्यवहार, विश्वासघात की ओर खींचता है। औरत अपने रक्षक पर भी विश्वास न रख सकनेवाले इस दुनिया में, वह किस पर भरोसा रखेगी? ऐसी समस्याओं पर चिंता करने के लिए नाटक प्रेरित करता है।

1.6.21.8 हुमायूँ को उड जाने दो

प्रस्तुत नाटक 2008 का है। हुमायूँ की मृत्यु पर आधारित है यह नाटक। मृत्यु के बाद 17 दिनों तक हुमायूँ को दिखाये जाने की बातों से उसके जीवन कथा को संक्षिप्त रूप अनुमान कर सकते है। नाटक के अंत तक हुमायूँ की मौत के राज को खुलने नहीं देता। मीरा कान्त ने इस नाटक में इतिहास एवं कल्पना सत्य एवं मिथ्या को पिरोया है। भगवान जाधव के अनुसार, नाटक में "हुमायूँ की वदकिस्मती को उजागर कर उनकी छटपटाती आत्मा की मुक्ति का आह्वान नाटककार ने किया है। नाटक अभागे भाग्यवान बादशाह के जीवन की गुत्थियों को पेश कर मौत को ज़िन्दगी की शक्ल देने के इस सियासी खेल दर्द की सशक्त अभिव्यक्ति करता है।"[49] हुमायूँ का प्रस्तुतीकरण नाटक में प्रभावशाली ढ़ग से हुआ है।

---

[48] कंधे पर बैठा था शाप, काली बर्फ भूमिका से - मीरा कांत

[49] हिन्दी महिला नाटककार - भगवान जाधव, पृ.128

1.6.22 विभा रानी

1959 में बिहार के मघुबनी में विभा रानी का जन्म हुआ था। वे नाटककार के साथ-साथ कहानीकार, कवयित्री, उपन्यासकार आदि रूप में भी प्रशस्त है। हिन्दी में एम.ए और बि.एड की उपाधी प्राप्त विभा रानी, अब इंडियन ऑयल कार्परेशन लि. के विपणन विभाग में प्रबंधक के रूप में कार्यरत है। सामाजिक संस्था अंवितों को से संबंधित रहकर सामाजिक कार्यों में सक्रिय है। उनका रचना संसार विस्तृत है। 'बंद कमरे का कोरस', 'चल खुसरो घर आपने' आदि उनके कहानी-संग्रह है। अभिनेत्री, अनुवादक रूप में भी वे सुप्रसिद्ध है। 'दुलारीबाई', 'पोस्टर' तथा 'मि.जन्ना' आदि नाटकों में अभिनय भी किया है। हिन्दी धारावाहिकों और फिल्मों में उनका अभिनय भी हुआ है। उनको कथा अवार्डे, घनश्यामदास सरार्फ साहित्य सम्मान, मोहन राकेश सम्मान आदि सम्मानित किया है। उनके कुछ नाटक की सामग्री अब तक अनुपलब्ध है। अभिनय, लेखन तथा अनुवाद कार्य में वह एक दम प्रवीण है।

1.6.22.1 आओ तनिक प्रेम करें

पति पत्नि के बीच में प्रेम के अभाव के कारण उत्पन्न रूखापन को चित्रित किया है, इस नाटक चित्रित किया है। अपने जिम्मेदारी की पूर्तीकरण में ज़िन्दगी खोनेवाले व्यक्तियों द्वारा प्रेम, शांती की तलाश ही इस नाटक में प्रमुख है। साथ ही पुरुषप्रधान समाज की मानसिकता पर भी नाटक ज़ोर देता है। नाटक में स्त्री का कहना है-"हम दफ्तर में लेट बैठें तो दसवीं सवाल ऐसा कौन सा काम करती हो तुम

लोगों की देर तक बैठना पडता है। यानि तुम्हारा काम और हमारा काम शक।"[50]
स्त्री ही पुरुषों की जननी है फिर भी उसका अस्तित्व अनदेखा किया जाता है।

1.6.22.2 अगले जन्म मोहे बिटिया न कीजो

लोककथा तथा सत्य कथा का मिश्रित रूप प्रस्तुत नाटक में मिलता है। मिथिला के वातावरण से यह नाटक संबद्ध है। समाज में स्त्रियाँ पुराने ज़माने से ही पराधीन स्थिति का अनुभव करती आयी है। वे अपने परिवारवालों से पहचानवालों से, सबसे शोषित की जाती रही है। नाटक व्यक्ति की मानसिक खोखलेपन को उभारने के साथ-साथ नारी की अस्मिता को ऊँचा करने की कोशिश भी करता है।

उपसंहार

निष्कर्षतः प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी महिला नाट्य लेखिकाओं के व्यक्तित्व और कृतित्व का उल्लेखन करके उनसे हिन्दी नाट्य साहित्य को मिले योगदान को उजागर करने का प्रयास किया गया है। उनके नाटक हिन्दी नाट्य साहित्य में विशेष महत्व रखते है। केवल अभिभूत नारी समस्याओं पर ज़ोर न देकर, समाज के विस्तृत परिवेश से सारी समस्याओं को अपने नाटकों के द्वारा चित्रित करने का प्रयास किया है। इनके नाटकों में राजनीतिक, सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय जैसी समस्याओं के सच्चे चित्रण है। सामाजिक नाटककारों में श्रीमती लाली देवी, ताराप्रसाद वर्मा, विमला रैना, डॉ. मधु धवन आदि के नाटक यथार्थता को लिये हुए है। भारतीय परिवार और जीवन की ज्वलंत समस्यायें प्रस्तुत करने में कंचनलता सब्बरवाल, शांती महरोत्रा, त्रिपुरारी शर्मा, डॉ. मधु धवन आदि

---

[50] आओ तनिक प्रेम करें - विभा रानी, पृ.29

प्रमुख रही है। आर्थिक समस्याओं को अपने नाटकों में खींचने में भी महिला नाटककार सक्षम रही है। मृदुला गर्ग, आयेशा अहमद आदि के नाटक ज्वलंत आर्थिक समस्याओं का सच्चा बयान हमको देते है। इनके नाटक धार्मिक, सांस्कृतिक रहे है साथ ही साथ राष्ट्रीयता और देशप्रेम की भावना को भी उजागर करते है। नारी समस्याओं को उभारने में ये ज्यादा तत्पर दीख पडती है। शायद नारी होने के कारण ही, ऐसी समस्याओं का संवेदनगत दृष्टिकोण वे अपनाती है। आज नारी की ज़िन्दगी समस्याओं से भरी हुई है और इनसे नारी की मुक्ति उतनी आसान भी नहीं है। इस अवसर पर नारी समस्याओं की ओर अनदेखा करके वे रह नहीं सकती। लाली देवी, मृणाल पांडे, सरोज बिसारिया, मीराकांत आदि के कुछ नाटक नारी की अंतर्वेदना तथा पीडा को सशक्त रुप से उभारते है। सशक्त नारी पात्रों को जन्म देकर नारी अस्मिता का एक अलग पहलू के सृजन में उन्होंने दक्षता प्राप्त की है। उनके नाटक अनछुए विषयों को भी नाटकों में उभारकर अपनी विषयगत-विविधता को प्रदर्शित करती है। इस कडी में आनेवाली दो प्रमुख महिला नाटककार है श्रीमती कुसुमकुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर। आनेवाले अध्यायों में उनकी रचनाओं का विशद विवेचन होने को है। सारी महिला नाटककार अपने परिवेश के प्रति सजग थीं, इसी का स्पष्ट उदाहरण उनके नाटकों में मिलता है। इस प्रकार हिन्दी महिला नाट्यलेखन अपनी विषय-गरिमा के कारण तथा अपनी वैयक्तिक सृजन क्षमता के कारण भी हिन्दी नाटक-साहित्य में अमिट छाप छोडने में सफल रही है, जो संपूर्ण साहित्य में ही नहीं सारी महिलाओं के लिए भी गर्व की बात है।

दूसरा अध्याय

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों का सामान्य परिचय

साहित्यक विधाओं में अलौकिक महत्व रखनेवाला नाटक हिन्दी साहित्य की लोकप्रिय विधा है। नाटक दुखी, श्रमहारे, त्रासद, पीडित तथा शोषित लोगों के मन में विश्वास और आस्था जगाने का कार्य करती है। भरतमुनी ने नाट्यशास्त्र में यों कहा है-

"दुखार्ताना श्रमार्तानां, शोकर्तानां तथा-
लोकोपदेश जननं नाट्यामेतद भविष्यति ।"[1]

किसी भी जीवन दर्शन या जीवन दृष्टि को स्पष्ट करने के लिए उसी के अनुरुप पत्र, क्रिया और भावधारा का निर्माण किया जाता है, और उसी से उत्पन्न प्रबल भावों भावनाओं को संवेदना की संज्ञा दी जाती है। और यही संवेदना ही नाट्यसाहित्य का स्थायी भाव माना जाता है। चाहे किसी भी युग का हो नाटककार अपने समाज के प्रवाह को समझता या महसूस करता है और संवेदना को केन्द्र में रखकर ही नाट्यसृजन करता है। क्योंकि वह जिस माहौल में रहता है उसी का दिल उनकी रचनाओं में थडकता है। इसलिए हम कह सकते है कि नाटक में मानव प्रवृत्तियों का सच्चा और सजीव प्रतिबिंब होने से चित्तवृत्तियों तथा लालसाओं का समाधान होता है। अर्थात, नाटक मनोरंजन के लिए नहीं शिक्षा का भी माध्यम है।

पिछले पाँच-छह दशकों की यात्रा में नाट्य साहित्य एक जागरूक पहरेदार की तरह समाज के सित-असित सभी पक्षों का लेखा जोखा प्रस्तुत करता रहा है। विकास की गौरवयात्रा को सामाजिक मूल्यों, संदर्भों, आयामों एवं भावों में होनेवाले नित नवीन परिवर्तन का प्रतिफलन स्वातंत्र्योत्तर नाटक साहित्य में भी है। हिन्दी

---

[1] नाट्यशास्त्र - आचार्य भरत, पृ.109-112

नाटक और रंगमंच के विकास की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर युग हिन्दी नाटक-विकास-यात्रा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल है। इस विकास-यात्रा में अन्य पुरुष नाटककारों की जैसी दक्षता और क्षमता महिला नाट्य लेखिकाओं में भी देखी जाती है। क्योंकि किसी भी साहित्यक विधा की भांती नाटक और रंगमंच भी महिलाओं की सर्जनात्मकता और सक्रियता से ह्रश्ट-पुष्ट है। महिला नाट्य लेखिकाओं पर लगाये गये 'कथ्य' संबंधी अनेक आरोपों को निष्प्रभ बनाके 'नाटक' के मंच पर वे अपने अनुभव और सजगता का परिचय देकर आगे बढ रही है। जैसे दीपा कुचेकर ने ठीक ही कहा है- "अपने परिवेश के प्रति लेखिकाओं ने जिस सजगता का परिचय दिया है, वह सराहनीय है। लेखिकाओं के लेखन का केनवास बहुत बडा है। वे नारी शोषण के प्रति भी उतनी ही सजग है जितनी टूटते परिवारों के प्रति।"[2] अतः साहित्य में महिला लेखन का एक इतिहास निर्माण उनके द्वारा हो सका जो गर्व की बात है।

प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी नाट्य क्षेत्र की दो महत् लेखिकाओं- डॉ. कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर- के नाटक का सामान्य परिचय मेरा उद्देश्य है। दोनों ने अपने भोगे हुए यथार्थ के स्वर से संबद्ध विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और औद्योगिक जीवन की नाट्यस्थितियों को अभिव्यक्ति का रूप दिया है। अपनी परिवेश से जुडी समस्याओं का पर्दाफाश करके आम आदमी याने पाठक की मानसिकता तक पहुँचाने की कोशिश उनकी ओर से हुई है। प्रस्तुत अध्याय में नादिरा ज़हीर बब्बर और डॉ. कुसुम कुमार के व्यक्तित्व और रचनागत जगत को उभारने का प्रयास किया गया है।

---

2 कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य - दीपा कुचेकर, पृ.11

2.1 कुसुम कुमार - व्यक्तित्व एवं कृतित्व

2.1.1 व्यक्तित्व

डॉ. कुसुम कुमार अपनी अद्‌भुत रचनाशीलता के कारण हिन्दी नाट्य साहित्य को संपन्न किया-गया एक श्रेष्ठ व्यक्तित्व है। संपूर्ण मानवजाति और सहजता समोहे हुए दृष्टि और भाषा उनकी अपनी विशेषता है। उनका जन्म दिल्ली में एक क्षत्रिय परिवार में 5 अगस्त 1939 को हुआ। उनका पारिवारिक वातावरण प्रोढ़ गंभीर था। उनके पिता ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया था। वह भवननिर्माण के कारीगर थे। कुसुम कुमार की माध्यमिक शिक्षा सरस्वती बालिका विद्यालय, दस्पिमंज, दिल्ली में हुई। महाविद्यालयी शिक्षा दिल्ली में पूरी करके वे शादी-शुदा हुई। पंजाब विश्वविद्यालय से उच्चस्तरीय शिक्षा और वहीं से प्रो. डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त के निर्देशन में पी.एच.डी की उपाधी प्राप्त की। उनकी पहली पुस्तक है 'हिन्दी नाट्य चिंतन'। यह शोध प्रबंध के रुप में एक महत्वपूर्ण पुस्तक है। साहित्य सृजन के साथ-साथ दिल्ली के महिला विद्यालय में प्राध्यापक का कार्य भी करती थी। वैविध्यपूर्ण लेखन की प्रणेता कुसुम जी की रचनाओं में तत्कालीन समाज की राजनीतिक, सामाजिक तथा पारिवारिक समस्यायें समाहित है। डॉ. भगवान जाधव के अनुसार- "वे केवल नाटककार ही नहीं उत्कृष्ट निर्देशक, अनुवादक और नाट्य समीक्षक भी है। उनकी अनेक रचनाओं का मराठी, पंजाबी, डोगरी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं में अनुवाद हुआ है। इस प्रकार हिन्दी नाटक विधा में उनका योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। अतः कुसुम कुमार समकालीन हिन्दी रंग कर्म की उल्लेखनीय नाटककार है।"[3] व्यापक अनुभव, करुणामय स्वभाव, और संवेदनशीलता के कारण आपके भीतरी

---

[3] हिन्दी का महिला नाटककार - भगवान जाधव, पृ. 65

व्यक्तित्व में परिवेश के प्रति सजगता और समाज में व्याप्त अन्याय और शोषण के प्रति वेदना का भाव भी दिखाई देता है। इस प्रकार, केवल एक नाटककार के रूप में ही नहीं बल्कि साहित्य के अन्य विधाओं पर भी उनकी देन महत्वपूर्ण है।

2.1.2 कृतित्व

साठोत्तरी महिला नाटककारों में कुसुम कुमार का नाम सर्वोच्च है। उपन्यास, नाटक, कविता, समीक्षा तथा अनुवाद आदि कई विधाओं में उन्होंने अपनी दक्षता दिखायी है। सन् 1965 में शुरु हुए उनके सर्जनात्मक जीवन एक सफलता भरे मोड पर ही था। उन्के साहित्यक विविधता भरे जीवन का परिचय आगे प्रस्तुत है।

2.1.2.1 काव्य

काव्य लेखन में कुसुमजी ने निपुणता दिखाई है। उनकी प्रमुख काव्य रचनाएँ हैं- 'अभी रहेंगे', 'छात्र', 'रास्ते भर', 'जंगल', 'तीन अपराध' आदि। 'तृष्णांकित' 1965 का है जो उनका पहला काव्य संग्रह है। एक सफल कवयित्रि को हम उनकी कविताओं में देख सकते है। मानवीय संवेदना तथा सामाजिक यथार्थ से तादात्म्य उनकी कविताओं की विशेषतायें है।

2.1.2.2 उपन्यास

उपन्यास लेखन भी कुसुमजी के लिए प्रिय रहा। 'हीरामन हाईस्कुल' उनका पहला उपन्यास है। इसमें स्त्रीयों की पीडा तथा वेदना को उभारा है। जुगनी या जुगन्दिर नामक एक पीडित नारी की वेदना को प्रस्तुत उपन्यास आवाज़ देती है। नई

पीढ़ी की मानसिक क्षमता भी नाटक में दर्शाया है। ‘पूर्वाद्धार’ और ‘परदाबाडी’ आदि भी उनके उपन्यास है।

2.1.2.3 एकांकी

‘मादा-मिट्‌टी’ उनका एकमात्र एकांकी संग्रह है। इसका प्रकाशन 1979 में हुआ है। इसमें ‘मादामिट्‌टी’, ‘चूहों के गवाह’ तथा ‘निरमा’ आदि एकांकी संकलन है। ‘विधिवत् प्रजा’, ‘ख्वाबगाह’, ‘सुखीजन’ तथा ‘सलामी मंच’ उनके अन्य एकांकियाँ है। विषय-विविधता से ये एकांकियाँ बहुचर्चित है।

2.1.2.4 अनुवाद

भारतीय और पाश्चात्य नाटकों के व्यापक अध्ययन के बाद, कुसुमजी ने अनुवाद में भी अपनी निपुणता को दर्शाया है। मौलिक नाट्यलेखन में ही नहीं नाट्यानुवाद में भी अपनी सक्रियता का परिचय दिया है। वसंत कानेटकर के ‘हिमालय की छाया’, ‘बिना चेहरों के पुरुष’, जयवेती दलवी के ‘संध्या छाया’, सूर्यास्त’, विजय तेंन्दुलकर का ‘पापा खो गये’ आदि नाटकों का अनुवाद उन्होंने किया है। ‘पसीना पसीना’, ‘बाबी की कहानी’ आदि कहानियों के अनुवाद है।

2.1.2.5 पुरस्कार

नाट्य लेखन के लिए 1982-1983-1997-1998 में हिन्दी अकादमी दिल्ली की ओर साहित्यकार ‘सम्मान’ से सम्मानित किया गया है। सन् 1988-89 में ‘हीरामन हाईस्कुल’ उपन्यास के लिए हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा पुरस्कार दिया गया।

2.1.3 नाट्य रचनायें

नाटक जैसी बहुआयामी विधा की ओर कुसुमजी का झुकाव, सफल रूप में ही लक्ष्य पाया है। कुसुम कुमार की अद्वितीय प्रतिभा हिन्दी महिला नाटक साहित्य के लिए शान बन गयी है। कुसुम जी "तूलिकाओं से रंग बिखेरकर भावाविष्कार करने वाली चित्रकार है। वे बहुमुखी प्रतिभा के स्वामिनी है। ....समाज जो देखा, प्रखरता से महसूस किया उसे शब्द का रुप प्रदान कर यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया है।"[4] साहित्य में अन्य विधाओं से ज्यादा नाटक ही उनका प्रमुख क्षेत्र रहा है। उनके नाटक विषय-विविधता से संपन्न है। आपके नाटक जीवंत समस्याओं का दस्तावेज़ है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं का स्पष्ट एहसास उनके नाटक देते है। ये नाटक उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता के परिचायक है तथा पाठकों के दिल में अपना अमिट छाप छोडने में भी सक्षम है। कुसुम कुमार के प्रमुख नाटकों में 'ओम क्रांति-क्रांति', 'दिल्ली ऊँचा सुनती है', 'सुनो शेफाली', 'संस्कार को नमस्कार', 'रावणलीला', 'पवन चतुर्वेदी की डायरी', 'लश्कर चौक' आदि प्रमुख है। उनके इन नाटकों का सामान्य परिचय ही आगे है।

2.1.3.1 ओम क्रांति-क्रांति

'ओम क्रांती-क्रांती' 1978 में प्रकाशित हुआ और यह उनका प्रथम नाटक है। आज भी एक प्रासंगिक नाटक है 'ओम क्रांती-क्रांती'। डॉ. ब्रजराज किशोर की राय में- "कुछ साल तक लेखिका ने दिल्ली विश्वविद्यालय के दो महिला कालेजों में अध्यापन किया और वहाँ जो देखा, भोगा वह इतना नाटकीय और विडंबनापूर्ण था

---

4 कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य - दीपा कुचेकर, पृ. 11, 12

कि इसमें लेखिका को अभिव्यक्ति के लिये विवश कर दिया।"[5] आज के भ्रष्ट्र-शिक्षा व्यवस्था पर नाटक तीखा व्यंग्य करता है। शिक्षा-संस्थान केवल धनार्जन का केन्द्र रह जाता है। शिक्षा का व्यावसायीकरण, शिक्षा संस्थानों का बाढ़, भ्रष्टाचार, अयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति आदि इसी का कारण है। प्रस्तुत नाटक ऐसी शिक्षा-संबंध्दी समस्याओं का पोल खोलता है।

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु का केन्द्र एक महिला कॉलेज है। अनु, थैलमा, मेनका उस कॉलेज की छात्राओं में प्रमुख हैं। वहाँ की अध्यापिकाओं में मिसिस दानी हिन्दी की प्राध्यापिका है जो हाल ही में 'कबीर' विषय पर पि.एच.डी की उपाधी प्राप्त की है। वह कक्षा में समय पर नहीं आती है और न ही कक्षा उचित रूप से चलाती है, अपनी अज्ञता का निवारण की कोशिश भी नहीं करती है। कक्षा में आती है तो आधा पीरियड आदर्शवादी बातें करके समय बरबाद कर देती है। कबीर के दोहों को भी अच्छी तरह पढा नहीं पाती। छात्राओं को शिक्षक गणों के विरुद्ध आवाज़ उठाने को प्रेरित करती है। वे अध्यापिका से विनती करती है अच्छी तरह कक्षा चलायें। लेकिन मिसिस दानी अपनी शैली से हटती नहीं है और अपने अहं का परिचय देती रहती है। मिसिस दानी प्रिंसिपल से शिकायत करती है।

मिसिस पंत दूसरी अध्यापिका है। मिसिस पंत और मंगला के बीच नयी पीढ़ी के बच्चों के बारे में चर्चा होती है। मिसिस पंत छात्राओं का समर्थन करती है जो मिसिस दानी पसंद नहीं करती। मिसिस पंत की राय में ऐसे बच्चे ज़माने की ज़रूरत है। मिसिस दानी और उसका 'शक्कर' फेमस है। कक्षा में पूरी लडकियाँ उन पर गाना गाकर अपने-डेस्क पर तबले की थाप देती है। उसका परिहास करती है।

---

5 हिन्दी नाटक और रंगमंच: समकालीन परिदृश्य- डॉ. ब्रजराज किशोर, पृ. 119

यह उपहास अंत में विद्रोह में बदल जाता है। लडकियाँ मिसिस दानी को क्लास चलाने से रोकती है क्योंकि वे जानना चाहती है कि मिसिस दानी कक्षा को अच्छे ढंग से चला सकती है या नहीं। उनके आक्रोश और विद्रोह नारे बाजी में बदल जाता है और हंगामा खडा हो जाता है। प्रिंसिपल कक्षा में आते है और मिसिस दानी की शिकायत पर लडकियों को झपट पडता है। लेकिन वे अपनी शिकायतों पर ही सटी रहती है और वे प्रिंसिपाल के सामने नारेबाज़ी करती है और अध्यापिका द्वारा उनसे माँफी माँगने की बात कहती रहती है। उनके नारे वहाँ गूँजते रहते है.... 'ओम क्रांति क्रांति, ओम क्रांति क्रांति...' यही इस नाटक का सार है।

प्रस्तुत नाटक में कुसुम कुमारजी ने अपने परिवेश की विकृत वातावरण से संवेदना प्रकट की है। शिक्षा संस्थाओं में व्याप्त दुर्बलतायें इस नाटक में मौजूद है। शिक्षा का औद्योगीकरण, शिक्षा संस्थाओं की बाढ आदि कारणों से शिक्षा व्यवस्था की मूल्यच्युति एक आम बात रह गयी है। वर्तमानकालीन शैक्षिक अधःपतन तथा शिक्षकों की दायित्वहीनता का स्पष्ट एहसास प्रस्तुत नाटक देता है।

2.1.3.2 सुनो शेफाली

समाज सेवा के बहाने अपने उल्लू सीधा करने वाले तथाकथित राजनैतिक नेताओं एवं समाजसेवियों के आगे अपने आत्मसम्मान को गिरवी न रखनेवाली एक दलित युवती की कथा को प्रस्तुत करता है 'सुनो शेफाली' नामक नाटक। हर परिवेश में अपने स्वार्थ को सर्वोपरी माननेवाले राजनेता, अपने स्वार्थ के सामने न्याय और आदर्श को छुटकारा देते है। भ्रष्ट व्यवस्था और विषय व्यवस्था के सुदृढ चट्टान में अकेली नारी के संघर्ष को इस नाटक में चित्रित किया है।

नाटक में शेफाली दलित लडकी है जो शिक्षित, सुन्दर तथा आत्मनिर्भर है। शेफाली का प्रेमी बकुल के पिताजी सत्यमेव दीक्षित एक राजनैतिक नेता है। मन्नन आचार्य नाटक का अगला प्रमुख पात्र है। जो अत्यन्त समझदार एवं होशियार है। अपना भविष्य जानने के लिए समाज के विभिन्न स्तरों के लोग उनके पास आते है। वह खुद को झूट-मूट का ज्योतिषी कहता है। बकुल और शेफाली मन्नन आचार्य के यमुना घाट पर सदा मिलते थे और अपने सपने संज्योते थे। दोनों अपने भविष्य के बारे सोचते थे। शेफाली अपनी ज़िन्दगी में नियत दृष्टिकोण रखती है। वह वर्षों से मिलनेवाली रियायत पर अपना विद्वेष प्रकट करती है तथा उसे शासकों की चालाकी का एक पहलू मानती है। बकुल शेफाली से शादी करने की इच्छा प्रकट करता है लेकिन शेफाली बकुल के पिता की कूटनीति से परिचित होने के कारण, मंजूर करने में देरी करती है। सत्यमेव शेफाली से बेटे की शादी करके, हरिजन उद्धार की आड में अगले चुनाव में जीतने का षडयंत्र रचता है। शेफाली स्थिति को अच्छी तरह समझती है इसलिए बकुल के प्यार को टालती है और शादी के लिए 'हाँ' नहीं कहती है।

मन्नन शेफाली से खुलम-खुला बातों बातों में कहती है कि वह ज्योतिषी नहीं है, केवल कुछ कायारों के इलाज के लिए यमुना के घाट पर ठहरे है। उसी मन्नन के पास सत्यमेव दीक्षित अपने राजनीतिक भविष्य जानने के लिए आते है। मन्नन से सत्यमेव अपनी राजनीति और अगले चुनाव में जीत पाने की आशंका बाँटता है। शेफाली से सत्यमेव संबंधी पूरी जानकारी प्राप्त मन्ननजी, उस पर द्वयार्थक शब्दों से व्यंग्य का बाण चलाते है और चुनाव में जीतने की आशीष भी देते है। शेफाली की माँ अपनी बेटी का उज्ज्वल भविष्य से इनकार बरदाश्त नहीं कर पाती। लेकिन

शेफाली, सत्यमेव और उसके बेटे की चालाकी माँ को बता देती है और अपने आत्मसम्मान की उपेक्षा ना करने की विनती भी करती है। और यह भी वादा करती है कि माँ की सिफारिश से, वक्त आनेपर शादी करेगी। शेफाली और मन्नन का रिश्ता इतना गहरा है कि शेफाली अपने वर्तमान और भविष्य की आंशकायें उससे बाँटती है। मन्नन से इसे एक भाई जैसा प्यार और आश्वास मिलता है जो उसकी मानसिक संतुलन के लिए ज़रूरी थे। सत्यमेव और बकुल मिस साहब के पास जाकर, शेफाली को शादी के लिए मंजूर कराने की विनती करते है। सालों से शेफाली से परिचित मिस साहब ऐसी एक हरकत के लिए तैयार नहीं होते है। खुद बकुल शेफाली से शादी की मामले बातें करता है और शेफाली अपना आत्मरोष रोक नहीं पाती है। बाप और बेटे के षडयंत्र पर वह टूट पडती है तो बकुल चुप बैठ जाने को विवश होता है।

शिवालय देखने की इच्छा की पूर्ती, मन्नन आचार्य के साथ जाकर करती है। लेकिन वहाँ का दृश्य शेफाली को एक जडमूर्ती बना देता है। अपनी बहन और बकुल की शादी की साक्षी बन जाती है। अपनी बहन और प्रेमी से मिले इस तौफे को स्वीकार नहीं कर पाती है। और अंत में वह अपने को अंधेरे में घुलमिला महसूस करती है। शेफाली की इस व्यथा और प्रतिशोध ही नाटक का केन्द्र बिन्दु है। शेफाली अपने प्रतिशोध से एक हद तक जीत जाती है लेकिन अंत में अपनी ही बहन द्वारा ढगी जाती है। इस प्रकार लेखिका ने इस नाटक में समाज सेवियों के छल-कपट, जाति-बंधन, हरिजनों पर करनेवाले अत्याचार, झूढे ज्योतिषियों के ढोंग और कपटता आदि को चित्रित करने का प्रयास किया है।

2.1.3.3 संस्कार को नमस्कार

'संस्कार को नमस्कार' में राजनीतिक नेताओं द्वारा नारी शेषण के कटु यथार्थ को हमारे सम्मुख रखा है। नाटक में संस्कार चंद, कामोबेन, दोनों नारी शोषण के प्रमुख कार्यकर्ता ठहर जाते है। कामोबेन नारी निकेतन की संचालिका है और संस्कार चंद आश्रम के अध्यक्ष है। शक्ति, विद्या, पाँचाली आदि नारी निकेतन की अबलायें है। संस्कार चंद का नारी निकेतन में प्रतिवर्ष आने का लक्ष्य ही वहाँ की निरीह लडकियों का शारीरिक शोषण है।

नाटक संस्कार चंद के स्वागत कार्य के प्रबंधों से शुरु होता है। संस्कार चंद का स्वागत कार्य कामोबेन को लिए बहुत अधिक खुशी देता है। वह उसकी आरती उतारने को तथा मंगल गान के लिए निकेतन की लडकियों को तैयार करती है। उसके लिए संस्कार चंद की चापलूसी और चमचागिरी, अपना उल्लूसीधा करने का काम है। अपनी बेटियों को होस्टल में पढाती है और उनकी भलाई के लिए यहाँ की महिलाओं का शोषण होता है। कामोबेन की चालाकी संस्कार चंद को खुशामद करने में है क्योंकि नारी निकेतन का काम भी ठीक-ठाक से चलता है। जब संस्कार चंद वहाँ आते है- तब वहाँ की लडकियाँ फीके खरबूजों जैसा नहीं होना चाहिए। इसलिए लडकियों का साज-श्रृंगार जरूरी भी है। संस्कार चंद को वही पसंद है जो साज-श्रृंगार के साथ हो। संस्कार चंद जैसे समाजोद्धारक का 'कर्तव्यपालन' का यह मुखौटा ही असल में नाटक का केन्द्र वस्तु है। संस्कार चंद का स्वागत धूम-धाम से कीर्तन-गायन और आरती उतरवाकर होता है। नारी केन्द्र में संस्कार चंद का विशेष ध्यान रखा जाता है। खान-पान से लेकर सोने तक में कामोबेन का विशेष ध्यान रहता था। संस्कार की इच्छा के अनुरुप 'सबसे अच्छी' चीज़ों का प्रबंध उनके लिए

वहाँ होता था। पिछली बार उनके भोगविलास की तृप्ति दमयंती से हुई थी। दिन में वे इन लडकियों को सीता-सावित्री, मीरा आदि सन्नारियों से प्रेरणा ग्रहण करने का उपदेश देते रहते है और रात में उन्हीं का शोषण करते है। एक नेता के दोहारेपन की 'सारी खूबियाँ' उनमें भरी हुई है। खद्दर पहनने का, बडों का आदर करने का उपदेश तो देता है। देश में अन्न की कमी न होने के लिए रात का खाना छोडता है, समाज सेवा में डूबकर अपने स्वास्थ्य संरक्षण को भूलनेवाला नेता ही रात में, काजू बादाम जैसी कीमती खादन्य चीज़ों का इस्तेमाल करते है। रात को संस्कार चंद आश्रम की निरीह लडकियों को गीत सुनता है और उनका नृत्य देखता है। लडकियों को पुचकारता और प्रशंसा भी करता है।

इसके बाद वह शक्ति और विद्या को अपने कमरे में ले आता है और अपनी सेवा शुश्रूषा के लिए कहता है। शराब को दवा कहकर पीता है और शक्ति पिलाने की कोशिश भी करता है। अपनी प्यारी बातों से उसे अपनी इच्छा का पात्र बनाता है। सदा की तरह उनका वहाँ से विदाई भी त्योहार जैसा मनाया जाता है। जाते समय अपने कर्तव्य पर और भारतीय संस्कार की गरिमा पर ज़ोरदार भाषण देता है। उसकी सेवा के लिए इच्छुक कामोबेन से अगली बार आने की वादा करके संस्कार चंद जाता है। यही इस नाटक की कथावस्तु है।

नाटक में विशेषकर नटी और सूत्रधार के बयान से नाटक का पूरा विषय समझ पाते है। दोनों संस्कार चंद तथा भारतीय संस्कृति की ह्रास पर ज्यादा बयान देते है जो नाटक का विषयवस्तु है। इसमें लेखिका ने समाज सेवा के मुखौटे को हटाकर उसके पीछे की छल-कपट को हमारे सामने उद्‌घाटित किया है। उनकी राय में समाज सेवा की आड में होनेवाली सारी क्रिया कलापों के पीछे कोई न कोई कपट

निहित है। इस प्रकार 'संस्कार को नमस्कार' नामक नाटक समाज के बाहरी आवरण को हटाकर उसके भीतर के बीभत्स दृश्यों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में समर्थ है।

2.1.3.4 दिल्ली ऊँचा सुनती है

नाटक 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' पूरी शासन व्यवस्था पर प्रत्यक्ष रूप से चोट करने को सक्षम है। स्वातंत्र्योत्तर समाज को ग्रस्त बीमारियों में प्रमुख है नौकरशाही, लालफीताशाही और भ्रष्टाचार। ऐसी बीमारियों से शय्याग्रस्न आम आदमी इसकी दवा न मिलने पर आज भी दर्दनाक ज़िन्दगी बिताता है। मध्यवर्ग के अर्थाभाव-बढता अमानवीय व्यवहार, मंत्रियों की अकर्मण्यता जैसी अनेक कुटिल नीतियों को नाटक प्रकाश में लाता है।

माधोसिंह, कमला, बेटी नीति, मगन, आफिस के कर्मचारी आदि नाटक के प्रमुख पात्र है। माधोसिंह नाटक का नायक है जो दिल्ली के वित्तमंत्रालय से छत्तीस वर्ष की नौकरी के बाद सेवानिवृत्त हुआ है। सेवानिवृत्ति के बाद दिल्ली जैसे महानगर में जीवनयापन की आर्थिक क्षमता के अभाव में, माधोसिंह और परिवार गॉव लौट आते है। गॉव में मगन नामक दोस्त के ज़रिए एक घर का बन्दोबस्त होता है और माधोसिंह तथा उनका परिवार बाकी ज़िन्दगी वहाँ बिताने को निश्चय करते है। पत्नी कमला इस निश्चय से उतना तृप्त नहीं है लेकिन अपने पति की इच्छा का आज्ञानुवर्ती बनकर गॉव में जीने को मंजूर करती है। मगन, माधोसिंह के लिए एक छोटा भाई जैसा है, जिसको यह बात बहुत आश्वास दिलानेवाली थी। अपने पेंशन मिलने पर आराम की ज़िन्दगी जीने की इच्छा उसमें थी। लेकिन पेंशन प्राप्त न होता है उनकी ज़िन्दगी ज्यादा अंधकारमय ठहर जाती है। अनेक लेखा-जोखा के बाद भी

माधोसिंह का पेंशन संबंधी कोई खबर न मिलने के कारण वह खुद ही दिल्ली के दफ्तर जा पहुँचता है। वहाँ कर्मचारियों की अनास्था, मोधोसिंह को इतना कष्ट देता है कि उनका पेंशन संबंधी फाइल ढूँढ निकालना भी उनके लिए असमर्थ बन जाता है। बेटी नीता की सहेली की मदद से फाइल मिल जाता है लेकिन सरकारी कागज़ातों में वह 'मृत' रेखांकित है। माधोसिंह के लिए यह कठोर प्रहार बन जाता है और अपने को जीवित स्थापित करने केलिए दौड-धूप फिर शुरु करते है। परिचित डाक्टर भी ऐसा एक प्रमाण पत्र देने का जोखिम उठाने को तैयार नहीं होते है। अन्त में सरकारी अस्पताल के डाक्टरों से हाथ-पाँव पकडकर वह प्रमाण पत्र मिलता है लेकिन उसमें नाम गलत लिखा जाता है। गलती किसी तरह ठीक करा लेते है। लेकिन पे एण्ड एकांउट ब्रांच अदायगी को रोक देती है। गृहमंत्री से सिफारिश कराने पर भी कुछ नहीं होता है।

पेंशन के अभाव से घर की हालत बिगडती जाती है। चूल्हा जलाने में भी असमर्थ कमला दुखी हो जाती है। एक परित्यक्ता नारी के मानसिक संत्रास के अलावा घर की ऐसी स्थिति में अपने को बोझ न होने का निर्णय बेटी नीता लेती है और वह आत्महत्या करती है। माधोसिंह और कमला का हृदय टूट जाता है। पेंशन के मामले की जाँच के लिए आयोग को निश्चित किया जाता है और एक इन्वेस्टिगेशन अधिकारी को भी। पेंशन न मिलने की अवस्था उसके पीछे की दौड-धूप तथा बेटी की मृत्यु माधोसिंह को निराश और मानसिक दबाव में डाल देती है। उनका भी निधन हो जाता है। उसकी मृत्यु के बाद पेंशन की रजिस्ट्री कमला को मिलती है। लेकिन वह भी उसे नहीं ले पाती है। ऐसी विवशता में नाटक समाप्त होती है।

सरकारी कागज़ातों के पीछे दौडकर ज़िन्दगी गँवाये, माधोसिंह हमारे इर्द-गिर्द का आम आदमी ही है। नाटक पूरे सरकारी शासन तंत्र की कमजोरियों को खुल्लम-खुल्लम प्रस्तुत करता है। "व्यवस्था बहरी है जिसकी कानों तक सामान्य जनता के दुख-दर्द की आवाज़ तक नही पहूँच जाती है।"[6] डॉ. नरनारायण राय का वाक्य इस नाटक के संदर्भ में बिलकुल ठीक निकलता है। नाटक पूरे शासन-व्यवस्था के चक्कर में फँसकर, शहीद हुए माधोसिंह की करुण कहानी के माध्यम से प्रशासनिक अकर्मण्यता को चित्रित करता है। नाटक इस सत्य का पोल खोलता है कि अर्थाभाव, नौकरशाही, लालफीताशाही, रिश्वत खोरी आदि सारी बुराइयों का बोझ आम आदमी पर ही पडता है।

2.1.3.5 पवन चतुर्वेदी की डायरी

'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में एक असफल, नाकामयाब आदमी की कहानी है। परिस्थितियाँ कैसे एक आदमी की नियति पर प्रभाव डालती है, इसका अप्रतिम मिसाल है पवन की ज़िन्दगी। नाटक का नायक पवन चतुर्वेदी खुद कहता है, उसकी डायरी एक लंबा मर्सिया है और उनकी ज़िन्दगी भी। आज के व्यक्ति अपनी परिस्थिति, चाहे किसी भी किस्म की हो, उसका सामना न करके पलायनवादी मानसिकता को चुनते है। डॉ. चतुर्वेदी, पवन चतुर्वेदी, सुषमा आदि कथापात्रों के माध्यम से कुसुम जी ने एक खोये हुए व्यक्तित्व को पहचान दी है।

डॉ. चतुर्वेदी शहर के जाने-माने हस्तियों में एक है जो अपनी प्रतिष्ठा को, किसी भी हालत में गिरने नहीं देते है। वे पद्मभूषण से अलंकृत भी है। अपने पुत्र

---

[6] नया नाटक- उत्भव और विकास- नर नारायण राय, पृ.174

पवन चुतर्वेदी को बडे पद में देखना चाहते है। लेकिन वह जीवन में निष्प्रभ रहा। बि.एस.सी पढते समय, फिल्म हीरो बनने के बड़े-बड़े सपने लेकर वह मुंबई गया। उस कैरियर में उसे अच्छा ब्रेक मिला। और मुंबई में ही नये मौके की तलाश में ठहरा। लेकिन फिल्म हीरो की भूमिका में वह उतना सफल न हुआ। इसी बीच वह सुषमा के प्रेमजाल में फँसकर उससे शादी भी करता है। दूसरे बच्चे के बाप होने से पहले वह, अपने आर्थिक अभाव के कारण उससे गर्भच्छद के लिए अनुरोध करता है। यहीं से दोनों के बीच दरार उत्पन्न होता है। इला नामक और एक औरत से पवन का झूकाव भी इसी का कारण बन जाता है। ज़िन्दगी की नाकामयाबी उसे निराश बनाता है और वह मुंबई छोडकर अपने ही शहर में गांधी वाचनालय शुरु करता है। ऐसे हर मोड में पराजित पवन दोस्त मेहता से सहारा पाता है।

मेहता उसे शेयर मार्कट के ज़रिए पैसा कमाने का उपदेश देता है और टूटे रिश्ते पैसे से पुनः बनाने का विश्वास दिलाता है। जबकि डॉ. चतुर्वेदी को मेहता ऐश करनेवालों की ज़मात का लगता है जो बाद में ठीक ही निकलता है। पवन मेहता के ज़रिए पैसा कमाने के लिए अपनी पूँजी शेयर बजार में लगाते है लेकिन मेहता पवन की पूँजी हडप लेता है। सुषमा बच्चों के पालन-पोषण के लिए ख़र्च माँगती है तो पत्र व्यवहार में उसे और उसके पिता को गालियाँ देता है। बच्चों के मन में भी पवन के प्रति घृणा का भाव सुषमा पैदा कर देती है। पवन की इस नियति पर डॉ.चतुर्वेदी को दुःख होता है। इसीलिए वह अपने बेटे को मशवरा देता रहता है। लेकिन पवन पिता को अपना विरोधी समझकर उनसे घृणा करता है। वह समझता है कि उसके मन में पिता से 'लव एंड हेट' रिलेशनशिप है। लेकिन जब पिता की मृत्यु होती है, तब पवन अपने को पूर्ण रुप से बेसहारा पाता है। पिता का चश्मा

पाकर वह खुद को सुधारने की कोशिश करता है, लेकिन ज्यादा लेट हो जाता है। ऐसे एक त्रसित हालात में नाटक का अंत होता है।

एक जर्जर पुस्तकालय में पवन की ज़िन्दगी का खत्म होना और वहाँ केवल बोझिल तथा जासूसी पुस्तकें रखना पवन की ज़िन्दगी की नियति का प्रतीक है। अपने सारे रिश्ते से नाता टूटने के बाद, उसके जीवन का अकेलापन तथा दुरूह परिवेश, इसमें सूचित होते है। वह समझता है कि जैसे पुस्तकालय में रहकर भी वहाँ कुछ न घटित होता है, उसी प्रकार उसकी ज़िन्दगी भी विशेष मायने नहीं रखा है। पुस्तकालय की जर्जरता पवन के जीवन की जर्जरता है। इस प्रकार नाटक में एक असफल आदमी की ज़िन्दगी के ज़रिए समकालीन यथार्थता को उभारने का प्रयास किया है। 'पवन' नयी पीढी के युवकों का प्रतिनिधि है जो असफल ज़िन्दगी का अग्रदूत है।

2.1.3.6 रावणलीला

लोक-शैली का अत्यंत सशक्त और महत्वपूर्ण नाटक है 'रावणलीला'। कुसुम कुमार का यह नाटक लोक नाटकों की उत्कृष्ट श्रेणी में है। डॉ. जयदेव तनेजा के अनुसार- "वस्तुतः लोकनाटक सामान्य जन (कलाकार) द्वारा सामान्य जान के लिए, अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत, सामान्य जीवन की सहज, स्वाभाविक, अनौपचारिक, नृत्य गीत और संगीतमय जीवंत एवं लोक रंजक अभिव्यक्ति का नाम है।"[7] हिन्दी क्षेत्र में रामलीला, रासलीला, नौटंगी, भगत, स्वांग, नकल, भडैती, खयाल माच नाम के लोकनाट्य रुप बहु चर्चित एवं अपनी लोकप्रियता में सबसे आगे भी है। और ऐसे

---

7 हिन्दी रंगकर्म, दशा और दिशा - जयदेव तनेजा, पृ.125

लोक नाट्यरुपों में काव्यात्मकता तथा अभिनेयता का मिश्रण करके ही लोक-नाटकों के रुप में लिखा या अभिनय किया जाता है। डॉ. कुसुम कुमार का रावणलीला ऐसा एक नाटक है जो रामलीला और नौटंगी शैली का मिश्रित रुप है। लेखिका ने रामलीला के ज़रिए रावणलीला दिखाकर नायक करतारसिंह की सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति का विश्लेषण किया है।

दो अंकों में नाटक विभाजित है। जिगरपूर की रामलीला के छठे दिन में मंच संचालक, जगन्नाथ नाटक समय पर शुरु न हो सका। इस कारण भाषण देकर समय बिताया जा रहा था। लेकिन दर्शक इससे तृप्त न होकर आवाज़ उठाने लगे और सीटियाँ बजाने लगे। दर्शकों के उतावलेपन के बावजूद भी नाटक शुरु न हो सका। दर्शक रामलीला में दशरथ की भूमिका निभानेवाले भगवानसिंह को देखना चाहते थे, जो यहाँ से प्रसिद्ध होकर दिल्ली की रामलीला मंडली में गया था। नाटक में पहला दृश्य शूर्पनखा का था जिसकी भूमिका में काम करनेवाली अपनी सुध-बुध खोकर अभिनय करना ही भूल जाता है। चेतराम छोटाकलाकार है इसलिए वह, बडे कलाकारों से हमेशा डॉट खाता था। कलाकारों के आपसी वार्तालाप से उनकी स्थिति हम समझ पाते है। चेतराम सीता की भूमिका में खुद को भद्दा पाता है क्योंकि अब उसकी तोंद बडी हुई है। कलाकारों के लिए चाय पानी का प्रबंध करनेवाले काशीराम उनके बुरे व्यवहार से परेशान है। करतारसिंह को शराब पीने की आदत है। जिसे वह पसंद नहीं करते है। मारीच अपनी परेशानी व्यक्त करता है कि उसके पास संवाद पढने का समय नहीं है क्योंकि वह एक दूकान पर रात के आठ बजे तक काम करता है। नाटक फिर शुरू होने के पहले सेठ धर्म चंद का भाषण सुनाई देता है। मंच पर पंचवटी का दृश्य शुरू होता है। सीता का संवाद

भूल जाने के कारण वह रावण का प्रतिशोध किए बिना ही उसके साथ चलने को तैयार हो जाती है।

असली रावणलीला तो बाद में होती है। रावण का वेष करनेवाले करतारसिंह, समिति से अपनी मज़दूरी बढ़ाने की माँग बडे समय से करते आ रहे थे। उसकी राय में अपने अभिनय की तारीफ से सिर्फ काम न चलेगा। जीने के लिए पैसे चाहिए, प्रशंसा नहीं। लेकिन काशिराम करतार सिंह की माँग को निषेधात्मक तरीके से अपनाते है। इसलिए राम-रावण युद्ध के पहले वह संचालकों को द्वन्द में डाल देता है कि मज़दूरी के बढाए बिना अभिनय न करेगा। अंत में करतारसिंह की मज़दूरी बढाती है और रावणलीला का शुभपर्यावसान होता है। यहाँ रामलीला में राम की जीत के बदले रावण की जीत समकालीन परिवेश की उपज है। व्यक्ति अपने अंतरलीन अच्छाइयों के बावजूद भी परिस्थितिवश 'रावणलीला' के लिए विवश होता है। लोकनाट्य की जर्जरता के साथ कलाकारों की आर्थिक-मानसिक विपन्नता तथा परिवेश के चक्कर में फँसकर अपनी चुनौतियों का सामना करने में तकलीफ झेलनेवाले आम आदमी नाटक के केन्द्र में है। अतः हम कह सकते है कि रावणलीला कथा की नवीनता की दृष्टि से और समसामयिक संवेदना को उजागर करने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण नाटक है।

2.1.3.7 लश्कर चौक

'लश्कर चौक' सांप्रदायिकता के आग में राख बन गये एक परिवार तथा एक मुल्क के लोगों की कातरता का स्पष्ट एहसास है। हमारे समाज की उन्नति के विघातक तत्वों में सबसे आगे खडी है सांप्रदायिकता। इस नाटक ने कुछ ऐसे धार्मिक, सामाजिक ठेकेदारों का पोल खोल दिया है जो अपनी कुबुद्धी से धार्मिक नफ़रत पैदा

करके सामाजिक एकता को बर्बाद कर दिया है। नाटक स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ समय पहले की घटना से शुरू होकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के कुछ वर्षों तक चलता है।

नाटक का नायक रामदास है। उनकी पत्नी लीला तथा बेटा श्याम अन्य पात्र प्रमुख है। रामदास स्वतंत्रता आंदोलन में परोक्षरूप से भाग ले रहे थे। उनकी पत्नी लीला एक कट्टर, धर्मावलंबी है। वह धार्मिक रीति-रिवाज़ों का पालन करती भी है और साथ ही सामाजिक मूल्यों के प्रति सजग भी है। बीस वर्षीय श्याम खुलेविचारों से युक्त एक युवा है। उनके लिए सामाजिक अन्याय तथा कुरीतियाँ असह्य है। और उनके विरुद्ध आवाज़ उठाने भी से वह नहीं डरता है। उनके घर में एक मुसलमान औरत हिन्दु नाम अपनाकार आती है और सहारा देने के लिए भीख्र माँगती है। ठकुराईन बनी उस औरत को रामदास तथा लीला आश्रय देते है। उनकी ईमानदारी तथा परोपकार भावना के कारण ही उस औरत को सहारा मिलता है। लेकिन बाद में असलियत सामने आती है, कि वह एक मुस्लिम औरत है। अपने पति के दमन से बचने के लिए वह घर छोडकर आयी और रामदास के घर में ठहरी है। इस घटना से समाज के सामने रामदास और उसका परिवार गुनेगार बन जाता है। एक मुसलमान औरत को घर में रख्रने के कारण रामदास को धार्मिक नेताओं से सजा मिलती है कि वह हिन्दु कहलाने से वंचित हो जायेंगा। धार्मिक ढेकदारों के मतानुसार इस्लाम धर्म स्वीकारने को, रामदास विवश हो जाता है। धर्मांतरण से बहतर मौत है माननेवाला रामदास और उसका परिवार, जीने की विवशता में इस्लाम धर्म स्वीकारते है। रामदास करीम, लीला फातिमा तथा श्याम मदीन बन जाने की

नियति उनके लिए कटु यथार्थ था फिर भी स्वीकारना पडता है। देश की आज़ादी ऐसी अवस्था से उन्हें मुक्त कर लेगी, यहीं उनका अखीरी उम्मीद थी।

लेकिन आज़ाद देश कट्टर पंथी स्वार्थता, धार्मिक रुढी बद्धता आदि का शिकार ज्यादा बन जाते है। क्योंकि 'फूट डालो-शासन करो' की नीति तो यहाँ छोडकर जाते समय अंग्रेज़ों ने हम को दे दी थी। मुसलमान बनकर नौ बरस के बाद भी रामदास के मन से 'हिन्दुत्व' नहीं मिट पाया। वह जिस धार्मिक संस्कार में पले थे। उसी में ही जीवन पर्यत जीना चाहते थे। चौपाल के लोग, मुखिया, सरपंच, धर्म के ठेकेदार, पंडित सारे लोग धार्मिक कट्ठरता के प्रतीक है। अतः रामदास को अपने धर्म में लौटने की सहमती नहीं मिली। कान्हा ऐसा एक व्यक्ति है जो सभी धार्मिक ढेकेदारों पर खुलकर व्यंग्य करता है। वह श्याम की तरह ही जोशीला हो अपने धार्मिक स्वतंत्रता का पहरेदार बनकर रहने को तैयार हो जाता है। बच्चों को साथ लेकर पोस्टर बनाता है, सवारियों को रोकना चाहता है। सवारियों तथा दंगा फसाद उत्पन्न होनेवाली घटनायें रोकना चाहता है। कान्हा औरतों को प्रेरित करता है। ज़िन्द्धी औरतें दंगा-फसाद रोक सकती हैं। धर्म, जाति, स्वार्थ की लडाई में सारी महिलायें एकजुट होकर रहना चाहती है। कान्हा की कोशिश एक हद तक सफल होती है। हिन्दु-मुस्लिम सारी महिला एकजुट होकर धीमापुर की विभाजन रेखा के बीच आ जाती है। लेकिन पुरुष ऐसी अवस्था नहीं चाहते है कि औरतें इस लडाई में भाग लें। अंत में दोनों पक्षों के बीच लडाई-दंगा होता है, गोली चलायी जाती है। पारा बेगम की कुर्बानी से नाटक समाप्त हो जाता है।

नाटक यह बताता है कि “पुरुष प्रधान समाज की सारी धर्मांधता तथा सांप्रदायिकता का खमियाजा अंततः स्त्रीयों को भुगतना पडता है चाहे वे, किसी संप्रदाय या धर्म का क्यों न हो।”[8] प्रस्तुत नाटक में यह सुचित करता है कि जिस धर्म मानव-कल्याण के लिए रखा गया है, उसी के नाम पर आदमी आपस में लडते है। व्यक्ति की मति-बुद्धि धर्मांधता में मिट जाने का दयनीय परिदृश्य नाटक दिखाता है।

2.2 नादिरा ज़हीर बब्बर

2.2.1 व्यक्तित्व

हिन्दी नाटक और रंगमंच को उल्लेखनीय योगदान दोनेवालों में एक नाम और जोड दिया गया है- नादिरा ज़हीर बब्बर। प्रगतिशील लेखकसंघ के संस्थापक साहित्यकार सजजाद ज़हीर की बेटी नादिरा ज़हीर बब्बार संस्कारगत लेखिका है। नादिरा जी का जन्म 20 जनवरी 1948 को लखनऊ के सुसंस्कृत, संभ्रांत परिवार में हुआ था। बि.ए की पढाई के बाद राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में निर्देशन में डिप्लोमा उन्होंने किया। 1971 से 73 तक जर्मनी के बर्लिन एनसांबल तथा नाशनल थियेटर आफ बाइमर में नाट्य प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम पूर्ण करने का सौभाग्य उसे मिला है। साहित्यक माहौल में पनपने तथा छात्रावस्था में अन्य सांस्कृतिक कार्यों के लिए पूरी छूट मिलने के कारण ही उनका साहित्यक और सांस्कृतिक पक्ष ज्यादा उजागर हुआ है। बचपन से ही उन्हें नाट्य गतिविधियाँ अधिक प्रिय रही है। एक सफल नाटक लेखिका होने के साथ-साथ वह एक अभिनेत्री और एक सफल निर्देशिका भी है।

---

8 कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य - दीप कुचेकर, पृ. 31

2.2.2 निर्देशिका के रूप में

1981 में मुंबई में नादिरा ज़हीर बब्बर ने ‘एकजुट’ नामक दल की स्थापना की और इसके साथ ही निर्देशन प्रारंभ हुआ। पहले वर्ष में ही उन्होंने, आगा हश्र कश्मीरी के ‘यहूदी की लडकी’ और मैक्सिम गोर्की के ‘तलछट’ नाटकों का निर्देशन किया है। साथ ही ‘संध्या छाया’, हबीब तनवीर का ‘चरणदास चोर’ और ‘पंख होते तो उड जाती’ आदि इनके साथ कई विदेशी नाटकों का अनुवाद कर निर्देशन किया तथा अभिनय भी किया। धर्मवीर भारती की कालजयी कृतियाँ कनुप्रिया और अंधायुग पर आधारित ‘इतिहास तुम्हें ले गया कन्हैया’, प्रसिद्ध चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन के जीवन पर आधारित ‘पेंसिल से ब्रश तक’ और उत्तर पूर्व की पृष्ठभूमि पर आधारित ‘ऑपरेशन क्लाउडबर्स्ट’ आदि दर्जनों नाटकों का निर्देशन किया है जो भारतीय रंगमंच में श्रेष्ठ रह है।

2.2.3 पुरस्कार

अपने रंगकर्म के योगदान के लिए अनेक पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए है, जिन्में केन्द्रीय और उत्तरप्रदेश संगीत नाटक अकादमी के पुरस्कार आदि उल्लेखनीय है।

2.2.4 नाट्य रचनायें

एक सफल निर्देशक, अभिनेत्री के साथ-साथ नादिरा ज़हीर बब्बर मौलिक नाट्यरचना के क्षेत्र में भी अपनी दक्षता दिखाती रही है। उनके हरेक नाटक विषय-विविधता तथा कथ्य की दृष्टि से ख्याती-प्राप्त है। ‘सकुबाई’, ‘दयाशंकर की

डायरी', 'सुमन और सना', 'जी जैसी आपकी मर्जी', 'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' आदि उनके प्रमुख नाट्य रचनायें है। उनके नाटकों का सामान्य परिचय आगे है।

2.2.4.1 सकुबाई

ज़िन्दगी में श्रम की गरिमा तथा महत्व को दर्शानेवला एक नाटक है 'सकुबाई'। इस नाटक के ज़रिए नादिरा जी ने घरेलू नौकरों की ज़िन्दगी का एक झलक से परे, उनका विस्तृत जीवन हमारे सम्मुख रखा है। 'सकुबाई' इस नाटक की नायिका है जो निम्नवर्ग परिवार की है। अपनी कमज़ोर ज़िन्दगी को पीछे थकेलकर-कामयाबी से आगे बढने में वह जीत गयी है। प्रस्तुत एकल नाट्य सकुबाई के संवाद से गतिशील होता है।

नाटक के प्रारंभ में हम देखते है कि मुंबई के मध्यवर्गीय परिवार के फ्लैट में सकुबाई काम करने केलिए आती है। घर का सारा काम उसके ऊपर छोडकर मेमसाब आफिस जाती है। बच्चों को खाना खिलाने से लेकर साडी का फाल लगाने तक का काम सकु को करना पडता है। घरवालों की इस नीति से उसे अमर्ष है कि बाई रखे तो सारा का सारा काम उसी के ऊपर। ऐसी बातें सोचकर वह अपने भूतकाल की ओर हमें ले जाती है। सकु यानी शकुन्तला गरीबी के कारण माँ के साथ मुंबई में काम करके जीने के लिए आती है। बहन वासंती को बाबा के पास छोडकर भाई नितिन को लेकर माँ और सकुबाई बंबई आती है। वह माँ के साथ काम करने के लिए जाने लगती है। बंबई जैसे महानगर के लोगों की अजीब सी आदतें सकु के लिए कुछ असहनीय थी। वह अपने नानी और मामा के साथ ही रहते थे। नितिन वहाँ स्कूल में पढता था। सकु जवान बन जाती है और मामा द्वारा उसका बलाकार भी होता है। जिनके पनाह में अपने को सुरक्षित मानते थे उनसे ही

सकु का शोषण, मूल्यों की अवनती की और नाटककार इशारा करती है। इस बात को छुपाना वह चाहती थी लेकिन आई द्धारा पकडी जाती है। नानी मामा पर टूट पडती है, जिसके परिणाम स्वरुप वे बेघर होते है। वे ओर कोई स्थान ठहरने के लिए ढूँठती है। स्वाभिमानी माँ बेटी से यह बात और किसी से न कहने का कसम लेती है। उस माँ के मन में अपनी बेटी का भविष्य ही मुख्य था।

सकु और माँ मेहनत करके ज्यादा कमाती है और गाँव में पिता और वासंती को भेज देती है। पति और वासंती की हालत पर आई को तरस भी आता है। वासंती गाँव में और किसी के चक्कर में है जानकर बाबा भी परेशान है। इसी बीच सकु की शादी होती है। उसका पति पुलिस की चुंगी पर काम करता है। वह अच्छा-खासा है। वह किसी दूसरी एक औरत (मिश्राइन) के चक्कर में था लेकिन बाद में उसे छोड़कर वह सकु और बेटी को प्यार से पालने लगता है। सकु के बाबा चल बसते है और वासंती अहमद के साथ भाग जाती है। नितिन की शादी हो जाती है। बीच में वासंती की आत्महत्या, उनके सुख चैन से भरी ज़िन्दगी में दुःख की छाया ला देती है। यशवन्त की मृत्यु एड्स के कारण होती है। सकु और साइली एड्स बीमारी से बच जाती है। सकु ऐसी पुरानी बातों से हमें नाटक की कहानी में परिचित कराती है। नाटक के अन्त में सकु अपनी बेटी की शैक्षिक जीत पर गर्वीली दिख पडती है। उसकी बेटी कवयित्री के रुप में जानी जाती है। माँ की हर परेशानी से वह परिचित है। माँ की आराम-भरी ज़िन्दगी उसकी चाह है। और माँ को पढाने की इच्छा भी उसमें है। ऐसी सकु की ज़िन्दगी की कामयाबी के साथ नाटक समाप्त होता है।

नाटक में हम देखते है कि सकु की आत्मनिर्भरता उसे ज़िन्दगी में कामयाबी की ओर खींचती है। सकु यह दिखाती है कि मन लगाने से समय को भी अपनी इच्छा शक्ति से जीता जा सकता है। नाटक में नारी पीडा, शिक्षा का अभाव, अमीरों के खोखलेपन, गरीबों क दुख, शहरी जीवन की व्यस्तता आदि सारी समस्यायें मिलती है। नौकरों का शोषण एक बडी समस्या के रूप में नाटक में दिखाई देता है। “यह नाटक हमें उम्मीद देता है कि यदि हममें आत्मविश्वास और साहस है तो समय और समाज को बदला भी जा सकता है।”[9] ‘सकुबाई’ नाटक एक समस्या से शुरू होकर कई समस्याओं को आपस मे जुडानेवाला स्तुत्य कार्य किया है यही इसकी सफलता का कारण भी है।

2.2.4.2 दयाशंकर की डायरी

‘दयाशंकर की डायरी’, दयाशंकर नामक व्यक्ति की ज़िन्दगी की विडंबना प्रस्तुत करता है। नाटक का नायक दयाशंकर, एक कामयाब हीरो बनने के लिए मुंबई जैसे महा नगर में आते है। एक सामान्य युवक से परे असामान्य आशा-आकांक्षायें उनको पहले से ही गति देती रही। फिल्म स्टार बनने की इच्छा थी। लेकिन एक क्लर्क का काम उन्हें मिलता है। वहीं से दयाशंकर के जीवन की विडंबना शुरू होती है। मुंबई का जीवन उसकी इच्छाओं को दमित रखने को विवश करता है। वहाँ अपने दोस्त मोरे के साथ उसने एक कमरा बाँटा था। उनकी डायरी ही हमें उनका जीवन दर्शाती है। एम.एल.ए साहब उनके बॉस थे और उनकी बेटी सानिया को वह दिल से चाहता था। जीवन के पन्नों को पलटते समय उसके परिवार का परिचय भी हमको मिलता है। पिता-माँ और दो बहनें उनके परिवार में शामिल है।

---

[9] आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श - जयदेव तनेजा, पृ.289

गाँव में उनका जीवन गरीबी से झेलता था। बहनों की शादी दयाशंकर का फर्ज था। एक की शादी उन्होंने करवाई थी। दूसरी शादी के पहले ही मर जाती है।

नाटक में जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मिलते है। मुंबई शहर की विलासिता, दयाशंकर को नाटक से जो भ्रम है, सब नाटक उभारता है। एम.एल.ए साहब की बेटी से शादी चाहनेवाला दयाशंकर जानता है कि एक मामूली क्लर्क से उनकी शादी तथाकथित सामाजिक हालात में मुश्किल है। फिर भी वह चाहता रहा लेकिन सॉनिया की शादी राजेश बत्रा से होती है जो दयाशंकर पर सघन प्रहार बन जाता है। वह पागल सा होता है। उसे पागलखाने में भर्ती की जाती है। वहाँ उसे कोई धकेलकर अंदर भेजता है तो वह उसे मंत्री मानता है। वास्तविक जीवन से जो उन्हें अप्राप्य है वह प्राप्त करने को, अपने अवचेतन मन में कोशिश करता रहता है। वह पूर्ण रूप से पागल बन जाता है कि वह नेपाल का राजा है दयाशंकर नहीं। काल्पनिकता और वास्तविकता के द्वन्द में फँसा दयाशंकर को जब सुध-बुध मिलता है तब वह गाँव जाना चाहता है। अपनी माँ के आंचल में शरण पा लेने की इच्छा प्रकट करता है। दयशंकर की इसी इच्छा के साथ नाटक समाप्त होता है।

दयाशंकर की नियति आज के नयी पीढि के युवाओं की है। जो अपने सपनों को साकार बनने के बीच, वास्तविकता का पहचान न कर पाता है और अगर करता भी है तो उसका सामना भी न कर पाता है। जैसे जयदेव तनेजा के अनुसार - "जब हम संघर्ष नहीं करते, स्थितियों से समझौता कर लेते है, तो सपने हम पर हावी हो जाते है और हम दयाशंकर की तरह उन्हीं की काल्पनिक दुनिया में जीने लगते है।"[10] ऐसे दुनिया रुपी महा सागर के फौलादी पंजों के बीच दयाशंकर पिसता है और

---

[10] आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श - जयदेव तनेजा, पृ.289

अस्तित्व खो बैठता है। नाटक परिस्थितियों के पंजे में फँसनेवाले व्यक्तियों की दयनीय अवस्था को उजागर किया है।

2.2.4.3 जी जैसी आपकी मर्जी

हमारी परंपरागत रूढियों और मान्यताओं के कारण आज भी शोषित, पीडित हो रही नारी की करुण कथा है "जी जैसी आपकी मर्जी" नामक नाटक। नाटक हमारी धार्मिक मान्यताओं और रूढियों को नारी की ऐसी दर्दनाक नियति का जिम्मेदार कहते है। "जी जैसी आपकी मर्जी" में जी (हाँ) करनेवाली 'स्त्री' है और आपकी मर्जी का अर्थ है- पुरुष की इच्छा। समाज में विवाह संस्था के आरंभ होने से लेकर आज के उत्तर आधुनिक युग तक पुरुष स्त्री का संबंध कामोबेन स्वामी-सेवक के रिश्ते जैसा ही रहा है। परिस्थिति और परिवेश के साथ केवल उसका ऊपरी रंगरूप ही बदला है।"[11] नाटक दीपा, वर्षा पोटे, सुल्ताना और बबली टंठन नामक चार अलग-अलग उम्र और पृष्ठभूमि की औरतों की कहानी को हमारे सामने रखता है। एक-एक की कहानी कहता है यह नाटक।

नाटक में पहली कहानी दीपा राय की है, जो एक डाक्टर की कृपा से गर्भच्छंद से बचकर जन्म लेती है। घर का सारा काम उसे करना पडता है। उनका भाई राजकुमार जैसे पाला जाता है। घर में दादी ही उनके लिए अडचन थी कि भैया का पालन पोषण भी उनसे करवाती थी। एक बार भैया को पानी न देने के कारण उसे कमरे में बंद किया और भूखी रखा गया। दीपा के ज़रिए नादिरा जी बताती है कि लडकियाँ परंपरागत रुढियों की शिकार है। दीपा की दीदी पोलियों की

---

[11] आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श - जयदेव तनेजा, पृ.290

शिकार होकर इसलिए मरती है क्योंकि घरवाले उनका ध्यान अच्छी तरह से नही रख्रते। दीदी की ओर घरवालों की उपेक्षा तथा लडकियाँ होने के कारण अपनों पर होने वाला अन्याय दीपा को असह्य था। उसके बाद वर्षा पोटे मंच पर अपनी कहानी का बयान देती है। उनकी कहानी भी दीपा से अलग नहीं थी। बचपन से ही पिता के द्वारा माँ की पीडा का वह दृष्टा है। उसकी शोभा काकु पति द्वारा उपेक्षित होकर आत्महत्या कर लेती है। अपने पति से काकु को जितना प्यार था उतना वह बदले में न पा सकी। वर्षा जिग्नेश जैसे धनी युवकों पर भी अपना आक्रोश व्यक्त करती है। अमृत, जिग्नेश आदि के प्रसंग द्वारा धनी युवाओं की हरकतों पर करारा व्यंग्य किया है। वर्षा के पिता की बीमारी उनके लिए बहुत तकलीफ की बात यी लेकिन दीदी के साथ वह सारी तकलीफें झेलती है। उन पर एहसान डालने के लिए जितने बंधुजन थे, उन्हें अपनी कामयाबी से हरा देती है।

अगली कहानी सुल्ताना की है जो वर्षा को सांत्तवाना देकर मंच पर प्रस्तुत होती है। बारह-तेरह वर्ष के उम्र में दस साल बडे अकील से शादी होती है। पति द्वारा किया बलात्कार सुल्ताना को अब भी भीषण याद दिलाती है। लडके न पैदा होने के कारण, चार बेटियों के साथ सुल्ताना को अकील ने फूट पाथ पर छोडा। बेटियों के साथ फूट पाथ पर रहना, इसी शहर में रहनेवाले उसके भाइयों के मान-सम्मान का मामला बन गया। वे सुल्ताना की शादी दुष्चरित्रवाला हकीम से उसकी इच्छा के विरुध्द कराती है। लेकिन इस शादी का नतीजा उसके द्वारा बेटी सबीहा पर हुआ बलात्कार था। सुल्ताना अपनी बेटी पर हो रही अन्याय न सहन सकी और हकीम साहब को मार डालती है। अपनी बेटियों की चिंता उसे सदा मन को दुःख्र दे रही थी लेकिन जेल छोडकर बाहर आयी तो, सबीहा की पढाई की तरक्की तथा

उसकी बातों की शक्ति ने उसे फिर से खुशी देने लगी। बबली टंठन अगला पात्र है जो सुल्ताना के बाद अपनी कहानी का बयान देती है। बबली इन तीनों से परिवेशगत भिन्नता रखती है। बडे परिवार में पली, ऊँची शिक्षा प्राप्त लडकी होने पर भी परंपरागत मान्यताओं के पालन के लिए विवश तथा लाचार बन जाती है। मिक्सड स्कूल में उसकी पढाई न हो सकी थी। लडकों से मिलने से रोक था। जब शादी का समय आया तो अमनदीप कोहली नामक बडे परिवार के युवक से शादी तय किया। बबली जैसी स्वतंत्र चिंतावाली लडकी के लिए घरवालों की मान्यतायें नामंजूर थी, लेकिन विवश होकर उसे शादी करनी पडी। ऊँचे पद का मालिक होकर भी अमन दीप के बुरे व्यवहार के कारण, बबली को बहुत तकलीफें झेलनी पडी। शादी के वक्त माँ के द्वारा दिया गया उपदेश 'अपने पति का ख्याल रखना'- उसके लिए अभिशाप बन जाता है। क्योंकि अपनी इच्छाओं के विरुद्ध व्यवहार करनेवाले पति का ख्याल रखना उसके लिए बाध्य बन जाता है। लेकिन अपने पति का गैर संबंध उसके लिए सामान्य परीक्षा की नहीं बल्कि अग्निपरीक्षा देने की थी। एक माँ बनने की खुशी में झूमने के बदले पति के नाजायज़ संबंध पर बिलखना पडता है बेचारी को। ऐसे वह अपनी अनिच्छा के बावजूद भी अमनसिंह कोहली की 'धर्मपत्नी' के नाम से जीने का निर्णय लेती है। क्योंकि पति को हर हालात में खुश रखना तो पत्नी का फर्ज है न!

यहीं पर सवाल उठते है कि क्या पत्नी को हर हालात में खुश रखना किसका फर्ज है? क्या पति देवता और पत्नी उनकी दासी है? जवाब तो कही से न मिल सकता क्योंकि ऐसे सवालों की प्रासंगिकता उड चुकी है। प्रस्तुत नाटक में नारियों की बुरी हालात के लिए सिर्फ सामाजिक मान्यताओं को दोषी ठहरा है क्योंकि

आदमी अगर बदलना चाहता है तो भी समाज की बुरी नीतियाँ उसे बदलने नहीं देती है। अतः इसमें नारी जीवन की अर्न्तव्यथा को अत्यन्त करुणापूर्व ढंग से प्रस्तुत किया है। नाटक एक सामाजिक पुर्नीचतन के लिए वक्त देता है ताकि बबली के बाद अनेक लडकियाँ अपनी व्यथा कथा प्रस्तुत करने के लिए न आयें।

2.2.4.4 सुमन और सना

नादिरा जी का 'सुमन और सना' एक कोलाश की ढंग में लिखा गया नाटक है। सांप्रदायिकता और आतंगवाद नाटक के केन्द्र में है। जेहाद के नाम पर कश्मीर में और हिन्दुत्व के नाम पर गुजरात में हुए दंगे के भीषण दुष्परिणाम की ओर नाटक संकेत करता है। ऐसे दंगों से उत्पन्न सामाजिक, मानसिक अस्थिरता की कहानी नाटक का विषय है। अपने देश में ही गैरनागरिक के रूप में रहने तथा बेघर बनाये जाने की करुण कथा नाटक में हम देख सकते है। शरणार्थियों की सच्ची हालात इस नाटक में है जो हमारे दिल को हिलानेवाली है।

कश्मीर में जम्मु के कब्रिस्तान में और अहमदाबात के शाह आलम में शरणार्थी शिबिर चालू है। सुमन और सना, दो नन्हीं लडकियाँ है, जो अपनी छोटी सी अवस्था में माँ-बाप को खोकर ऐसे शिबिर में रहती है। इनसानियत की ओर धार्मिक नेताओं का मनमुटाव ही ऐसी हालात का जिम्मेदार है। जम्मु के कैंप में शांता, आमीना जैसी शरणार्थियों का चित्रण है जो अपने बेटों को खोकर बिलखती रहती है। सुमन भी वहाँ है जिसने छोटी सी अवस्था में माँ-बाँप को खो दिया है। इन कैंपों में ऐसे पीडित लोगों के साथ क्लर्क और अफसरों बहुत बदतमीज़ी से पेश आते है। डॉ. दूदा भी वहीं है, जिसकी पत्नी को, मुस्लिम औरतों के अबोर्षन करने के कारण, ज़िन्दा जला दिया है। मु. अली का बेटा आतंकवादी बन गया है, यही चिंता

उसे मथती है। इस भाग में नुन्दऋषि और सुमन का भेंट- जो फैन्तसी के तौर पर दिखाया है। प्यार के चिरस्थायी माँग की ओर इशारा करते है तथा प्यार हमेशा जीतना ज़रूरी है पर ज़ोर देता है।

अहमदाबाद के कैंप में सना, नजमा, पटेल, चाचा, युसुफ शाहिद जैसे अनेक शरणार्थी है। वे भूखे, प्यासे, बदहवास है जिनमें जख्मी और बीमार भी है। हर कोई लुटा गया हैं, बेघर हुआ है। सना उन्हीं में से एक है। इसके माँ बाप अल्लाह को प्यारे हो गए है। जब घरों को जलाया गया तब घर के अंदर लोग थे वे घरो के साथ ही जल गए। सिर्फ सना ही बच गई। अकेली सना, अपनी माँ की रूह से तृप्त रहती है। सबसे छोटी होने के कारण सबके लिए प्यारी है विशेषरूप से पटेल चाचा को। पटेल उसके खाना-पीना, सारे मामलों पर खयाल रखता है। वह कब्रिस्तान के ऊपर के उस शिबिर से अपने ज़मीन जाना चाहते है, और हिन्दु बनने के लिए भी तैयार है। क्योंकि शिबिर का वातावरण सबको ऊबा देनेवाला था। सरकार की मदद तो सिर्फ अखबारों और चेनलों पर सीमित थी। नजमा अहमदाबाद के अफरातफरी के माहौल को देखकर व्याकुल हो उठता है। उसकी नन्हीं सी बच्चियों को उसकी आँखों के सामने ज़िन्दा जला डाला। इन हालातों की याद करने से ही वह अपना होश खोता है। वह फिर एक बेटे को कैंप में जन्म देती है। सना नजमा और युसुफ के साथ रहती है। शाहिद ओर एक शरणार्थी है जो अपनी परिस्थितियों से जूझकर दूसरा देश जाना चाहता है। क्योंकि यहाँ की नागरिकता उन्हें दोहरे स्थान देती है। विदेश जाकर मज़दूर बनने के लिए भी वह तैयार होता है। नाटक के अंत में श्रीकृष्ण को खडा करके, इनसानियत और प्यार का संदेश भी-नादिरा जी देती है। उनकी राय में सारी भीषण परिस्थितियों को प्यार, इनसानियत जैसे सच्चे भावों से

ही परारत किया जा सकता है। नाटक आतंकवाद और सांप्रदायिक दंगे के दूषित फल पर केंन्द्रित है। "सुमन और सना जेहाद के नाम पर कश्मीर और हिन्दुत्व के नाम पर गुजरात के सरकारी आतंकवाद की मारकांड और किसी तरह उस अग्निकुंड से बच निकले हिन्दु मुस्लिम शरणर्थियों की यकसाँ तथा अंतहीन, अनिश्चित नियति को एक साथ पेश करता है।"[12] आतंकवाद और सांप्रदायिकता के बीच फँसी हुई दो मासूम लडकियों का ज़िक्र करके नाटक में प्यार, मासूमियत की अस्मिता को उभारने की कोशिश की है।

2.2.4.5 आपरेशन क्लाउडबर्स्ट

सामान्य आसम निवासियों और हिन्दुस्तानी फौज की अंतर्निहित भावनाओं को 'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' में लेखिका ने पर्दाफाश किया है। असम जैसे पूर्वोत्तर राज्यों की समस्याओं की यथार्थता का अवबोध प्रस्तुत नाटक कराता है। इसमें आर्मी, उल्फा के आतंकवादी और आम जनता का संघर्ष दिखाई देता है। आतंकवाद की समस्या पंजाब, आसाम और पूर्व राज्य में अधिक रही है। जिसका फल आम आदमी और सैनिकों को भुगतना पडता है। नाटक उल्फा उग्रवाद को कश्मीर, आपरेशन ब्लूस्टार, चौरासी के दंगों, कारगिल, गुजरात, अमरिका, इरान जैसी सभी मर्मप्रधान घटनाओं की ओर हमें ले चलता है। हमारी और हमारे मुल्क को सुरक्षित रखनेवाली सेना का अन्दरद्वन्द इस नाटक में पाया जाता है।

नाटक की शुरुआत उल्फा आतंकवादियों द्वारा भारतीय आर्मी के सैनिकों को घेरने से शुरु होता है। नाटक में मेजर-गयकवाड, के कैंग, सुबे शरत, हव

---

[12] आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श - जयदेव तनेजा, पृ.291

राठी,मोरोमी आदि प्रमुख पात्र है। आतंकवादियों का उन्मूलन लक्ष्य करके, असम के जंगल में भारतीय सेना पहुँचती है। सेना के चार गुट है जिनमें एक का मेजर गायकवाड द्धारा नेतृत्व होता है। आतंकवादियों द्धारा छोडा गया कैंप ही उनका बसेरा के रुप में मिलता है। वहाँ भारतीय सेना का विद्रोह असमीस भाषा में लिखा रखा था। सेना में यह संदेह है कि उल्फा के विरुद्ध सेना के सारे कदम, उल्फावाले कैसे समझ सकते है? वे यह भी मानने है कि किसी प्रदेश का आतंकवाद, वहाँ की जनता के सपोर्ट के बिना न पनपती है। आपसी मिलावट से ही इसे हरा सकती है। भारतीय सेना में जो हक्का-बक्का है, सो इस नाटक में दिखता है। मै. गायकवाद बडा संभ्रांत है अतः ऐसी तकलीफों को ठीक वक्त पर सुधारने का समर्थ दीखता है। सैनिकों के कथन में उनके पारिवारिक जीवन की सूनापन तथा उसे खोकर जीने की व्यथा सब निहित है। उनकी ऐसी रुखी ज़िन्दगी, असल में हमारे मन को आर्द्र बनाती है। माँओं के बारे में उनकी चर्चा तो असल में उनकी ज़िन्दगी में प्यार के अभाव को सूचित करता है। मेजर को लाल रंग से नफरत इसलिए था कि खून देख-देख के मन की भावनाओं का अंत हो गया है। इसके बीच हव राठी की थोथी बाते भी चलते है।

इसी बीच मोरोमी बेटी मातु के साथ रास्ता भटककर इन सैनिकों के बीच आ फँसती है। मोरोमी को वे उल्फा के एजेंट मानते है। मोरोमी के मन में भारतीय सेना के प्रति जो पूर्वाग्रह है वह अनुभव कर पाते है। भारतीय सरकार और सेना की असमवाली नीति अमरीका-इराक संबंध जैसा है। और वह यह भी मानती है कि भारतीय सेना जिसे आतंकवादी कहते है वे असल में क्रांतिकारी है। सेना द्धारा असम औरतों पर होनेवाले बलात्कार पर भी अपना रोष प्रकट करती है। राठी से ऐसा

एक हरकत पाते ही वह चीख्र उडती है। लेकिन ईमानदार, संवेदनशील बाकी सैनिकों के सामने मोरामी की पूर्वधारणायें बदल जाती है। फिर मोरोमी को भारतीय सेना पर विश्वास जगती है और उनकी आज्ञानुवर्ती बन जाती है। उल्फावाले आने के पहले, मै. गेयकवाड और कै. कंग के अलावा बाकी सेनिकों के साथ मोरोमी बचती है मेजर और के कंग शहीद हो जाते है। अंत में हम देख्रते है कि शहीद पहाड़ी में मातू और मोरोमी श्रद्धांजली अर्पित करता है।

नाटक में उल्फा आतंकवाद, सेना की महत्ता आदि समस्याओं को बहुत अच्छी ढंग से चित्रण किया है। डॉ. भगवान जाधव की राय में- "पहली बार पूर्वी राज्य के दर्द को नाटकीय ढंग से उभारने का प्रयास लेख्रिका ने किया है। भारत के पूर्वोत्तर राज्य के लोगों ने भारत सरकार की पूर्वाचल राज्य के प्रति रही भेद-भाव की नीति को हमेशा आंदोलन किया है। अतः प्रस्तुत नाटक हमेशा अपनी प्रासंगिकता बनाये रख्रता है।"[13] इस प्रकार प्रस्तुत नाटक भारतीय सेना, उनका मनोव्यापार, उल्फा उग्रवाद, पूर्वोत्तर राज्यों की समस्या सबको एक ही नाटक में दिख्राकर, विषय विविधता का परिचय भी दिया है।

उपसंहार

प्रस्तुत अध्याय में कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर द्वारा हिन्दी नाट्य जगत को दिये गये बेहतरीन नाटकों की चर्चा है। कुसुम जी अपने लेख्रन, क्षेत्र में नाटकों में ज्यादा कामयाब रही है। उनके हर एक नाटक एक से बढकर एक है तथा विषय की गरिमा से सबसे आगे भी है। कुसुम जी के 'सुनोशेफाली', 'दिल्ली ऊँचा

[13] हिन्दी महिला नाटककार - भगवान जाधव, पृ.139

सुनती है', 'संस्कार को नमस्कार' आदि नाटक अत्यधिक मूल्यवत संदेश देने में आगे है। शेफाली जैसी आत्मनिर्भर औरतों की माँग, आज के ज़माने में बढ रही है। नाटक परंपरागत विसंगतियों का स्पष्ट एहसास देते है जो प्रासंगिक भी है। 'संस्कार को नमस्कार' समाज सेवियों के मुखौटे फाडकर फेकता है। 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' अस्तित्ववाद से ओतप्रोत नाटक है। व्यक्ति की नियति ही उसका नियामक तत्व है, यही कुसुमजी की राय है। वास्तव में पवन जैसा आदमी और उसका अस्तित्व जो समय का सृजन है। पवन परिस्थितियों के बहाव में वहनेवाले निरीह आदमी का प्रतीक है। रामलीला और रावणलीला का अंत तथा दुविधा, 'रावणलीला' नाटक को उत्कृष्ट बनाया है। असल में रावणलीला लोक रंगमंच का अत्यंत उत्कृष्ट अनुभव हमें देता है। 'लश्कर चौक' सांप्रदायिकता में दहकनेवाले आम आदमियों का यथार्थ चित्रण हमारे सामने रखता है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में एक आम व्यक्ति का सच्चा स्वरुप दृष्टिगत है। अधिकारियों के मनमानेपन के लिए और कोई उदाहरण नहीं टूँढना है क्योंकि माधोसिंह एक ऐसा शहीद है जो लालफीताशादी के कारण अपना सर्वस्व खोया है। वास्तव में कुसुम जी की सभी नाट्य रचनाएँ कालजयी तथा प्रासंगिक हैं।

नादिरा ज़हीर बब्बर ने भी कुसुम जी के जैसे ही उच्च विचारधाराओं को अपने नाटकों में भरे रखे है। साहित्यक वातावरण में पनपने के कारण ही उनकी सृजनात्मक क्षमता, अपार दीख पडती है। उनके 'सकुबाई', 'दयाशंकर की डायरी', 'जी जैसी आपकी मर्जी', 'सुमन और सना' तथा 'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' सब अपने साहित्य मूल्य के कारण श्रेष्ठतम नाटकों की कोटी में है। 'सकुबाई' एक एकलनाट्य होने के बावजूद भी समस्याओं का भरमार है। विकट सामाजिक और

आर्थिक परिस्थिति के रहते हुए भी सकुबाई जैसी औरत की कामयाबी नाटक को स्त्री शात्तीकरण की दिशा की ओर ले जाती है। उन्होंने नारियों को केवल पीडा की आग में दग्ध मनहूस चेहरे के रूप में नहीं बल्कि अन्याय के विरुद्ध लडनेवाली आत्मनिर्भर औरतों के रूप में ही चित्रित किया है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' नामक नाटक इसका उत्तम उदाहरण है। प्रस्तुत नाटक विविध नारियों की करुण कथाओं के माध्यम से समाज में औरतों की असलियतों की ओर हमें खींच लेता है। 'सुमन और सना' सांप्रदायिकता तथा आतंकवाद की भीषण स्थिति को हमारे सम्मुख रखती है। सुमन और सना जैसी बालिकाओं की मानसिक व्यापार को उभारने में नाटक सक्षम रहा है। 'आपरेशन क्लाउड बर्स्ट' पूर्वोत्तर राज्यों की समस्याओं को नाटक में दर्शाता है। ऐसा एक कदम नाटक की विषयगरिमा को सबसे आगे रखता है। 'दयाशंकर की डायरी' में आम आदमी की विडंबना को चित्रित किया है।

निष्कर्ष में हम कह सकते है कि दोनों लेखिकाओं के नाटक महिला नाटककारों के नाटकों में सबसे ज्यादा ख्याति प्राप्त हैं। दोनों नाटककार अपने समय के साथ हमें हो लिये है। वे दोनों नाट्यरचना केवल-आत्मतृप्ती के लिए नहीं, बल्कि अपनी सामाजिक ममता के तौर पर की है। उनके हर नाटक समाज के थडकन को साथ लेता है। इसलिए ही उनके नाटकों में यथार्थ मानव का खुल्लम-खुल्लम प्रदर्शन है। इनके नाटकों में समाज के भिन्न-क्षेत्रों की भिन्न समस्याओं को हम देख पाते है। और इसी कारण से ही उनके नाटकों में हम अपनी परेशानी और अपने आसपास की समस्यायें देख सकते है। अंततः यह एक सच्चाई है कि हिन्दी नाट्य साहित्य को संपन्न और समृद्ध बनाने में कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

तीसरा अध्याय

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में युगीन संदर्भ

युगीन संदर्भ से तात्पर्य उस वर्तमान और अपने परिवेश से है जिसमें वह साहित्य विधा अस्तित्व में आती है। 'युग' एक ऐसी कालवाचक अमूर्त इकाई है जिसका निर्माण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक घटनाओं तथा विचारधाराओं से होता है। युग सापेक्ष होना ही साहित्य की जीवंतता तथा प्रासंगिकता है। साहित्य और समाज का साध्य-साधन संबंध ही इसका मर्म है। साहित्य में आम तौर पर जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण, तत्कालीन जीवन की थडकन से वह संबद्ध रखती है। युगीन, सामयिक जीवन के अच्छे बुरे दोनों पहलुओं का साक्षात्कार साहित्य का दायित्व ही है। "साहित्यकार अपनी युगीन परिस्थितियों के साथ जो प्रतिक्रिया करता है-वही प्रतिक्रिया साहित्य का रुप लेती है। वह प्रतिक्रिया जितनी ही सही और ईमानदार होती है, साहित्य उतना ही श्रेष्ठ होता है। साहित्य युगीन और शाश्वत सत्य दोनों का साथ लेकर चलता है।"[1] युगीन सत्य की परिवर्तन शीलता तथा शश्वत सत्य का स्थायी भाव साहित्य के विषयानुक्रमणिका में साथ चलते है। समय का बदलाव समाज की तमाम परिस्थितियों और परिवेश में जो भेद लाया है वह साहित्य में भी, स्वाभाविक रूप से पाया जाता है। "समकालीन परिस्थितियाँ लेखक पर अपना प्रभाव डालती है और उन परिस्थितियों के प्रति लेखक के मन में कुछ विशिष्ट प्रतिक्रिया होती है। यही साहित्य सृजन का हेतु है।"[2] युगीन संदर्भों को एक आइने के रूप में प्रतिबिंबित करने में साहित्य अपना विशेष अस्तित्व रखता है। अपने युग विशेष से सामग्रियाँ इकट्ठा करके साहित्य की रवैया

---

[1] नाट्य चिंतन, नाटक का स्थायित्व - डॉ. चन्द्र, पृ.36

[2] नाट्य चिंतन नये संदर्भ - डॉ. चन्द्र, पृ.31

में उसे ढालकर सहृदय के सामने उसे ताजा प्रस्तुत करने में साहित्य अग्रणी है। "किसी भी युग का महान प्रतिभाशाली कलाकार अपने युग की ज्वलंत समस्याओं की उपेक्षा कर ही नहीं सकता। महान काव्य की अनुभूति के डोरे कलाकार और साधारण मानव के प्राणों को कभी भी विच्छिन्न नहीं होने देते किन्तु एक महान कलाकार में जीवन की गहनतम वेदना, उससे ऊपर उठने की प्यास और चारों ओर छाये हुए धुंधलके को चीर कर एक सशक्त जीवन दर्शन की मशाल लेकर आगे बढने का साहस होता है।"[3] पुराने समय का साहित्य जनसामान्य से हटकर था, आज का साहित्य अलग है वह जीवन को निकट रहकर देखना चाहता है और ऐसा होता भी है। एक सशक्त साहित्यकार युग की माँग के अनुरुप परंपरा का त्याग या परिमार्जन करते हुए नवीनता का सर्जन करने की कोशिश करता है। समकालीन साहित्य में समसामयिक परिवेश और युगबोध की अभिव्यक्ति को प्रमुख स्थान मिला है। साहित्यकार सामाजिक है इसलिए उसकी कृति भी सामाजिक होने को बाध्य है। साहित्य हमारे जीवन का यथार्थ और जीवंत इतिहास ही है। ऐसे साहित्य में युगानुरुपता तथा युगबोध का अधिकार ही युगीन संदर्भों का आधार है।

अगर नाटक की चर्चा करें तो वह एक जीवंत साहित्यक विधा है क्योंकि जीवन की अभिव्यक्ति उससे साध्य होती है। अपने समय के लिए प्रासंगिक रहने पर ही नाटक सार्थक बन जाता है। नाटक जीवन का प्रतिरूप कहा जा सकता है तथा उसमें मानव प्रवृत्तियों का सच्चे और सजीव प्रतिबिंब के कारण चित्तवृत्तियों तथा

---

3 प्रगतिवाद एक समीक्षा- धर्मवीर भारती, ग्रंथावली, पृ.153

लालसाओं के समाधान का साध रह जाता है। "नाटक साहित्य की प्रत्यक्ष और सामाजिक विधा है। दर्शक समुदाय नाटक को मंच पर घटित होता देखता है। यही कारण है कि नाटक से सामाजिक का सीधा संबंध स्थापित होता है, और नाटक विभिन्न स्तर के व्यक्तियों को एक साथ प्रभावित करता है। अतः नाटक का समसामयिकता से जुडा होना आवश्यक है, अन्यथा वह दर्शक को प्रभावित नहीं कर सकेगा।"[4] पंचम वेद के रुप में जब नाट्य शास्त्र की रचना की गयी तब एक महत्वपूर्ण उद्देश्य था। एक ऐसे शास्त्र की रचना करें जो अपने समय के आगे और समय के पीछे के सामाजिक सत्य को निरुपित करते हुए हर देश काल और परिस्थिति के अनुरुप मनोरंजन के साथ सामाजिक उद्देश्यों को भी पूरा कर सके। नाटक अपने सामयिक गतिविधियों को नाट्य वस्तु का आधार बनाया है। समय के साथ हो चलने पर ही नाटक अपने में पूर्ण होता है। स्वतंत्रता के बाद घटित मानवीय मूल्यों का विघटन, वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास, धर्मांधता, बेरोज़ गारी, बाहरी भीतरी हमला आदि से हमारी परिस्थितियों में समूल परिवर्तन आया है जो साहित्य रचना में भी एक बदलाव उपस्थित करता है। "आधुनिक हिन्दी नाटक ने एक तीव्र सरोकार से इस पर्यावरण (स्वातंत्र्योत्तर) का साक्षात्कार किया है और अपने रचना संकल्प को इससे जोडा भी है। विविध आयामी समकालीनता अपनी क्रूर मुद्राओं सहित-पचासोत्तरी हिन्दी नाटक में उभरी है।"[5] आज के नाटककार भोगे हुए यथार्थ तथा उससे संबंद्ध सारी वास्तविकताओं को उबारने में सजग रहा है। नाटक जीवन

---

[4] नाट्य चिंतन नये संदर्भ - डॉ. चन्द्र, पृ.31

[5] हिन्दी नाटक और लक्ष्मी नारायण लाल की रंगयात्रा - डॉ. चन्द्र शेखर, पृ.15

सापेक्ष और समाज सापेक्ष होने के कारण नाट्य साहित्य में युगीन संदर्भों की सबसे अधिक प्रतिक्रिया देखने को मिलती है।

अपने परिवेश को नकारकर एक साहित्यक विधा का अस्तित्व नहीं है। और उस परिवेश में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों तथा स्थितियों से बुने हुए वातावरण का अपना महत्व है। नाटककार इस समकालीन परिवेश में रहकर ही अनुभव करता है तथा उसी अनुभव को साहित्य के द्वारा अभिव्यक्ति करता है।

3.1 स्वातंत्र्योत्तर कालीन परिस्थितियाँ

साहित्यकार एक प्रत्येक युग में रचना कर्म का कार्यान्वयन करता है और उसी युग की गतिविधियों को हम साहित्य-रचना की परिस्थिति कह सकते है। युगीन परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण कर, अपनी कलात्मक प्रतिभा से सृजित साहित्य में युग को साकार करके कलाकार अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करता है। “साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश बन्धुओं के कष्टों से विकल है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है पर उसके रूदन में व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक होता है।”[6]

किसी भी रचना की अपनी विशेष परिस्थिति होती है और उसी के अनुरूप ही उस रचना का सृजन भी होता है। साहित्य और समाज का अभेद्य संबंध ही

---

[6] साहित्य का उद्देश्य- प्रेमचंद, पृ.24-25

साहित्य और परिस्थिति में निहित है। "साहित्य का संबंध व्यक्ति और राष्ट्रीय जीवन से है। साहित्यकार शून्य में रचना नहीं करता। जगत की परिस्थितियों से प्रभावित हुए बिना वह रह नहीं सकता, इसलिए कि वह स्वयं जगत का ही एक अंग है।"[7] इससे समझा जा सकता है कि साहित्यकार पूर्णतः परिस्थितियों पर आश्रित है। एक साहित्यकार तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक जैसी परिस्थितियों से पूर्णत प्रभावित रहता है।

3.1.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ

स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक परिवेश ने आज के जीवन संदर्भों को सबसे अधिक प्रभावित किया है। 15 अगस्त सन् 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ परंन्तु विभाजित होकर, साप्रदायिकता का बीजबपन करके अंग्रेज़ों ने जाते-जाते राष्ट्र को खंडित कर दिया। जिसके परिणामस्वरुप देश को गाँधी जैसे नेता को गंवाना पडा, लाखों लोगों ने अपनी जान गँवायी, उन्हें बेघर होना पडा। स्वतंत्र भारत के सामने शरणार्थियों की समस्या एवं देशी रियासतों का विलयन का प्रश्न उपस्थित हुआ। सरदार पटेल की सफल नीती से इसका समाधान हुआ। दूसरी तरफ देश के सर्वंगीण विकास की आशा-आकांक्षा लिए हुए भारत नव निर्माण में जुट गया। अस्थायी सरकार बनी जिसके प्रधानमंत्री नेहरु बने। देश को सुचारु रुप से चलाने के लिए प्रजातंत्र प्रणाली अपनायी गयी और चुनाव की व्यवस्था की गयी। 26 जनवरी 1946 को संविधान लागू कर देश में एक प्रमुख्र संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य

---

7 जीवन और साहित्य (चिन्तनः मनन- सम्पादक डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र) -डॉ. संपूर्णानंन्द, पृ.18

की स्थापना की गयी। "भारत का अपना संविधान बना, समाजवादी समाज की स्थापना का सिद्धांत अपनाया गया, पंचवर्षीय योजना अपनायी गयी, औद्योगिक विकास को प्राथमिकता दी गयी। समाजवादी देशों की यात्रायें भी की और उनसे प्रभावित भी हुए किन्तु नवीन सपनों से युक्त जवाहरलाल नेहरु का व्यक्तित्व जिसके पास गाँधी की अहिंसा थे, पश्चिम का सामंतवाद था, ...उसके मोहक और चुंबकीय व्यक्तित्व में कही भी निर्माण का बल नहीं है। ...उनके अध्यक्षता काल से ही देश का आर्थिक और नैतिक विघटन शुरू हो गया था।"[8] संविधान का लागू होना प्रत्येक भारत वासी के आशा आकांक्षाओं को पुष्ट करने में एक हद तक सक्षम था। पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यन्वयन आम लोगों के लिए बहुत उपकारी रह गया फिर भी देश कर्ज में अवश्य डूबा गया। ज़मीन्दारी उन्मूलन, फैक्टरी कानून, न्यूनतम वेतन अधिनियम तथा अस्पृश्यता अधिनियम समाज के निचली श्रेणी के लोगों के उत्थान तथा लाभ के लिए राह दिये है किंतु आंतरिक सर पर उनकी नीतियों की नाकामयाबी प्रत्यक्ष : प्रकट हुई। जन सामान्य की शिक्षा तथा स्वास्थ्य रक्षाहेतु शिक्षा संस्थानों तथा शिक्षण संस्थानों की स्थापना एक हद तक सिद्ध हुआ है।

1962 का चीन आक्रमण, 1965 का पाकिस्तानी आक्रमण भारत की आर्थिक व्यवस्था पर गहरी चोट की है। साथ ही सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेश पर भी प्रभाव डालने में पीछे रहा। राजनीतिक-सामाजिक नैतिक मूल्यों के अपचय ने भ्रष्टाचार, शोषण और स्वार्थ प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। बात यह निकली कि स्वतंत्रता के बाद राजनेताओं, पूँजिपतियों और नौकरशाहों की स्वार्थसिद्धी प्रजातंत्र के शोषण तथा भ्रष्टाचार को पनपने में सहायक रही है। विकास के मार्ग में रोडा

---

[8] आलोचना, अप्रैल-जून-सन् 1961, पृ.31

अटकानेवाले नेताओं का बढाव देश के राजनैतिक वातावरण को कलुषित किया है। सेवा भावी नेताओं को देखकर जनता उनकी ओर से कुछ अपेक्षा कर निर्भीक सी रही। इसीलिए नेहरू सरकार की प्रतिष्ठा बन रही थी। लेकिन 1962 के चीन आक्रमण के साथ इस सरकार की प्रतिष्ठा की पोल खुल गयी। तब उन्हें चेता आया "हमने अपनी आन्तरिक और बाह्य नीतियों पर गौर किया। समृद्धि और भाईचारे की नारेवाज़ी दर किनार हुई। जीवन की आवश्यकता और अनिवार्यताओं की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखने की ज़रूरत महसूस हुई।"[9] 1960 से 65 तक राजनैतिक दशा बडी अस्थिर सी रही। पंडित जवहर लाल की मृत्यु के बाद लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने। इसी शासन में ताशकद में पाकिस्तान के साथ शांती समझौता हुआ। लेकिन 1966 को शास्त्री जी की मृत्यु के बाद राजनीति में सत्ता के लिए की स्थिति उत्पन्न हुई। कुल मिलाकर एक ऐसी राजनीति विकसित हुई- "जिसमें घुसकर सत्य असत्य हो जाता था। निर्दोष अपराधी और अपराधी निर्दोष बनकर बाहर आता था।"[10] शासनकर्ताओं के स्वार्थ के कारण हर क्षेत्र का पतन मात्र रहा। आज़ादी के बाद भी उस शब्द का सही अर्थ में भारत जनता प्राप्त न कर सका।

मोरार जी को पराजित कर 1966 को इंदिरा जी भारत की प्रधानमंत्री बनी। इंदिरा गांधी का शासन भारत जनता के लिए आश्वास दिलाने को काविल था। लेकिन आपातकाल की घोषणा उस पर देश की सुस्थिरता को विगाड दिया।

---

9 समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना संदर्भ- अशोक हज़ारे, डॉ. माधव सोनटक्के, पृ.9-11

10 आधुनिक परिवेश और नवलेखन - डॉ. शिवप्रसाद सिंह, पृ.47

"आपातकाल की घोषणा स्वतंत्र भारत के इतिहास की सर्वाधिक दुःखद घटना थी। संपूर्ण देश को एक झटके में ही गूँगा और बहरा बना दिया गया। साठ करोड लोग कांठ की पुतली बन गये। यह सही है कि अधिकांश बुद्धिजीवियों ने या तो चेहरे बदल लिए और सरकारी चारण हो गये या कुछ मौनव्रत ले बैठे।"[11] 1971 के आम चुनाव में जनता ने गैर सरकारी कांग्रेस सरकार चुनी। जनता इसे हमारी आपादी के नाम पर संबंधित किये और आशान्वित भी थे लेकिन अब भी उनके सामने निराशा का घोर अंधकार रहा। सन् 1974 से 1975 तक का समय राजनीति में उथल-पुथल का रहा। संपूर्ण राष्ट्र में महंगाई, भ्रष्टाचार और असंतोष व्याप्त था जिसके खिलाफ आवाज़ उठने लगी। इंदिरा जी ने कुर्सी को बचाने के लिए आपातकालीन घोषणा करके विपक्षी राजनेताओं को कारागार में डालवा दिया। उनकी तानाशाही और सत्ता प्रियता के कारण 1977 के चुनाव में उन्हें पराजय का सामना करना पडा। मोरार जी देसाई प्रधानमंत्री पद पर आ गये। लेकिन ढाई साल के बाद फिर से इंदिरा प्रधानमंत्री बन गयी। साहसिकता और होशियारी जिसकी वजह से वे राजनीतिक अस्थिरता में भी राष्ट्रीय एकता को कायम करने में सफल रही और भारत को पुनः खंडित होने से बचा लिया। नवें दशक इंदिरा गाँधी की मृत्यु तथा राजीव गाँधी के नेतृत्व में आने की बारी थी। अरुण नेहरू के सहयोग से इंदिराजी के मरने पर राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बनाया गया, 1984 के चुनाव में जनां देश भी उन्होंने प्राप्त किया। इस तरह से आज़ादी से लेकर आज तक अस्थिरता बनी हुई है। राष्ट्रीय एकता और जनता के विकास की आड में जनसेवा करनेवाले जन नायक अपनी तिज़ोरी भर रहे है। अपनी खिचडी अलग पकानेवाले कमीने राजनीतिज्ञ ही भारत

[11] धर्मयुग- गणतंत्र विशेषांक, 1980, पृ.7

का श्राप है। हमारी एसी विडंबना पर बच्चन सिंह ने लिखा है- "हमारे देश में स्थिति लाने की प्रमुख ज़िम्मेदारी आज के खोखले लोकतंत्र की है। यह स्वाभाविक अर्थ में लोकतंत्र नही तंत्रलोक है। इसका आरंभ उसी समय से हो जाता है जिस समय से व्यक्ति पूजा शुरु हुई। व्यक्तिपूजा से अभिभूत होने का फल यह होता है कि लोगशक्तियों को एक व्यक्ति में केन्द्रित कर देते है और उनका अपना कुछ नहीं रह जाता।"[12] भाई-भतीजावाद, तानाशाही, दल-बदल, सांप्रदायिकता, सत्तालोलुपता, चुनावी दौर, भ्रष्टाचार, नारेबाजी इत्यादि अनेक घिनौनी वृत्तियों ने अधिकार जमा लिया है।

राजनैतिक मूल्यों का ह्रास व्यक्ति के मानसिक दशा में भी बदलाव लाये है जो परिवेश के प्रति उनके आक्रोश में बदले है। ऐसी राजनीतिक विकृतियों को विवशता से स्वीकारना भी उनके लिए नियति बन गयी है।

3.1.2 आर्थिक परिस्थितियाँ

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जन जीवन के आर्थिक परिवेश में भी पर्याप्त बदलाव आया है। लंबी प्रतीक्षा के पश्चात् भारत आजाद तो हुआ लेकिन ढेर सारी समस्याओं का तोहफा लेकर। उन समस्याओं में सबसे मुख्य समस्या थी-अर्थ का असंतुलन। जिससे निपटने के लिए स्वतंत्र भारत में अनेक कदम उठाये गये। अखिल भारतीय आर्थिक कार्यक्रम समित का गठन किया गया आर्थिक दृष्टि से पिछडे लोगों को भूदान द्वारा भूमि दिलायी गयी, जमीन्दारी उन्मूलन एवं उचित कर की व्यवस्था प्रदान की गयी। वैयक्तिक, सामाजिक, पारिवारक जीवन मूल्य अर्थ पर आधारित

---

[12] मंचीय यात्रा, परिशिष्ट से, पृ.76

बन गया। यही अर्थ, स्वार्थ भावना के मूल में रह गया है जो भ्रष्टाचार, रिश्वतखारी, बेईमानी जैसी बुरी हालात का भी जनक बन गया है। आर्थिक स्थिति ने भौतिक और नैतिक मूल्यों के बीच एक बडा दरार का निर्माण किया है जो व्यक्ति के टूटन को आसान बनाया है। इसके साथ ही दूषित राजनीति का भी, देश की आर्थिक स्थिति के ह्रास का कारण है। “हमने समाजवादी व्यवस्था का संकल्प तो किया पिछले 46 वर्षों में गरीब लगातार गरीब होता गया और अमीर ओर अमीर होता गया। एक ओर जहाँ देश की 26 करोड जनता अति दरिद्रता में जी रही है, वहाँ दूसरी ओर मुट्ठी भर लोग कल्पनातीत ऐशो आराम की ज़िन्दगी जी रहे है।”[13] अंग्रेज़ों का शासन भारत की आर्थिक स्थिति को ओर खराब कर दिया था। उनके अपने उद्योग धंधों के लिए भारत को एक मंडी जैसा देखने लगा। इसीलिए ही स्वतंत्रता मिलने के बाद भी हम आर्थिक रूप से स्वतंत्र नही बन सके। स्वतंत्र भारत के सरकार द्वारा शोषितों और दलितों का उद्धार किया जाने लगा। भारत सरकार की ओर से विज्ञान-सम्मत और योजना बद्ध तरीके में कार्यान्वित करने को पंचवर्षीय योजनाओं को लागू किया। कृषि, उद्योग, बिजली, सिंचाई, शिक्षा, परिवहन, आवास, स्वार्थ, बेकारी, गरीबी जैसी लाखों मामलों का उचित समाधान ऐसी योजनाओं के अंतर्गत सुरक्षित रहा। पंचवर्षीय योजना देश की समृद्धि का एक बढता हुआ चरण न रह गया। योजनाओं की रकम नेता और कर्मचारी आपस में बाँट लेते और रिपोर्ट सरकार को सौंप देते। जिससे सरकारी प्रयासों के बावजूद भी आर्थिक समस्या ज्यों की त्यों बनी रही। दूसरा कारण यह भी था कि नेहरू ने उद्योग धंधों को अधिक बढावा दिया, उनकी औद्योगिक क्रांती ब्रिटिश अर्थ व्यवस्था का प्रतिरूप ही थी।

---

[13] धर्मयुग 3, नवंबर 1973, विश्वनाथ का लेख

जिससे पूँजीवाद दिनोंदिन विकसित होता गया और जनता गरीबी के दल दल में फँसती गयी। खेती जिस पर देश की सबसे बडी आबादी को निर्भर रहना था उसमें कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ। 1962, 1965, 1971 में हुई लडाइयों से उत्पन्न तनाव तथा असुरक्षा देश की आर्थिक स्थिति को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया था। सरकार की गलत नीतियों विषम आर्थिक व्यवस्था के कारण समाज में तीन वर्ग हुए- उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग। जिसके फलस्वरूप सामाजिक अराजकता पनपने लगी। अर्थ-व्यवस्था के डगमगाते ही मनुष्य की मनुष्यता समाप्त हो जाती है, नैतिकमूल्य नष्ट हो जाते है, व्यक्ति में कुंठा जन्म लेती है, वर्ग संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। कुलमिलाकर आज का हमारा भारतीय परिवेश आर्थिक विषमताओं के शिकजे में जकडा हुआ है। अर्थ पर मुट्ठी भर लोगों का ही अधिकार रह गया है, मध्यवर्ग, सर्वहारा और श्रमजीवी की संख्या बढती जा रही है। वह गरीबी और भुखमरी के साये में जीवन जीने को विवश है। भ्रष्ट शासन तंत्र भारत की आर्थिक स्थिति को कुचल देने में ही ज्यादा तत्पर थे। आम आदमी की आर्थिक स्थिति पतन की ओर बढ गयी है। बीमा और बैंकों के राष्ट्रीयकरण से देश की जनता को कोई विशेष लाभ नहीं रहा है। बेकारी, आर्थिक विषमता, अपराध हत्या, अपहरण, भ्रष्टाचार, पद लोलुपता और अनैतिकता आर्थिक क्षेत्र की विसंगतियों का परिणाम निकला है। "ज्ञान विज्ञान विकास योजनायें या प्रगति के गान उस समय असंभव और अस्वाभाविक प्रतीत होते है, जब बेरोज़गार नवयुवकों की बोलियाँ निराशा के अंधकार में जीवन ढो रही हो। जहाँ बेरोज़गारी किसी देश की आर्थिक दुर्गतियों, हीनताओं और दिवालियेपन का प्रतीक है।"[14] औद्योगिक विकास, नगरों वा महानगरों

[14] हिन्दी नाटक में समसामयिक परिवेश - डॉ. विपिनगुप्त, पृ.146

का विस्तार हुआ है जिसके कारण अनेक नई आर्थिक समस्याओं का भी प्रादुर्भाव हुआ है। कुल मिलाकर तत्कालीन भारतीय परिवेश आर्थिक विषमताओं के शिंकजे में जकडा हुआ है। अर्थ पर मुट्ठी भर लोगों का ही अधिकार रह गया है। सरकार की दलगत खोखली योजनायें एवं घोषणायें आर्थिक विपन्नता को दूर करने में असफल रही है। युग परिवेश की इस आर्थिक जटिलता तत्कालीन साहित्य के अंतर्गत देख सकते है।

3.1.3 सामाजिक परिस्थितियाँ

समाज परिवर्तनशील होता है। प्राचीन भारतीय समाज आत्मनिर्भर, धर्म द्वारा अनुशासित और संगठित था। समाज को सुचारु रुप में चलाने के लिए वर्ण व्यवस्था अस्तित्व में थी- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। प्रत्येक वर्ण अपने कर्तव्य और दायित्व से जुडा था। अंग्रेज़ों के आगमन के वक्त देश ग्रामीण समाज की व्यवस्था पर ही चालू था। सामाजिक समस्याओं का समाधान गाँव की पंचायत के ज़रिए ही होता था। जातिप्रथा तथा छुआछूत समाज के छाप थे। नारियों पर कडे नियंत्रण थे अनूचित धार्मिक चिंतन अंधविश्वास तथा कुरीतियों का पालन करने के लिए लोगों को विवश बनाये है। बालविवाह, अनमेल-विवाह, बहु विवाह, दहेज प्रथा, सती प्रथा व विधवा जीवन जैसी प्रथाओं से नारी जीवन अत्यंत दुस्सह तथा क्लिष्ट बना रहा। गाँधिजी जैसे नेताओं के प्रयत्न से राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव से हालात में बदलाव आने लगा। स्वतंत्रता के बाद, भारतीय संविधान लागू होने के बाद ही नारियों की अवस्था में सुधार आयी है। सदियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई औरत अपने परिवेश में खुलकर, ताज़ा हवा में जीने लगी। शिक्षा प्राप्ती की सुविधा ने उनके जडता, अज्ञान को दूर करे समान अधिकार के लिए एक

क्रांतिकारी भावना को उत्पन्न किया। अस्तित्वबोध आत्मनिर्भरता नारियों के भाव बोध को बदलने लगे।

सामाजिक अस्तित्व के आधारभूत पारंपरिक मूल्यों के अस्वीकार ने एक नये भावबोध को जन्म दिया है। पुरानी मान्यताओं तथा विचारधाराओं को उपेक्षित करने की इच्छा समाज में प्रबल हुई है। यांत्रिक पाशविकता, सामाजिक अराजकता, जर्जरित अर्थ व्यवस्था, युद्ध की विभीषिका पाश्चात्य संस्कृति का बढ़ता हुआ प्रभाव इत्यादि बाह्य परिवेश ने मनुष्य को बौना कर दिया। उधर ग्रामिण जीवन की नीरसता और कठोर नियंत्रित जीवन से तंग आकर लोग गाँव और खेत को भूलकर शहर की ओर आकर्षित हुए। अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त कर पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित कुछ लोग शहर में ही रहना पसंद करते थे। औद्योगीकरण के परिणाम स्वरूप ही- "हमारा नैरन्तर्य टूट गया है और ज़िन्दगी उखड़ गयी है, जीवन के अनगिनत तौर तरीके जिनकी जडे दूर तक धरती में गड़ी हुई थी, आज अंतिम रुप से टूट चुकी है।"[15] जडों के टूटने से मनुष्य हिल गया, आत्मियता गायब हो गयी, भाई चारे की भावना में दरार पड गयी और समाज में मूल्यहीनता एवं चारित्रिक अराजकता फैल गयी, क्रूर समय चक्र के बियाबान में मानवीय संवेदना सिसक रही थी। 'फ्रायडीयन' विचारधारा का भी स्पष्ट प्रभाव सामाजिक गतिविधियों को प्रभावित की है। व्यक्ति, परिवार एवं विवाह संबंधी दृष्टिकोण में परिवर्तन स्त्री-पुरुष संबंधों के दायरे को भी पूर्ण रुप से बदला दिया है। वैवाहिक जीवन से संबंद्ध रुढी मान्यताओं तथा परंपरागत बंधन जीर्ण-शीर्ण हो गये है। संयुक्त परिवारों का अपचय तथा अणुकुटुंबों का आविर्भाव सामाजिक दिशा को बदलने में मज़बूर कर दिये है। परिवार का विघटन एक

---

[15] कल्पना, नवलेखन विशेषांक- डॉ. बच्चन सिंह, पृ. 3

सामान्य अवस्था बन गई है। परिवार संबंधों में बिखराव, टूटते मानवीय संबंधों की व्याख्या, व्यक्ति चेतना या स्वातंत्र्य बोध वातावरण में हावी रहे। इन सबका असर व्यक्ति पर पडा है। डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल का कथन तत्कालिन सामाजिक स्थिति को स्पष्ट उजागर करती है- "हमारा वर्तमान समय और उसका यथार्थ एक भयंकर दृश्य प्रस्तुत कर रहा है- यहाँ मनुष्य एक ही साथ तीन युगों में जी रहा हैं। मध्ययुग, आधुनिक युग और भविष्य युग। हमारा गहन, तीव्र और प्रत्यक्ष संबंध मनुष्य के इस आधुनिक युग- उसके वर्तमान से ही, जहाँ वह अपने नामों से नहीं वरन, अपने उपनामों से जाना जाता है।"[16] पारिवारिक विघटन, पीढी संघर्ष, वैचारिक मतभेद, पारस्परिक समन्वय तथा सामंजस्य का अभाव आदि सामाजिक संतुलन को बिगाड दिये है।

उन्निसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत की सामाजिक स्थिति और भी बदतर हो गयी। एक नई भौतिक सभ्यता की शुरूआत हुई। पश्चिमी दर्शन का प्रभाव, वैज्ञनिक उपर्याक्तियाँ, बेकारी जैसी बातों से युवा वर्ग के मनोव्यापार में समूल परिवर्तन आये है। नौकरी का अभाव महंगाई, महानगरीय जीवन की विसंगतियाँ, भौतिक सुखों की लालसा नई पीढी के अतृप्त जीवन के कारण रह गये। और इसी अतृप्ती के कारण ही वह अपने लक्ष्य तक पहुँचने को असमर्थ बन जाता है। इस संदर्भ में डॉ. दुबे का यह मंतव्य सठीक है- "आधुनिक युग विश्रंखला और बिखराहट का युग है। विश्व बिखर गया है- राष्ट्रों में, राष्ट्र टुकडों में और टुकडे बिखर गया है- इकाइयों में। उधर समाज भी बिखर गया है वर्ग, समूह, संस्था, यूनियन पार्टी में और अब वह भी नहीं रहा, रह गया है केवल व्यक्ति और व्यक्ति स्वयं अपने आप में अपने ही भीतर

---

16 दूसरा दरवाजा: मेरा अपना रंगमंच - डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, पृ.10

बिखर गया है। उसका मन बिखर-बिखर गया। चेतन अर्धचेतन-अवचेतन में विभक्त हो गया है। व्यक्ति चेतना बिखर गई-अहं से स्व में। सर्वत्र एक टूटन महसूस की जा रही है, केवल टूटन और कुछ नहीं। आज की बिखराहट- छिनराहट, आकुल-व्याकुलता और व्यापक अराजकता स्व को छोडकर किसी अन्य के नेतृत्व, किसी और के प्रतिनिधित्व में विश्वास नहीं करती। सारा युग व्यक्तिवादी बन गया है, व्यक्ति चेतनावादी हो गया है।”[17] विषैले धूरीहित वातावरण में, नये जीवन मूल्यों की तलाश, आधुनिक मानव के लिए आश्वास दिलाने की न थी। पूराने सडी गयी मान्यताओं को छोडकर नये स्वस्थ जीवन मूल्यों को अपनाने के लिए बेचैन नयी पीढी को पुराने पीढी के साथ संघर्ष करना पड रहा था। परन्तु साहस के अभाव में उसका व्यक्तित्व विघटित होता जा रहा था। उसमें अनास्था और क्षणवाद की प्रवृत्तियाँ जन्म लेने लगी। विघटन के इस युग में- “आज का नवयुवक असंतोष और अस्वीकार का साक्षात् प्रतीक बन गया है.. पुराने जीवन मूल्य खंडित हो चुके थे और उसके स्थान पर नये पुष्ट जीवन मूल्यों की स्थापना हुई थी जीवन के ऐसे वातावरण में नयी पीढ़ी का भ्रमित हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।”[18] ऐसी अवस्था में व्यक्ति में द्वन्द स्थायी भाव का रहने लगा। सामाजिक विषमताओं का सबसे अधिक शिकार मध्यवर्ग हुआ। समाज में अपना स्थान बनाये रखने के कारण ही वह वर्ग दिन-प्रतिदिन खोखला होता जा रहा है। इसके कारण ही सामाजिक जीवन में आंतरिक टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर भारत में, वैज्ञानिक उपलब्धियाँ,

---

[17] व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास - डॉ. पुरुषोत्तम डूबे, पृ.213

[18] द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृ. 51

बौद्धिकता, भारतीय तथा पाश्चात्य संस्कृति का घुल मिलाव जैसे अनेक कारणों से सामाजिक व्यवस्था का ह्रास, एक नग्न सत्य रह गया है।

3.1.4 सांस्कृतिक/धार्मिक परिस्थितियाँ

19 वीं शताब्दी सांस्कृतिक दृष्टि से इतिहास में अधिक महत्वपूर्ण रही है अग्रेज़ों के आगमन, विज्ञान के आविष्कार, शिक्षा के नवीनीकरण भारतीय जनजीवन को प्रभावित किया। स्वातंत्र्योत्तर सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भारत की और पाश्चात्य विचारधाराओं के संघर्ष की रही है। देश में जनवादी प्रवृत्तियों का विकास तथा, गाँधीवादी-समाजवादी विचारधाराओं का व्यापक प्रतिफलन भारतीय सांस्कृतिक बोध पर एक गहरा बदलाव लाये है। नयी वैज्ञानिक प्रगति के कारण उपभोक्ता संस्कृति का जन्म हुआ है। जिसके फलस्वरुप मनुष्य के आचार-विचार, जीवन दर्शन और लक्ष्य को पूर्णतः बदलकर, अर्थ प्रधान और आत्मकेंन्द्रित संस्कार की स्थापना की गयी है। तकनीकी-वैज्ञानिक विकास का दुष्परिणाम जीवन की यांत्रिकता तथा वैयक्तिक अस्तित्वहीनता का प्रादुर्भाव किये। व्यक्ति भीड का एक अंग मात्र बनकर रह गया है। 19 वीं 20 वीं सदी में विज्ञान के द्वारा परमाणु और जीवाणु अस्त्रों के आविष्कार ने मृत्यु भय से त्रस्त मानव के मानसिक दशा पर बुरा असर डाला है।

मूल्यों का विघटन स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सांस्कृति परिवेश पर गहरा असर डाला है। डॉ. गोविन्द चातक ने जो लिख्रा है वह ठीक ही है- “स्वतंत्रता के पूर्व जीवन की एक दिशा थी। एक सुनियोजित लक्ष्य था और उस लक्ष्य की पूर्ती के लिए सेवा, संकल्प, त्याग और बलिदान के वांछित और आरोपित आदर्श थे। स्वतंत्रतात आई तो लक्ष्य प्राप्ति के साथ ही उससे संबंद्ध आदर्श भी आँख्रों के आगे से तिरोहित

हो गये। ....सारे परिवेश और जीवन मूल्य टूटते दिखाई देने लगे।"[19] प्रजातंत्र की दुहाई देनेवाले राजनेताओं तथा शासकों से ही उसका दुरुपयोग तत्कालीन मानव नियति पर गहरा असर डाला है। अंतर्राष्ट्रीय संपर्कों का भी, भारतीय सांस्कृतिक धरातल पर अमिट छाप है। अन्य देशों से जो वैचारिक आदान-प्रदान हमारी ओर से हुआ है वह अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक विकास में हमें मदद किया है। विश्व बन्धुत्व की भावनायें पल्लवित होना भी हमारे सांस्कृतिक उन्नाव को उपयोगी सिद्ध हुआ है। सिर्फ पाश्चात्य और नवीन से आकर्षित होकर नहीं, बल्कि उपयोगितावादी दृष्टि को अपनाकर ही हमारी सांस्कृतिक उन्नति तथा अस्तित्व कायम रखती है। नाटो, सैटो तथा भयंकर शस्त्रों के विनाश समर्थन, चीन के साथ शांती समझौता, तारकंट समझौता, भारत की जियो और जीने दो नीति आदि ने भारत और विश्व के सभी राष्ट्रों से सांस्कृतिक बन्धुत्व स्थापित करने में मदद किया है। विश्व के ज़ान-विज़ान-कला, साहित्य संगीत का आदान-प्रदान भी हमारे लिए खुशी की बात रह गयी है। भूगोलीकरण के परिणाम स्वरूप पूरे विश्व को एक छत के नीचे लाने की कोशिश रही है जो वसुधैवकुटुंबकम को सार्थक बनाती है। इस कारण से हमारी संस्कृति में पूरे विश्व का संस्कार घुल मिल-गया है। संगीत नृत्य, वेशभूषा, आभूषण, रहन-सहन, फैशन आदि का बदलाव हमारी संस्कृति को एकदम बदल दिया है और एक फैशनबुल संसार की ओर हमें खींच रहा है।

फिल्मों तथा अंतर्जाल का अतिप्रसरण हमारे संस्कृति पर विशेषतः नयी पीढीयों पर गहरा प्रभाव डाला है। नारियों के प्रति दमन तथा उनपर अत्याचार इस युग की सांस्कृतिक गरिमा पर काला छाप डाला है। वर्तमान संस्कृति पर लोहया के

---

[19] टूटते परिवेश- डॉ. गोविन्द चातक, पृ.78

विचार सत्य ही है- "संस्कृति के नाम पर भारत में जिस वातावरण को देखा और भोगा उसे उन्होंने एक शब्द में नाम दिया-'कीचड'। यह कीचड हज़ारों वर्षों की सडी हुई उस परंपरा ने पैदा किया है जिसके सभी जीवंत तत्व या तो नष्ट हो गये या भला दिये गये। आज की स्थिति नितांत दारुण और असह्य है सारा देश जहालता, गरीबी, स्वार्थपरता में गर्क है।"[20] यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए शांती एवं तटस्थ नीति तथा सह अस्तित्व सहिष्णुता का अनुमोदन किया है फिर भी युगबोध को झुठलाया नहीं जा सकता, विश्वव्यापी सांस्कृतिक विघटन की चपेट में भारत भी आ गया है। इस प्रकार आलोच्यकाल में हमारी सांस्कृतिक मान्यतायें, पुरानी मान्यताओं से बहुत दूर जा चुकी है। मानसिक द्वन्द, भष्टाचार, सत्ता की राजनीति, शोषण, वैयक्तिक मानवीय संबंधों का अपचय आदि हमारे आधुनिक सांस्कृतिक पर्यावरण के लिया नये शब्द है जिसके कारण व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र की सुगम प्रवाह में रोडा अटका रहे है।

3.2 कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में चित्रित समस्यायें

एक रचना की गुणवत्ता का नाता उसके परिवेश बंध से माना जाता है क्योंकि परिवेश निरपेक्ष रचना कर्म अपनी गरिमा खो बैठती है। नयी मान्यताओं का साहित्य में महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिनमें नाटक को ज़िन्दगी के निकट हम पाते है। हमारी नयी परिस्थितियों के जन्म से नाटक साहित्य भी नयी चेतनाओं की मशालें लिये खडा है। आज समष्टिगत तथा व्यक्तिगत सारी समस्याओं इतनी बढ़ गई है कि व्यक्ति इन सबसे जूझकर अपना व्यक्तित्व खो बैठा है। तमाम क्षेत्रों की यथार्थ समस्याओं का

---

[20] रविवार, 28 दिसंबर (1986) अंक 17, श्याम चरण दुबे

अंकन कर समकालीन नाटकों की महत्वपूर्ण विशेषता देख सकते है। कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में युगबोध इसका उत्तम नमूना है। दोनों महिला नाटककार हिन्दी नाट्य जगत में अपने कालजयी नाटकों के ज़रिए, सामाजिक बोध को दिखाने में सफल हुई है। इनके नाटकों में समाज की भिन्न समस्याओं को उजागर किया है।

युगीन संदर्भों का अंकन अन्य साहित्यकारों जैसे महिला नाटककार ने अत्यंत समग्रता तथा सजगता से किया है। उनके नाटक किसी विषयसीमा में कैद न रहकर जीवन के प्रत्येक अनुभव, मनुष्य के विसंगत परिवेश, अपने आसपास की सारी हरकतों को उभरने में सफल हुए है। भगवान जाधव के अनुसार- "केवल स्त्री और स्त्री से संबंधित प्रश्नों के बाहर महिला नाट्य लेखिकाओं का साहित्य-सृजन दिखाई नहीं देता ऐसे आरोप से हिन्दी महिला दृष्टि संकुचित नहीं है। उनके नाटक सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक चेतना से युक्त है। इतना ही नहीं बल्कि उनके नाटकों में समकालीन समस्याओं का विवेचनकाल के यथार्थ का समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों का देशभक्ति, राष्ट्रप्रेम, मानवतावादी दृष्टि, आतंकवाद जैसे विषयों का समायोजन हुआ है।"[21] कुसुम कुमार और नादिरा बब्बर के नाटक भी अपने समाज का आईना जैसा दीख पडते है। इनके नाटक तमाम परिस्थितियों को आत्मसान करके अपने युगीन संदर्भों को उजागर करने में सक्षम निकले है। इनके नाटकों की समस्याओं के विश्लेषण के पहले तत्कालीन परिस्थितियों का एक संक्षिप्त रुप प्रस्तुत करना समीचीन लगता है।

[21] हिन्दी महिला नाटककार - भगवान जाधव, पृ.35

ताकि उनके नाट्यसाहित्य के युगबोध तथा प्रासंगिकता आसानी से समझें। और यह भी मालूम होता है कि उनका साहित्य युग जीवन को स्वीकारने में सबसे आगे है।

3.2.1 राजनैतिक समस्यायें

राजनीति किसी भी राष्ट्र का एक सशक्त महत्वपूर्ण अंग है। देश के बाह्य पक्ष के विकास का दायित्व यदि राजनीति पर है तो आंतरिक पक्ष को जाग्रत करने का माध्यम साहित्य है। राजनीति की छत्र छाया में देश की उन्नति अवनति की नींव पडती है। राजनीति में नैतिकता का ह्रास ने स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक क्षेत्र में नयी समस्याओं को पैदा की है। जनसेवा के स्थान पर उसका ध्येय जन कल्याण न रहकर स्वकल्याण रह गया है। अर्थ लोलुपता ने पुराने-पुण्य आदर्शों को तेज़ी से विघटित किया है। जिसका परिणाम स्वरुप अवसरवादिता, स्वार्थपरता, सत्तामोह आदि नये शब्दों का जन्म हुआ है। डॉ. चन्द्रशेखर ने लिखा है कि- "भ्रष्ट शासन, जन जाती तंत्र लुच्छी व्यवस्था, दोहली सिहाय धर्मिता, बेहया शक्ति का वंशानुगत ध्रुवीकरण, यह है हमारा कुल राजनैतिक पर्यावरण।"[22] ऐसी दूषित राजनैतिक अवस्था का अंकन समकालीन नाटककारों के नाटकों में चित्रित है। यहाँ कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में चित्रित राजनीतिक समस्याओं का विश्लेषण करने की कोशिश है।

3.2.1.1 राजनैतिक नेताओं की स्वार्थता

समाज सेवी हो या राजनेता-अपने स्वार्थ लाभ ही उनका परम लक्ष्य रह गया है। बदलते मूल्य परिवेश में नैतिक मूल्यों का अपचय सबसे तेज़ी से राजनैतिक नेताओं में पाये जाते है। अपने राष्ट्र तथा समाज के कल्याणमय भविष्य के लिए कोशिश करने को जो बाध्य है, उसके द्वारा अपने स्वार्थेच्छा की पूर्ती का अथाह

---

[22] हिन्दी नाटक और लक्ष्मी नारायण लाल की रंगयात्रा - डॉ. चन्द्रशेखर, पृ.14

परिश्रम ही होता है। डॉ. महीपसिंह ने लिखा है- "हमने देखा, कल तक त्याग और बलिदान की दुहाई देते और देशभक्ति के तराने गानेवाला नेता वर्ग सत्ता मिलते ही भूखे भेडियों की तरह धन और यश कमाने पर टूट पडा है। चारों तरफ एक अजीब सी हफरी-तफरी है। कोई भी मौका चूकना नहीं चाहता, समय रहते सभी इतना एकत्र कर लेना चाहते है कि गद्दी न रहने के बाद भी किसी प्रकार की चिंता न रहे।"[23] स्वार्थता और लालच की मूर्तियाँ रह गये ऐसे नेता अब सेवा करना भूल गये है। ऐसे एक राजनीतिक नेता को कुसुम कुमार के 'सुनो शेफाली' में मिल पाता है। कपट राजनेता सत्यमेव दीक्षित अपने बेटे बकुल का शादी, इसलिए दलित शेफाली से कराना चाहता है कि आगमी चुनाव में उसे दलितों से ज्यादा वोट मिले। लेकिन शेफाली सत्यमेव की कपटता को स्पष्ट रुप से समझती है कि वह समाज से ज्यादा खुद को प्यार करता है। शेफाली कहती है-

> "ठीक है अम्मा चली जाऊँगी...उसका बाप आये तों तू साफ साफ कह देना...आपकी सहूलियत बनना चाहते है, मुझे समाज सेवक साहब। ऊपर से जताते है ऐसे जैसे हम पर कोई उपकार कर रहे हो।"[24]

प्यार-शादी जैसे अनमोल मानवीय प्रवृत्तियों को भी अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिए उपयोग करनेवाला राजनीतिक आज के ज़माने का श्राप है। 'सुनो शेफाली' के एक संदर्भ में सत्यमेव मिस साहब से शेफाली से शादी के लिए मंजूर करवाने की विनती लेकर खडा होता है जो कमीने निचले राजनीतिज्ञों के दाव वेच का स्पष्ट नमूना है।

---

[23] विद्रोह और साहित्य - देवन्द्र इस्सर, पृ.35

[24] सुनो शेफाली - कुसुम कुमार, पृ.40

चुनाव के पहले ज्योतिषी मन्नन आचार्य के पास सत्यमेव जाता है, जहाँ मन्नन उस पर व्यंग्य करता है मन्नन-

> "वधु यानी आपकी समाज सेवा और वर जिसके हाथ में आप अपनी कन्या का हाथ देने जा रहे है...आपका यह चुनाव देवता। समाज-सेवा वेड्सस चुनाव देवता! दोनों मिलकर करेंगे देश सेवा। खायेंगे दीक्षित और कंपनी खूब फलमेवा।"[25]

समाजसेवा को अपने लक्ष्यपर पहुँचने की सीढी मानने वाला स्वार्थ, कपट राजनेता समाज की दुरवस्था का नियामक बन रहा है।

3.2.1.2 चुनाव कपटता का मापतौल

स्वतंत्र भारत में चुनाव प्रजातंत्र का नींव रह गया है। लेकिन आज चुनाव का उपयोग झूठे-कमीने नेताओं को सत्ता पर बिढाने का एक मापतौल रह गया है। "मैं देश की बात जानता हुँ। मनुष्य भ्रष्टाचार दुराचार और अनाचार की जिस सीमा तक जा सकता है, उस तक निर्वाचनों मे हमारे मत दाता और उम्मीदवार पहुँच जाते है। यह स्थिति प्रजातंत्र की जडों को खोद रही है।"[26] निष्पक्ष शासन की चाह अब तो त्यागने का वक्त है क्योंकि निकम्मे और लालच चुनाव के पहले मुँह मांगे वादे और इनाम देकर मतदाता को अपने स्वांग में खींचकर निर्वाचन में ज्यादा वोट कमाते है और सत्ता पर भरे रहते है। 'सुनो शेफाली' में सत्यदेव ब्राह्मण है और समाज सेवक है। वह दलितों की सेवा इतनी करती है कि दलित लडकी शेफाली को अपनी बहु

---

[25] सुनो शेफाली - कुसुम कुमार, पृ.32

[26] समय और हम - जैनेन्द्र कुमार, पृ.208

बनाकर, अपने अधिकार की कुर्सी निश्चित करना चाहता है। मुँहमागे वादे देकर जनता को ठगनेवाले समाज सेवकों तथा राजनीतिक नेताओं की सूची में सत्यमेव को भी जोड सकते है। शेफाली से उनका प्यार, अपने राजनीतिक उन्नती के लिए था। खुद शेफाली उनके और बकुल के आदर्शों पर व्यंग्य करती है- शेफाली-

> "बहनों और भाइयों...अपना वोट हमें देकर अपना भविष्य उज्ज्वल बनाइए यह बात आज यहाँ इस जीप में मौजूद हरिजन लडकी कर रही है। इस लडकी को मैं आज ही अभी ब्याहकर ला रहा हुँ।...गरीबी को हटाया जाना इस देश के लिए जितना ज़रुरी है उतना ही हरिजनों का उद्धार भी। अब तक इस दिशा में हमने जितने प्रयास किये, वे सब उसफल रहे...अछूतोद्धार की इस दिशा में सभी प्रयत्न असफल होते देखकर मैने निराशा की स्थिति में पहले इस हरिजन लडकी से प्रेम किया फिर शादी कर ली...लीजिए भाइयों और बहनों अब तो आप हमें ही देंगे न अपनी कीमती वोट।"[27]

लोकतांत्रिक व्यवस्था के इस वर्तमानयुग में राजनीति से जूझनेवालों का लक्ष्य सिर्फ स्वार्थ लाभ रह गया है। अपनी कथनी और करनी का अंतर नेताओं द्वारा चुनाव के पहले और बाद दीख पडते है। श्रीमती विनोदजैन की राय में-"नाटक में राजनेताओं के छल-छदम का रूप और प्रत्येक स्थिति में लाभ उठाने की इच्छा का विकृतरुप उभरता हुआ दिखाई देता है।जो राजनीतिक चेतना को प्रस्तुत करता है।"[28] प्रजातंत्र के वर्तमान माहौल में कपट राजनेताओं का राज, राष्ट्र के भविष्य को तक अंधकार में डुबाने को पर्याप्त रह है।

---

27 सुनो शेफाली - कुसुम कुमार, पृ.54

28 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना- श्रीमती विनोद जैन, पृ.51

3.2.1.3 राज-समाज नेताओं का दोहरा व्यक्तित्व

अंतर्विरोधों के वर्तमान माहौल में मनुष्य के व्यक्तित्व को दोहरापन एक परिवेशगत याथार्थ्य है। समाज सेवा का लक्ष्य परम पवित्र दृष्टिकोण से परखा जाता था एक ज़माने में। राज-समाज सेवियों के कर्म इतना सुतार्य थे कि उनपर शंका की कोई गुँजाइश तक न था। लोककल्याण की चरमसीमा के रूप में समाजसेवा का मानना थी। लेकिन वर्तमान स्वार्थी परिस्थितियाँ नेताओं के रहन-सहन में तक परिवर्तन लाये है कि वे दिन में कुछ कहते है लेकिन रात में कुछ बदलके करते है। कुसुम कुमार के 'संस्कार को नमस्कार' में ऐसे नेता को मिल पाते है। नाटक में संस्कार चंद दुष्चरित्र और कमीने है जिसकी समाज सेवा है नारी उद्धार (नारी शोषण)। नारी उद्धार को माध्यम मनाकर अपने जटिल कामवासना का शमन संस्कार चंद करता रहता है। नारी केन्द्र के संचालन के पीछे उनका लक्ष्य वहाँ की कुआरियों का यौन शोषण। दिन में वह निरीह लडकियों को आदर्श भरी वाणियाँ देता है लेकिन रात को कायापलट करके एक दुराचारी का वेश धारण करता है। नाटक में शक्ति-विद्या जैसी अबोध बालिकाओं पर संस्कार का बलात्कार मानवीय मूल्यों के ह्रास की सूचना है। संस्कार चंद का दोहरा-घिनौना रुप समाज सेवा के संदर्भ में प्रासंगिक रह जाता है। कामोबेन जैसे पिट्ठुओं को अपनी सेवा में नियुक्त करने की उनकी रीति समाज सेवियों के ढोंग और अधिकार भाव का स्पष्ट उदाहरण है। नाटक में सूत्रधार का कहना बहुत समीचीन लगता है-

> "हमारा हीरो जो आदर्शवासियों के लिए बकवास है..आम जनता के लिए बहु कोटियों का उपहास है..बुद्धि-जीवियों के लिए खास कुछ नहीं आम बात है।"[29]

---

[29] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.48

3.2.1.4 आदर्शहीन नेता

आदर्शहीन नेताओं की बाढ आज की राजनीति की अपनी विशेषता है। वे कहते ज्यादा, करते कुछ है। ऐसी एक अवस्था में राजनीति के महान आदर्शों से हटकर वे केवल, थोथी कहनी मात्र रह जाती है। गणेश मंत्री के अनुसार- "व्यापक सामाजिक लक्ष्यों से विमुख, सिर्फ सत्ता के भोग तक सीमित रहनेवाली राजनीति में दल कमज़ोर काँच की तरह तडपते रहने है। आज देस में भोग की राजनीति का ज़ोर है, जो कोई मर्यादा नहीं जानती।"[30] राजनेताओं के थोथे कथनों की गहनता का अभाव सर्वसम्मत है। कुसुम कुमार के 'संस्कार को नमस्कार', 'सुनो शेफाली' आदि नाटकों में ऐसे आदर्शहीन नेताओं को खुलकर व्यंग्य किया गया है। 'संस्कार को नमस्कार' में संस्कारचंद आदर्शहीन राजनेताओं के प्रतिरूप है। वह भाषण तो ज्यादा देता है लेकिन करनी में ना के बराबर है।

"संस्कार : भाषण वहाँ नहीं और दो जगह देगना है, एक जगह देश की ख्याद्ध समस्या पर बोलना है, दूसरी जगह युवा वर्ग की आत्मनिर्भरता की ज़रूरत है बतलाना है, शाम को हमारी उस दवाई की व्यवस्था कर दीजिए, आज पेट में विंड कुछ ज्यादा है।

कामोबेन : आज चिंता न करें...हर चीज़ की उचित व्यवस्था हो जायेगी।... वैसे गाय के घी, बादाम, असली कातिकी शहद की व्यवस्था तो पहले से हो चुकी है।"[31]

---

30 देश पीछे कुर्सी सबसे पहले- गणेश मंत्री, धर्मयुग, सितंबर 1979

31 संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.35

यहाँ युवाओं की आत्मनिर्भरता पर भाषण देने वाला संस्कार, शोषक के रूप में अपना अस्तित्व देता है। अन्न की चिंता में दुखित नेता कीमती खाद्य चीज़ों का ही इस्तेमाल करते है।

'सुनो शेफाली' का सत्यदेव गाँधीवादी विचार धारा के उन्नायक के रूप में समाज सेवा में डूबा है। लेकिन उनके दिल में हरिजन सेवा का भाव तनिक भी नहीं है। गाँधीजी का प्रिय भजन, 'वैष्णव जन तो तेनेहि कहिए पीर पराई जाणेदे'...तक उन्हें असह्य रह लगता है। "दुर्भाग्यवश स्वतंत्रभारत की राजनीति ही भ्रष्ट हो गयी है। अब महात्मा गाँधी का आदर्श तो रह नहीं गया, उसके स्थान पर बहती गंगा में हाथ होने की प्रवृत्ति बढ गयी है।"[32] हरिजनोद्धार के नाम से समाज सेवक के पदपर विराजना ही सत्यमेव का लक्ष्य था। केवल नाम कमाना और सत्ता को प्राप्त करना जीवन का परम-लक्ष्य माननेवाले ऐसे नेताओं का निष्कासन देश के भविष्य के लिए ज़रुरी है। देश को भूलकर, खुद को मात्र लक्ष्य करके जीनेवाले ऐसे नेताओं का राज ही वर्तमान माहौल में उपस्थित है।

3.2.1.5 रिश्वतखोरी

रिश्वत हमारे समाज में बहुत गहराई तक पहुँच गई है। रिश्वतखोरी से समाज में नुकसान दो तरह से होता है। एक अयोग्यता की व्यापकता, दूसरा पैसे का दुरुपयोग। धनार्जन की राहों में रिश्वतखोरी सबसे आगे है जो भौतिकवादी संस्कृति की उपज है। "बाहरी दिखावा, अपव्यय, झूठी प्रतिष्ठा के कारण अधिकांश व्यक्तियों को आर्थिक संकट का सामना करना पडता है। ऐसे व्यक्ति भ्रष्ट आचरण का शिकार बनते है। इसीलिए रिश्वतखोरी, मिलावट, कालाबजारी, सिफारिश आदि अनैतिक

---

[32] द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णे, पृ.45

साधनों का फैलाव सर्वत्र दिखाई देता है।"[33] छोटे कर्मचारी से लेकर बडे अधिकारी तक रिश्वतखोरी के खेल में उलझे हुए है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में पैंशन कार्यालय की कर्मचारियों की मानसिकता रिश्वतखोरी की बुरी नीति को उजागर करती है। जैसे-

"मिस्टर. ए : यहाँ साला आकर कुछ पेश करें तब न! ...रिश्वत मिलेगी और यहाँ हुँ। भूखे नंगों का दफ्तर है यह...सब कानी-कौडी का महताज वाले...खुद पेंशन पर गुज़ार करने वाले उनसे रिश्वत् मिलेगी?"[34]

'सकुबाई' में लाश के नाम पर भी रिश्वत लेने की इच्छा आदमी की थोथी मानसिकता का दृष्टांत है। 'सकुबाई' में वासंती की मृत्यु होती है तो सकु पति के साथ लाश लेने अस्पताल जाती है लेकिन रिश्वत लेकर ही लाश उनके हवाले करते है।

"सकुबाई -'अ..वासंती..उमर पैन्तीस साल कमाठी पुरा में धन्धा करती थी। पंखे से लटककर भर गयी ससाली।' जब उसने साली बोला तो मुझे इतना गुस्सा आया कि मैं उसका मुँह नोंच लूँ..फिर बोला इतनी रात को उस कमरे में जाने से डर लगता है। ठंडी में सारे मुर्दे अकड जाते है। फिर एक दूसरे को धक्का देते...मा तू जा....SS तू जा...SS पाकिया तू जा करके टठ्ठा मसखोरी करने लगे...। यश्वन्त ने जोकर दो सौ रुपये उनके हाथ में रख दिये। तब जाकर वासंती की बॉडी पाते...और सफेद कपडे में लपेटकर सामने डाल दी।"[35]

---

33 हिन्दी नाटकों में समसामयिक परिवेश - डॉ. विपिन गुप्त, पृ.152

34 छः मंच नाटक दिल्ली ऊँचा सुनती है - कुसुम कुमार, पृ.178

35 सकुबाई - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.45

रिश्वत आम आदमी के जीवन पर दोषी सिद्ध हुए है और हो रहे है। सरकार द्वारा इसके विरुद्ध किसी कार्यवाही न लेने के कारण-समाज का हाल अधिकतम बिगड गया है। जनता की आँखों पर पट्टियाँ बांधते ऐसे कुकर्मों का, आज बोलबोला रह गया है।

3.2.1.6 प्रशासनिक भ्रष्टाचार

राजनीतिक भ्रष्ट व्यवस्था के उपजों में भ्रष्टाचार और लालफीताशाही सबसे खतरनाक है। ये वर्तमान समाज के अभिन्न अंग रह गये है। भ्रष्टाचार की समस्या आम आदमी पर ज्यादा पडती है क्योंकि वे ही ऐसी कुरीतियों के फल भोगते है। उनके सामने अफसर और कार्यालय के कर्मचारी जिसकी लाठी उसकी भेंसवाली नीति अपनाते है।

> "हमारा प्रशासन प्रायः भ्रष्ट हो चुका है। भ्रष्ट प्रशासन से तात्पर्य है-ऐसा प्रशासन जिसमें छोटे से छोटे तथा बडे से बडा कार्य सिफारिश, रिश्वत तथा चाटुकारिता से होता है। चाटुकारिता मानवीय दुर्बलता है। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि दूसरा उसकी चापलूसी करे उसके सामने हाथ जोड़े। प्रशासन के हाथ में तो राज्य की शक्तियाँ होती है। अतः प्रशासन का इन क्षेत्रों से बचे रहना कठिन है। जहाँ पहले न्याय तथा ईमानदारी का राज्य होता था वहाँ आज झूठ धोखेबाजी, हिंसा तथा भ्रष्टाचार का शासन है।"[36]

ऐसी अवहेलना करने वाले आशय कुसुम कुमार के 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में देख पाते है। नाटक में माधोसिंह का पैंशन सरकारी दफ्तरों की अकर्मण्यता तथा

---

[36] युगबोध और हिन्दी नाटक - डॉ. सरिता वसिष्ठ, पृ.216

भ्रष्ट व्यवस्था से स्थगित है। जीवित माधोसिंह को मृत रेखांकित करनेवाली भ्रष्ट सरकारी व्यवस्था कार्यालयीन भ्रष्टाचार तथा लालफीताशाही का स्पष्ट उदाहरण है।

यहाँ नौकर भ्रष्टाचार न पासकता है अतः दुखित है। ज़िन्दगी में कुछ ज्यादा कमाने की महत्वाकांक्षा ही भ्रष्टाचार का जनक है। व्यवस्था और अत्याचार के गठबंधन में भ्रष्टाचार जैसे नये शब्दों से परिचित हो रहे है हम। कुसुम जी के 'ओम-क्रांती-क्रांती' में शैक्षिक भ्रष्टाचार का उत्तम उदाहरण मिल पाता है। कॉलेजों तथा विश्विविद्यालयों में शिक्षित के स्थान पर अशिक्षित ही नियमित होता है। धन की शक्ति से ऊँचे पद को प्राप्त करने के लिए वे प्रयत्न करते है जिसके फलस्वरूप भ्रष्टा व्यवस्था की स्थापन होती है। जान-पहचान तथा सिफारिश के बलबूते पर होनेवाली ऐसी नियुक्तियों के पीछे धन की ऐयाशी ही है। 'सुमन और सना' में अफसरों की मनमानी शरणार्थियों के लिए बडी तकलीफ देती है। सरकार तथा अन्य संस्थाओं द्वारा शरणार्थियों को भेजनेवाले मदद, अफसरों की लालच हडपती है। शरणार्थी शिबिर की अवस्था को आँखों देखी पहचानने के लिए आये लोगों से वहाँ के लोग कूद पडते है।

> "यूसुफ : किधर है सामान मेडम? सुनते तो हम भी बहुत है कि सामान आया है सामान आया है। मगर हम तक तो नहीं पहुँचा।
>
> * * * *
>
> औरत : बारह हज़ार लोग रहते है इस कैंप में जिन्मे कम से कम छः हज़ार औरतें है जिन्हें हर महीने माहवारी होती है तो कौन सा कपडा लगाती है उन दिनों यही गंदे हाट-फाट...। बहुत सामान आया है, लेनेवाली कम पड गये है।"[37]

[37] सुमन और सना- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.49

विषलिप्त मानव मन बुराई से बुराई की ओर छलांग लगाकर जाते है जिसके कारण आम जीवन तकलीफ में जूझने की नियति लेकर ज़िन्दा है।

3.2.1.7 भारतीय सेना का अंतर्द्वन्द

भारत जैसे विकासोन्मुख राष्ट्र के गौरव को शिखर तक पहुँचाने में भारतीय सेना की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारतीय फौज अपने कर्तव्य पर अटल अडिग रहकर भारत के यश को विश्व में फैलाने के लिए अपनी सारी खुशियों को इस्तीफा लेते है। ‘आपरेशन क्लाउड बर्स्ट’ नादिरा ज़हीर बब्बर का नाटक है जो भारतीय सेना की गरिमा को खींचने में सक्षम निकला है। भारतीय फौज अपने कर्तव्य पर अटल-अडिग रहकर भारत के यश को विश्व में फैलाने के लिए अपनी सारी खुशियों की इसीफा लेते है। ‘अप्परेशन क्लाउडबर्स्ट’ भारतीय सेना की गरिमा का दस्तावेज है साथ ही सैनिकों का अंतरद्वन्द भी नाटक में स्पष्ट है। अपने पवित्र रिश्तों का बलिदान करके दिल की इच्छाओं को त्याग करके वे भारत के लिए कर्मरत है। उल्फावालों पर आक्रमण के लिए तैयार गेयकवाड और उनकी सैनिकों की चिंताएँ और मानसिक उल्लझन नाटक की मूल में है।

उनके दिल में भी माँ का प्यार पाने की उमंग, परिवार के साथ रहने की अथाह चाह है। कैं. कंग-

> “माँओं का दिल भी कमाल का होता है। कितना भी उनसे लड लो झगड लो। फिर भी दूसरे दिन पूछती है। बेटा रोटी खाली।...और रोने से मेरी माँ का कोई जवाब नहीं...छुट्ठी में घर जाता हुँ तो रोती है छुट्टी से वापस आता हुँ तो रोती है। फोन करता हुँ तो रोती है। फोन नहीं करता तो रोती है।”[38]

---

[38] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.28

भिन्न संस्कार, भाषा तथा क्षेत्र के आदमियों का एक मिलावट ही सेना में होती है। फिर भी एक साथ रहकर अपनी ईमानदारी और कर्तव्यपरायणता से भारत को संरक्षित करने में वे एक रह जाते है। अपने मुल्क की गरिमा भारतीय सेना का धरोहर है। राठी जैसे बदचलन सैनिक सेना का बदनाम है तो भी में गेयकवाड और बाकी सैनिकों के माध्यम से सेना का जोश नाटक में उभारा है। आम आदमियों के मन में सेना के प्रति आदर उपजाने में ऐसे प्रसंग उपकारी है। नाटक के एक पात्र मोरोमी के पूर्वज्ञान को बदलकर उसमें भारतीय सेना के प्रति श्रद्धा भाव जगने में भी वे काबिल हुए है।

3.2.1.8 आतंकवाद

आतंकवाद एक विश्वव्यापी घटना है जिसकी जडें आरूढ है। यह विश्वव्यापी घटना है जो आम तौर पर राज्य के खिलाफ कम तीव्रता वाले युद्ध रुप में परिभाषित किया जाता है। आतंकवाद की व्यापकता पर सोचे तो यह पूरे विश्व में एक वृक्ष जैसे फैला है। कश्मीर, असाम आदि राज्यों पर इसका असर कुछ ज्यादा दीख पडते है। इसका असर विस्तृत रुप से होता है और आम जनता पर ही इनका दूषित फल होता है। नादिरा ज़हीर बब्बर के 'सुमन और सना' में कश्मीर के आतंकवाद से पीडित लोगों की दयनीयता का स्पष्ट एहसास है। यह देश की समरसत्ता पर बडा असर डालता है। कश्मीर जैसे राज्यों में धर्म पर आधारित आतंकवाद ज्यादा फैली है। इसके फलस्वरुप अनेक आदमी बेघर हुए और बेआसरा रह गये। कितने बच्चे माँ खोते है। आतंकवाद एक ऐसा मिशन है जो अपने लक्ष्य पर इतना अँधा हुआ है कि 'इनसानियत' नाम के चीज़ को खो बैठे है। नाटक में अमीना का मानसिक दबाव-एक माँ के दर्द की पराकाष्ठा है।

अमीना-“कहते थे कि तेरे बेटे को जाहाद के लिए ले जा रहे है। क्या एक माँ की गोद उजाड देने का नाम जेहाद है? जेहाद का मतलब होता है मजलूस के हक के लिए लडना...यह जेहाद नहीं...”[39]

जेहाद के परिणाम स्वरूप ही भारत में कुछ समय पहले आतंकवादियों के हमले ज्यादा हुई थी। डॉ. दूदा कश्मीर के आतंकवाद का एक और शिकार है जो अपनी पत्नी को खो बैठती है। भारत जैसे एकता और अखंडता में रहनेवाले देश की एकता को नष्ट करने की कोशिश उनका लक्ष्य रह जाता है। नाटक में मु. अली का बेटा आतंकवादी बन जाता है और हरिकौल से मुहम्मद अली की दोस्ती में दरार लाने की कोशिश भी करता है।

नादिरा जी ‘आपरेशन क्लाउड बर्स्ट’ में असम के उल्फा आतंकवाद पर केंन्द्रित समस्यायें है। असम के आतंकवाद युनाईटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम (ULFA) है। इसकी स्थापना 1971 में हुई है जिनके प्रमुख लक्ष्य है समाजवादी सरकार की स्थापना तथा असम को स्वतंत्र पद प्राप्त होना। प्रस्तुत नाटक में ‘आतंकवाद के पनपने के लिए समाज में पोषक तत्व ज्यादा है’ इसी तत्व को उभारा है। आतंकवाद पनपने के कारणों पर भी नाटक इशारा करते है। नाटक में कंग-

> “वो तो होगा ही, उनकी स्टेट में आके हम यहाँ बढते हुए आतंकवाद को दबाने की कोशिश कर रहे है। और हम सब जानते है कि किसी भी प्रदेश का आतंकवाद वहाँ की जनता के सपोर्ट के बिना नहीं पनपता। So obviously वहाँ का तो चच्चा-चाप्प हमारा दुश्मन और उनका informer है।”[40]

---

[39] सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.24

[40] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.16

असम के आतंकवाद का दमन भारतीय सेना के लिए मुश्किल काम है क्योंकि वहाँ के लोग ऐसे आतंकवादियों को राज्य के संतुलन केलिए ज़रूरी मानते है। उनकी राय में सरकार के कुकृत्यों से आम जनता को बचाने वाले ये उल्फा वाले आतंकवादी न रहकर उनकेलिए उपकारी है। नाटक में मोरोमी कहती है-

> "तुम जिन्हे आतंकवादी बोलते हो उन्हें हम क्रांतिकारी कहते है... अगर दो पल के लिए भी तुम्हारे सीने में आसामीज़ दिल आ जाए और फिर जब तुम ले बातें सुनो कि आसाम की जनता पर क्या-क्या जुल्म हुए..। तो तुम्हारा भी कलेजा फट जायेगा।"[41]

इसी से आतंकवाद पनपने और स्थापित होने के कारण नादिरा जी स्पष्ट किया है। संस्कार की ओर से आतंकवाद का रोकधाम सरकार की निगरानी में ही संभव है। आतंकवाद रूपी दौधारी तलवार के सामने जीना काल के मुँह पर जीने के समान है। मानव के दिल में प्यार जगाने का संदेश ही इसके विरुद्ध सक्रिय मानी है। मेधा शक्ति और हृदयतत्व की समरसता का अभाव ही आतंकवाद जैसे विनाशक तत्वों के प्रेरणा तत्व है।

3.2.1.9 पूर्वोत्तिर राज्यों की समस्यायें

पूर्वोत्तिर राज्यों की समस्यायें नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक 'आपरेशन क्लाउड बर्स्ट' में प्रमुख विषय रही हैं। आतंकवाद की समस्याओं में कश्मीर के अलावा पर्वोत्तर राज्यों के नाम भी प्रमुख है। भारत का एक हिस्सा जो पूर्वोत्तर भारत के नाम से जाना जाता है जो स्वतंत्रता के बाद किसी-न-किसी कारण से सदा

---

[41] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.48

अशांत है। यहाँ तो केन्द्र सरकार से तथा, भारत के अन्य क्षेत्रों से आये लोगों के विरुद्ध सदा संघर्ष कायम रहता है। तनाव के मुद्दे कभी भाषा के नाम पर है तो, कभी क्षेत्रीय स्वायंत्तता पर या कभी बंगलादेश से आये शरणार्थियों के नाम पर है। पूर्वोत्तर भारत का असम सबसे अस्थिर राज्य है। यहाँ के मामलों में पुलिस का हस्तक्षेप होता है लेकिन मामला बहुत जटिल होता जाता है। बदलते सरकारों की नीतियाँ उनके द्वारा असह्य बन गया है। पूर्वोत्तर राज्यों की ओर भारतीय सेना का दमन उनके प्रतिशोध में बदलने लगे और आतंकवादियों द्वारा भारत से पूर्वोत्तर राज्यों की मुक्ति चाहते है। नादिरा ज़हीर बब्बर के 'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' नाटक के द्वारा असम जैसी पूर्वोत्तर राज्यों की यथार्थ हाल प्रकाश में आता है। नाटक में मोरोमी आतंकवादियों के पक्ष में है क्योंकि वे अपने राज्य को सरकी नीति दिलाने की कोशिश में है। जैसे मोरोमी-

> "इंडिया में किसी को मालूम भी है कि नार्थ ईस्ट में कितनी स्टेट पडती है। असाम और मेघालय, शिलौंड और इंम्फाल कहाँ है? कौन किसकी राजधानी है? आज़ादी के बाद किसी गवर्नमेंट ने इस तरफ ध्यान ही नहीं दिया। देखा भी नहीं है। इसलिए हमें हिन्दुस्तान से आज़ादी चाहिए।"[42]

भारत जैसे विकासोन्मुख देश का भविष्य ऐसी स्पर्धाओं में डूब जाने की गुंजाइश विद्यमान है। लेकिन सरकार द्वारा असम की जनता पर उचित निगरानी न की जाती है। मोरोमी की राय में आसाम के लोग तो सदियों से गरीब और शोषित रह रहे है।

---

[42] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.44

"मोरोमी :... तुम लोग आसाम में अपने मतलब के लिए आये हो। ये तो जग जाहिर उसी तरह जैसे अमेरिका इराक में घुस गया उसका भी दावाथा कि वो इराक में आतंकवाद को ख़त्म करने गया था। रासायनिक और जैविक हथियार ढूँढने गया था। तो क्या हुआ मिल गये हथियार चल गया अमेरिका वापस। नहीं नहीं वही पर डटा हुआ है।"[43]

ऐसे राज्यों की ओर सबका ध्यान आकर्षिता करने में नादिरा जी का सशक्त हस्ताक्षेप है। प्रस्तुत नाट्य रचना असम के मामले की गंभीरता यहाँ बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है।

3.2.1.10 शरणार्थियों की समस्या

सांप्रदायिक दंगे, आतंकवाद या किसी प्राकृतिक विक्षोभ हो शरणार्थी बनना बहुत तकलीफ की बात है। शरणार्थियों की समस्या एवं उनके जीवन में उत्पन्न करुणा एक दर्दनाक सच्चाई है। "कैसा होता है पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने जमाये घर-आंगन की उष्ण-आत्मीयता से अकस्मात, दिन-को-दिन के अंदर हमेशा-हमेशा के लिए उखडकर बूढे-बाप, बीमार-पत्नी, अबोध बच्चों सहित अकस्मात, बियाबान में निरुद्देश्य एक बिस्तर दो गठरियाँ लादकर चल पडना। अख़बार में जो तस्वीर छपती है, जिसके परिचय में लिखा होता है 'शरणार्थी या विस्थापित' यह क्या कभी उस भयानक ट्रेजेड़ी का एक अंश भी बता पाती है, जो इनके जीवन में घटती है।"[44]

---

[43] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.43

[44] युद्ध यात्रायें, ग्रंथावली-७, पृ.290

एक व्यक्ति के लिए शरणार्थी बना ज़िन्दा-रहने पर अवज्ञा पाने के जैसा है। व्यक्तियों का अस्तित्व खतरे में डालने वाली ऐसी अवस्था से शरणार्थी जूझती है। जमी-जमायी घर-गृहस्थी और बन्धुओं को छोडकर एक अलग जगह विस्थापित होने की ट्रेजेडी एकदम भयावह है। नादिरा जी के 'सुमन और सना' में कश्मीर के आतंकवाद तथा गुजरात के सांप्रदायिक दंगों में घर-परिवार नष्ट हुए कुछ निरीह व्यक्तियों की ज़िन्दगी का ज़िक्र है जो शरणार्थी शिबिर में नरकसमान जीवन बिता रहे है। अफसरों की उपेक्षा भरी नीति से ऊबे हुए वर्ग रह जाते है वे।

> "राजेश... और ये शरणार्थी : शरणार्थी क्या होता है। अपने ही देश में हम शरणार्थी हो गये? एक तो घर से बेघर हो गये। ऊपर से तुम लोग कुत्तो की तरह दुत्कारो।"[45]

अपने ही मातृभूमि में दूसरा नागरिक बने हुए ऐसे लोगों की मनोदशा चिंताजनक है। नाटक में सब अपने आर्त मनोदिशा से बहुत दयनीय दीख पडते है। ऐसी अवस्था से भला वे देशत्याग ही चाहते है। जैसे-

"शाहिद : तुम समझते नहीं हो यूसुफ भाई बात छोटे-मोटे टेंशन की नहीं है। बात इज्जत से जीने की है। बात हमारी खुद्दारी की है। लेकिन बस अब बहुत हो चुका। अब मैं नहीं रहूँगा इस मुल्क में। ये मुल्क हमारी काम के नौजवानों को बरबाद कर रहा है।"[46]

---

45 सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.27

46 सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.57

शरणार्थी बनने से व्यक्ति अपनी अस्मिता खो बैठती है जिसके कारण सब कहीं उपेक्षा भरी नीति ही उसे मिलती है। और ऐसी एक अवस्था में वह जीना भी नहीं चाहता है। ऐसी एक समस्या आज के संदर्भ में ज्यादा समीचीन ठहरती है।

3.2.2 आर्थिक समस्यायें

स्वातंत्र्योत्तर भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यान्वयन से आर्थिक स्थिति सुधरी थी। लेकिन अनैतिकता, असामाजिकता, अराजकताओं ने आम आदमी को ऐसी हितावह योजनाओं से वंचित कर दिया और वर्ग भेद ओर भी स्पष्ट हुआ। आर्थिक संकट भारतीय जन जीवन को ग्रसित हुआ है। ऐसी समस्याओं का असर आम आदमियों पर ही ज्यादातर पडा है जो समाज के निचले स्तर पर जीते है। बेरोज़गारी बढने लगी। आर्थिक विपन्नता के कारण समाज के नैतिक मूल्यों पर भी स्पष्ट असर पडा है। इसका सजीव चित्रण कुसुम कुमार तथा नादिरा ज़हीर बब्बर तोनों ने अपने नाटकों के ज़रिए प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। तमाम आर्थिक संकटों के बीच पिसते हुए आम आदमी के दर्द को इनके नाटक उभारते है।

3.2.2.1 अर्थाभाव

आम आदमी के लिए पैसे का अभाव एक ऐसी अवस्था है जिसमें उनका जीवन यापन कठोर संघर्ष में परिणत होता है। अर्थाभाव व्यक्ति के मानसिक संतुलन को भी बिगाड सकते है। व्यक्ति अपनी परिस्थिति के प्रतिकूल तैरने केलिए विवश होता है। कुसुम कुमार के 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में माधसिंह अर्थाभाव की चरम सीमा पहुँचता है। पेंशन के मामले की देरी, पैसे की तंगी आदि से माधोसिंह का जीवन नरकतुल्य बना जाता है। पैसे के अभाव में जीवन का रौनक तो कहीं खो

जाता है। कुसुम कुमार के 'रावणलीला' में कलाकारों की आर्थिक विपन्नता स्पष्ट रूप से चित्रति है। रावण की भूमिका में कर्तार सिंह आर्थिक पराधीनता का स्पष्ट उदाहरण है। वह वेतन बढाने की माँग संचालकों के सामने निरंतर रखते है लेकिन अंत में मंच पर असली रावणलीला दिखाकर अपनी मज़दूरी बढाने में विजयी होता है।

"हा हाँ मैं हुँ रावण
शूर बहादूर, दिलेर बलवान,
तेजस्वी हुक्मरान?
मेरा नाम का यश
मेरी गदा की उस
जानता ज़मीनो आसमान
मेरा सच सिर्फ मेरे दाम, मेरे दाम!
साल में पाँच दिन मिलता है मुझे बस
यह पार्ट टाईम काम, काम, काम"[47]

आम आदमियों के लिए पैसा एक अनमोल चीज़ है जिसका अभाव उनकी बुनियादी ज़रूरतों को भी सफल करने में नाकामयाबी देती है। कुसुम जी का 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में नायक पवन अर्थाभाव के कारण एक मासूस चेहरे के पृथ्वी पर जन्म होने के पहले कुचलने को चाहता है। पत्नी सुषमा से वह अपनी आर्थिक विवशता खुलकर बताता है और दूसरे बच्चे का गर्भच्छेद करने को कहता है। अर्थाभाव एक व्यक्ति की चाहतों को भी कुचलकर फेंकते है।

---

[47] रावणलीला - कुसुम कुमार, पृ.104

नादिरा ज़हीर बब्बर के सकुंबाई, दयाशंकर की डायरी आदि नाटकों में भी अर्थाभाव का दर्दनाक हालत मिलता है। 'सकुंबाई' में सकु का परिवार पैसे की तंगी के कारण ही बंबई जैसे महानगर में काम के लिए आता है और घरेलू नौकर के रूप में जीवन बिताता है। एक व्यक्ति की नियति में उसकी कष्टता भी लिखी हुई है जिसके कारण दयाशंकर जीवनपर्यंत एक मामूली क्लर्क बनकर रह जाता है। दयाशंकर अर्थाभाव के कारण अपने को समाज में निकृष्ट मानते है और ऊँचे पद पर रहते की महत्वाकांक्षा भी रखता है। साहब की बेटी से उनकी शादी इसलिए न होती है कि वह गरीब है।

> "दयाशंकर : क्या मज़ाक है? सिर्फ इस वजह से कि कोई अमीर है? बहुत बडा इंडस्ट्रिललिस्ट है। तो हर अच्छी चीज़ उसे मिलेगी?"[48]

ऐसे हम मानते है कि अर्थाभाव के कारण मानव अपने अस्तित्व तक को गिरवी रखकर जीता है। इसी कारण से कभी-कभी मानवीयता का अभाव समाज में देख सकते है। इस प्रकार कुसुम कुमार और नादिरा बब्बर दोनों अर्थाभाव से उत्पन्न विभिन्न समस्याओं को अपने नाटकों के माध्यम में उजागर किया है।

3.2.2.2 महंगाई

महंगाई वर्तमान समाज की एक खतरनाक समस्या है। महंगाई मात्र एक समस्या नहीं है अपितु अनेक समस्याओं की जड है। महंगाई के कारण दैनिक उपयोग की वस्तुओं के दाम इतने बढ गये है कि आम आदमी की शक्ति उन्हीं को जुटाने में

---

[48] दयाशंकर की डायरी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.43

लगी रहती है। जीवन में बुनियादी ज़रूरतों तक की अप्राप्ती आदमी को जीवनयापन की मुश्किल की ओर थकेलती है।

> “महंगाई से पिसता और भौतिक लालसाओं की पूर्ती से जूझता व्यक्ति अंदर ही अंदर टूट रहा है। बढती अस्मिता की पीडा को झेल रहा है।”[49]

कुसुम कुमार के ‘दिल्ली ऊँचा सुनती है’ नाटक में माधोसिंह महंगाई के कारण दिल्ली जैसे महानगर से गाँव की ओर पलायन करता है। माधोसिंह जैसे एक मध्यवर्गीय आदमी के लिए दिल्ली जैसा नगर बहुत तकलीफ देती है क्योंकि वह सेवा निवृत्त है तथा वहाँ जीने के लिए ज्यादा पैसे की ज़रूरत है। महंगाई आम आदमी के जीवन को कष्टपूर्ण बना देती है। इस बात पर पती-पत्नी दोनों बहुत परेशान है। माधेसिंह से पत्नी कहती है-

> “हालात कौन से अच्छे हो गये? हालात अच्छे होते तो किसे पडी थी शहर छोडकर यहाँ आने की? शहर छोडने की बडी हुए है ना तुम्हारें मन में..? पर जब शहर में थे, तब भी तो तुम खुश नहीं थी? चौबीसों घंटे पैसे की तंगी...आठों पहर सिक्के की कमी शहर में और था क्या?”[50]

पैंशन का अभाव, और कोई धर्नाजन का उपाय न होना तथा अपनी दवाइयों का खर्च आदि माधोसिंह की बेटी नीति को आत्महत्या की ओर खींचती है।

कुसुम जी के ‘रावणलीला’ में रावण की भूमिका निभानेवाला कर्तारसिंह, पैसे की तंगी के कारण अभिनय का दाम बढाने की माँग करता है। उनकी राय में

---

49 वीरेन्द्र जैन के साहित्य में आधुनिक युगबोध - डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ.228

50 छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है - कुसुम कुमार, पृ.169

अभिनय की तारीफ मात्र में काम न चलेगा। अपने दैनिक जीवन बिताने के लिए पैसे की ज़रूरत है। वह महंगाई के बारे में यों बताता है-

> "डंडा चला है तो पाँच रुपये किलो का प्याज दो दिन में तीन रुपये किलो का प्यास दो दिन में तीन रूपये किलो दस रुपये किलो का चावल एक दिन में सात रूपये किलो।"[51]

गरीबों का यह कथन बहुत ही चिंतोद्दीपक है। हर हाल में ऐसी अवस्था का फल गरीबों पर ही पडता है।

इस प्रकार नादिरा ज़हीर बब्बर के 'सकुंबाई' नाटक में भी महंगाई की समस्या देखने को मिलता है। अमीरों की दुनिया में गरीबों की अभावग्रस्त जीवन का कोई अंत न होता है। अपनी बीमारी के शमन के लिए दवा खरीदने में भी वे कष्टता सहती है। अपने पति को एड्स की बीमारी से बचाने के लिए वह दवाइयाँ खरीदने के लिए बहुत तकलीफ सहती है। दवा की महंगाई के कारण सकु अपने को कोसती है। जैसे-

> "मैं तो कहती हुँ गरीब के बीमार होने से अच्छा है उसका मर जाना। कितनी-कितनी महंगी दवायें...सुइयाँ। डाक्टर की फीस, तपासी का खर्च...फिर फल-फ्रूट। ताकत की गोली। जूस...। रोज-रोज आना जाना। बस का किराया...। ऊपर से छुट्टी कहाँ से करेंगे बाबा।"[52]

---

[51] रावणलीला - कुसुम कुमार, पृ.85

[52] सकुबाई - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.57

वर्तमान समाज में पीडित मानव बहुत ज़्यादा है। अतः 'दयाशंकर की डायरी में' भी महंगाई की चर्चा मिलती है। उनके सारे नाटकों में महंगाई का ज़िक्र है जो यथार्थ के धरातल पर बुने है। बंबई के शहरों में रहनेवालों की तक्लीफें 'दयाशंकर की डायरी' में स्पष्टतः मिलती है। जैसे-

"दयाशंकर चार-पाँच हज़ार रुपये में बंबई में आजकल होता क्या है? कमरे का भाडा, खाने के पैसे, ट्रेन का पास, साबुन, तेल कभी-कभार दारू..."[53]

दैनिक जीवन को बिताने में आम आदमी की कष्टता का मूल कारण महंगाई है।

3.2.2.3 गरीबी

गरीबी एक ऐसा कलंक है जो मनुष्य को मनुष्य तथा मानवता से दूर कर देता है। स्वतंत्रता प्राप्ती के समय भारत की जितनी जनसंख्या थी, उतने लोग आज गरीबी रेखा के नीचे सपना जीवन व्यतीत कर रहे है। "गरीबी से तात्पर्य एक ऐसे अभावग्रस्त जीवन से है जो समाज के सामाजिक आर्थिक कुसमायोजन से उत्पन्न होता है, तथा जिसके फलस्वरुप व्यक्ति अपनी तथा अपने आश्रितों की अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ होता है।"[54]

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में माधोसिंह पेंशन के अभाव में छः महीने तक, पैसे की तंगी में जीता है। उसे गरीबी का जीवन जीना पडता है कि उसके घर का चूल्हा तक बंद हो जाता है। अपनी गरीबी से तंग माधोसिंह कहता है-

---

[53] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.20

[54] सामाजिक विघटन- डॉ. गोपाल कृष्ण अग्रवाल, पृ.287-288

"माधोसिंह- एक बार मरकर फिर से ज़िन्दा होना इतना आसान नहीं होता और फिर इस ज़माने में सिर्फ सांस देने का मतलब जिन्दा रहना थोडे है। पैसा चाहिए पैसा! पैसा आदमी को मारता है। पैसा जिलाता है।"[55]

'रावणलीला' में गरीबी का सच्चा रुप मिलता है। रावणलीला में कर्तार सिंह गरीबी से जूझता एक कलाकार है। इसलिए ही वह अपनी मज़दूरी बढाकर देने की माँग करती है। 'सकुबाई' में सकु अपनी गरीबी के कारण गाँव छोडती है और मुंबई आकर घरेलू नौकर का काम करती है। 'दयाशंकर की डायरी' में दयाशंकर क्लर्क की नौकरी से अतृप्त है। उनकी राय में मुंबई जैसे महानगरों में जीने को उनका वेतन अपर्याप्त है।

"दयाशंकर सब सोचते है कि भाई बंबई में काम करता है तो न जाने वहाँ से क्या लेकर आयेगा। किसी को क्या पता हम बंबई वालों पर क्या बीतती है। मैने बडी मुश्किल से बीस हज़ार रुपये कर्जा लिया।"[56]

गरीबी सामाजिक क्रूरता का एक ओर पहलू है।

3.2.2.4 अमीरों का खोखलापन

समाज एक ऐसा ढाँचा है जिसके अंतर्गत, चिर पुरातन काल से ही अमीर-गरीब का भेदभाव सुशक्ता रुप से कायम है। आर्थिक स्थिति की असमानता ही ऐसी स्थिती का उत्तर दायी है। अमीरों की ऐयाशी और मनमानी का तो इतिहास आँखों

---

[55] छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है - कुसुम कुमार, पृ.191

[56] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.35

देखी है। जिसका शेषभाग वर्तमान स्थिति को भी ग्रसित है। धन की अधिकता के कारण जो वर्ग अमीर कहलाते है उन्हीं की मनमानी की कोई सीमा न रह जाती है। 'सकुंबाई' में सकु द्वारा अमीरों का पोल खोलती है। अमीर खन्ने की पत्नी पार्टी में, मेमसाब का नेकलेस चोरी करती है। सकुंबाई द्वारा वह पकडी जाती है। उनकी राय में-

> "अरे बडे आदमी का वाइफ वैसा बडप्पन भी तो आना चाहिए और फिर अमीर होना बडप्पन की गारंडी भी नहीं।"[57]

धन का बाढ अमीरों को संस्कारहीन बनाते है। व्यक्ति की हैसियत अमीरी या गरीबी में न होकर उसकी नेकी और इनमानियत में है। सकुबाई मेमसाब के बेटे को दूध पिलाने को मुश्किल सहती है जैसे कोई तनतोड काम करने पर होती है। उस बच्चे के लिए दूध का कोई मूल्य नहीं है।

दयाशंकर की डायरी में एम.एल.ए साहब का घर और वातावरण दयाशंकर को एक महल जैसा प्रतीत होता है। वहाँ ड्राइंग रुम का फव्वारा देखकर दयाशंकर कहता है-

> "बडे लोगों की बडी बातें, हमारे यहाँ तो बाथरूम में भी पानी नहीं होता, इनके हाल में भी पानी चलता है।"[58]

---

[57] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.55

[58] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.39

‘जी जैसी आपकी अर्जी’ में वर्षा को जिग्नेश छेडता है तो वह उनकी मनमानी पर प्रतिशोध करती है। जिग्नेश जैसे अमीर अपने पैसे की बलबूते पर मनमानी करता है और संस्कार खो बैठता है। बडप्पन दिखाने में ही वे कामयाब रह रहे है वर्षा कहती है-

“किस चीज़ में माडर्न होते है ये लोग? विचारों से... ज़िन्दगी की जो बूनियादी चीज़ें है, मान्यताये है, उनमें? नहीं..सिर्फ कपडों में, सिगरेट में, शराब में, फ्री सेक्स में...”[59]

जिग्नेश जैसे अमीर लडकों की मन्मानी का शिकार बन जाती है वर्षा पोटे। उनकी मनमानी अमीरी से उपज है इसलिए ही दूसरों को दमन करनेवाली भी रह जाती है।

3.2.2.5 औद्योगीकरण

औद्योगीकरण संबंधी समस्यायें अपनी व्यापकता से अधिक प्रासंगिक है। इस प्रक्रिया ने सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों को व्यापक रुप से प्रभावित किया है। इसका दूषितफल सामाजिक तौर पर बहुत अधिक उभर आये है। मकानों की कभी आवास-व्यवस्था को बिगाडती है जिसका फल भोगना पडता है गरीब, निर्धन लोग। कुसुमकुमार के ‘दिल्ली ऊँचा सुनती है’ नाटक में ऐसा विषय उभरता है। माधोसिंह दिल्ली शहर में अपनी पत्नी के साथ था। लेकिन सेवानिवृत्ति के बाद वे वहाँ छोडकर आने को मज़बूर हो जाते हैं। वह कमला से कहता है-

---

[59] जो जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.24

"शहर छोडने की बडी हूक है ना तुम्हारे मन में ...? पर जब शहर में थे, तब भी तो तुम खुश नहीं थी? चौबीसों घंटे पैसे की तंगी... आठों पहर सिक्के की कमी शहर में और था क्या?"[60]

नादिरा ज़हीर बब्बर का 'सकुबाई' नाटक में भी प्रस्तुत विषय मिल पाता है। सकु और माँ बुंबई की ओर आती है और नानी के घर रहती है। मुंबई के उस घर का चित्रण इस कथन से स्पष्ट समझ सकते है-

"एक ही कमरा था। कमरे पर माला डाला हुआ था, माले पर बडे मामा की छोटी लडकी, मैं और मेरी आई, छोटे मामा, नितिन वगैरह सोते थे।"[61]

ऐसी एक तंग परिस्थिति में ही सकु का बलात्कार मामा द्धारा होता है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना पति से निष्कासित होने के कारण फुटपाथ में ज़िन्दगी करती है। क्योंकि उसके पास शहर में किराये पर रहने को पर्याप्त पैसा न था। 'दया शंकर की डायरी' में दयाशंकर और दोस्त एक ही कमरे में थे क्योंकि कमरे का भाडा ज्यादा था। दयाशंकर-

"लेकिन फिर भी मैं इसलिए जारहा था कि कुछ पैसे एडवांस मिल जाये। क्योंकि इस महीने बीस-इक्कीस तारीख को ही सारे पैसे खतम हो गए। चार-पाँच हज़ार रुपये में बंबई में आजकल क्या होता है?"[62]

---

[60] छः मंचनाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है- कुसुम कुमार, पृ.169

[61] सकुबाई - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.29, 30

[62] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.20

दया शंकर जैसे मामूली क्लर्क के लिए ऐसे शहर में जीना बडी कठिन होता है क्योंकि औद्योगीकरण आम आदमी के लिए बोझिल बन जाता है।

3.2.2.6 नौकरों का शोषण

शोषण व्यवस्था समाज में अति पुरातन काल से ही रूढमूल है। नौकरों का शोषण एक आम बात रह गयी है। पूँजीपती वर्ग चिरकाल से नौकरों का शोषण करता रहता है। नादिरा जी के 'सकुबाई' नाटक में सकु एक घरेलू नौकर है जो शोषित है। वह घर में काम के लिए रहती है वहाँ की मेमसाब घर का सारा काम उनके ऊपर छोडकर जाती है। इस पर उसका विरोध यों प्रकट करती है- सकु-

> "ये देखो ये लोग घर की ऐसी हालत करते जाते है जैसे कि कोई बम फट गया हो। और ये लोग जैसे बैठे थे, वैसे ही उठकर भाग गये। अरे बाबा अपना ही घर है न।"[63]

घर में नौकरानी होने के कारण सारे दायित्व से अपने को मुक्त समझ कर उनका शोषण करनेवाले समाज के वरेण्य वर्ग पर यहाँ करारा व्यंग्य है। यह एक सामाजिक सच्चाई है। ऐसे नौकरों का शोषण हमारी सामाजिक स्थिति में बहुत व्यापक रह गया है।

3.2.3 सामाजिक समस्यायें

समाज एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें समान, असमान तथा भिन्न तत्व पाये जाते है। कई इकाइयों तथा वर्गों में बाँटा गया समाज मानव के योग-क्षेम को बुनियादी तत्व मानता है। सामाजिक मूल्यों का बदलाव आधुनिक साहित्य के

---

[63] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.17

दृष्टिकोण में भी बदलाव लाया है। सामाजिक मान्यताओं की विसंगतियाँ समाज के हर चीज़ पर असर डाला है तथा उसके परख भी नये मापदंडों से किया जाता है। "दिखावे की होड में आज का व्यक्ति प्राकृतिक सुख-सुविधाओं के स्थान पर भौतिक उपलब्धियों से जीवन स्तर को नापता है।"[64] समकालीन ज़िन्दगी का प्रामाणिक दस्तावेज़ बनने के लिए नाटक बाध्य है। आलोच्य नाटककारों के नाटकों में समाज की इन स्थितियों को ऐसे ही अंकन करने की कोशिश हुई है। मानव जीवन की विसंगतियों और विद्रूप स्थितियाँ तथा सामाजिक कारगुज़ारियों को इनके नाटक प्रस्तुत करते है। तथा रुढ़ियों और परंपराओं में जकडे हुए समाज में परिवर्तन लाने की दिशा में भी कोशिश हुई है।

3.2.3.1 पारिवारिक विघटन

सांप्रतिक युग व्यक्ति चेतना की स्वतंत्रता से परिपूर्ण होने के कारण ही पारिवारिक मूल्यों में बिखराब देख सकते है। "समाज शास्त्र की दृष्टि में परिवारों में किसी भी प्रकार की अव्यवस्था ही पारिवारिक विघटन है।"[65] 'व्यक्ति' केन्द्रित समाज होने के कारण समाज की उस लघुतम सार्थक इकाई, अर्थहीन बन जाता है- तदफलस्वरुप उसका सामाजिक-पारिवारिक जीवन में टूटन ही मिलते है, शिवप्रसाद सिंह के अनुसार- "सच तो यह है कि भारतीय परिवार भी देश के सामान ही, एक अजीब कश्मकश, घुटन, अलगाव, दिशाहीनता, ईष्या, कलह और तू-तू मैं-मैं के दौर से गुज़र रहा है।"[66] एक सामाजिक संस्था के रुप में जहाँ परिवार संरक्षित था, वहाँ

---

[64] युगबोध और हिन्दी नाटक - डॉ. सरिता वशिष्ठ, पृ.225

[65] सामाजिक विघटन - डॉ. सत्येन्द्र त्रिपाठी, पृ.104

[66] आधुनिक परिवेश और नवलेखन - शिव प्रसाद सिंह, पृ.36

परिवार के परंपरावादी नींव हिल गया है। पारिवारिक विघटन व्यक्ति के टूटन को भी कारण रह जाता है। कुसुम कुमार का नाटक 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पारिवारिक विघटन का स्पष्ट रूप मिलता है। नाटक का नायक पवन अपने पिता से इसलिए अलग है कि वह ऊँचे पद पर थे तथा अपनी इच्छाओं को उस पर थोपने का प्रयास भी करता है।

> "डॉ. चतुर्वेदी : तुम गलतियाँ करने से कब बाज आओगे? कब नाव किनारे लगेगी तुम्हारी? कब कोई अच्छा फैसला ले सकोगे तुम भी?
>
> पवनः आपने कभी मुझे समझने की कोशिश नहीं की। मै सच कहता हुँ बाबू....आपने कभी मुझे समझने की कोशिश नहीं की।"[67]

चतुर्वेदी अपने बेटे की उन्नती को लक्ष्य करके, उसे सदा मशविर देते रहते है लेकिन पवन उससे ऊब जाता है। तदफलस्वरुप दोनों के बीच अलगाव खडा होता है।

3.2.3.2 दांपत्य का विघटन

भारतीय संस्कृति में विवाह एक महत्वपूर्ण संस्कार है। विवाह के द्वारा अलग परिस्थितियों के दो व्यक्तियाँ, पति-पत्नि के रूप में एक साथ जीने लगते है। पति-पत्नि के बीच का संबंध स्वस्थ तथा सुदृढ होने से ही, दांपत्य का वातावरण शांतपूर्ण होगा। लेकिन प्रायः ऐसी अवस्था है कि पति-पत्नि के बीच प्यार के बदले घृणा और

---

[67] पवन चतुर्वेदी की डायरी - कुसुम कुमार, पृ.225

विद्वेष का बोलबाला है। कुसुमकुमार के 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पवन और सुषमा शादी के पहले ही प्यार में थे, लेकिन शादी के बाद उनमें प्यार की कमी रह जाती है। दूसरे बच्चे का जन्म, अर्थिक पराधीनता तथा पवन का इला से संबंध आदि कई कारणों से दोनों में झगडा होती रहती है पवन और सुषमा हमेशा लडती रहती है।

"सुषमा : कमीने...कुत्ते...कसाई।

पवन : हाँ, हाँ मैं कसाई। तेरे साथ जो जियेगा, वह कसाई नहीं तो क्या मसीहा बनकर जियेगा?

सुषमा : मर क्यों नहीं जाता कमीने? तेरी मौत पर मैं घी के दिये जलाउँगी।"[68]

नादिरा ज़हीर बब्बर के जी जैसी आपकी मर्जी में पति-पत्नि का टूटन एक प्रमुख्र विषय है। नाटक में वर्षा के तथा, सुल्ताना, बबली टंडन के संदर्भों में दांपत्य का विघटन, हम देख्र पाते है। शोभा काकू की ज़िन्दगी पती की दूसरी शादी से बिगड जाती है और वह आत्महत्या भी करलेती है। सुल्ताना की शादी छोटे उम्र में होती है और पति का दमन सहती रहती है। पत्नी को निचला देख्रनेवाला अकील, लडकियों को जन्म देने के कारण सुल्ताना को हमेशा कोसता रहता है। उनके बीच पती-पत्नी के स्वच्छ रिश्ता की कमी थी। बबली टंठन भी पति के गैर संबंध से अपने परिवार को टूटा देख्रा पाती है। उनकी राय में हर हाल में पति को संरक्षित करना पत्नियों का दायित्व रह जाती है। बबली और अमनदीप के बीच का वैवाहिक

---

[68] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.50

संबंध में कृत्रिमता ही देखने को मिलती है। पति का नकला प्यार वह समझ पाती है। बबली पूछती है-

> "क्यों मर्दों को ये हक होता है कि वो सैकडों affair करें लेकिन फिर भी फरिश्ते जैसे बने रहे?"[69]

अनिता से अमनदीप का संबंध बबली जानती है तो वह टूट पडती है। फिर भी समाज के आगे पति-पत्नी का स्वस्थ रिश्ता कायम रखने को वह तैयार होती है।

3.2.3.3 विवाह एक तमाशा

पुरानी विचारधारा में विवाह धार्मिक एवं पुनीत जन्म-जन्मांतर का बंधन था तो आज वह केवल नारी पर होने वाला शोषण रह गया है। विवाह एक सामाजिक और सांस्कृतिक संतुलन को बरकरार रखती है। "नर-मादा का पारस्परिक आकर्षण सहज स्वाभाविक है ही, प्रबलतम भी है। मानव समाज ने इस भाव को संयमित और उदात्तीकरण करने के लिए विवाह संस्था की सृष्टी की है।"[70] लेकिन ऐसी स्पष्ट मान्यताओं से विवाह आज बहुत दूर निकल चुका है क्योंकि शादी संबंधी पवित्र धारणायें धूमिल हो चुकी है। आज के इस भूमंडलीकरण के युग में ऐसा होना आश्चर्य की बात नहीं है। कुसुम कुमार के 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पवन-सुषमा दंपतियों की रिश्ता वैवाहिक असफलता का स्पष्ट एहसास देते है। पवन अपनी प्रेमीका सुषमा को शादी करता है लेकिन जब आर्थिक विषमता तथा अन्य मानसिक क्लेश आता है तब उनका पारिवारिक जीवन बिगड जाता है। इस अवसर पर ऐसा

---

[69] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.40

[70] समसामायिक हिन्दी नाटक- बहु आयामी व्यक्तित्व- डॉ.सुन्दरलाल कथूरिया, पृ.73

लगता है कि विवाह एक तमाशा रह गया है। कुसुम जी का 'सुनो शेफाली' भी शादी की निस्सारता को प्रस्तुत करती है। शेफाली को विवाह लिए प्रेरित करने वाला सत्यमेव दीक्षित अपने बेटे के उज्ज्वल भविष्य के लिए नहीं बल्कि अपनी पदोन्नती के लिए कोशिश करता है। उनका लक्ष्य अच्छी तरह समझनेवाली शेफाली इस शादी से पीछे हटती है-शेफाली-

> "तू क्या उन्हें इतना भोला समझती है अम्मा? वह क्यों शादी करना चाहते है मुझसे-अभी..इसी..वक्त ..मैं खूब समझती हुँ.. बाप बेटा अपनी समाजसेवा की हथेली पर सरसों जमाना चाहते है...एक हरिजन लडकी का उद्धार किया उन्होंने- यही कह-कहकर अपने लिए ज़िन्दाबाद के नारे लगवायेंगे..और मैं? ...उनके विज्ञापन का एक वाक्य बनी..."[71]

लेखिका ने यहाँ विवाह संबंधी मान्यताओं को धिक्कारनेवाले मनोभावों पर करारा व्यंग्य किया है।

नादिरा ज़हीर बब्बर का 'जी जैसी आपकी मर्जी' में पुरानी शादी संबंधी मान्यताओं पर आक्रामक दिखाई देती है। उसकी शादी एक अपरिचित व्यक्ति से, वह चाहती भी नही है। बबली टंटन-

> "कैसा होता है। ना..एकदम ऐसा माहौल फिर एक दिन अचानक बिलकुल अन्ज़ान आदमी से शादी तय कर देते है। और उस आदमी को हक होता है कि वो हमारे साथ चाहे करे।"[72]

---

[71] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.38

[72] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.35

अपना सर्वस्व खोकर, त्यागकर जीने पर शादी नारी के लिए एक मज़बूरी बन जाती है। एक अन्जान जगह पर अन्जान व्यक्ति के साथ रहने की नियती में वह एक कठपुतली मात्र बन जाती है। इसी नाटक में सुल्ताना अपने पति के घर में पीडित-दमित ज़िन्दगी जीने लगती है। सास और पति के क्रूर दमन का शिकार होकर वह ज़िन्दगी काटती है। एक बात समझ सकते है कि विवाह संबंधी पुरानी मान्यताओं का ह्रास देखते है जो नारी को केवल अपने संकुचित दृष्टिकोण का शिकार मानता है। ऐसे अवसर पर विवाह बच्चों का खेल रह जाता है।

3.2.3.4 तलाक की समस्या

तलाक की समस्या वर्तमान संदर्भ में एक गंभीर विषय है। पति-पत्नि के बीच के मनमुटाव तो, पहले समझौता में बदलते थे कि आज तलाक एक भीषण समस्या बन रह गयी है। "तलाक विवाह का वैधानिक विच्छेद है और इसका परिणाम परिवार का अंतिम रूप से विघटन होता है।"[73] ऐसी स्थिति में नारी ज्यादा प्रताडित रहती है। मर्द अपना रुआब पत्नी पर डालने को सदा उद्यत रहते है। कुसुम कुमार के 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पवन अपना अधिकार पत्नी सुषमा पर थोपने की कोशिश करता है। उनकी इच्छाओं के अनुसार जीने के लिए सुषमा को बाध्य बनाता है। लेकिन सुषमा इसके लिए तैयार न होगी है और पवन से शादी का संबंध तोडती है। दोनों अपने रिश्ते की पवित्रता खो बैठते है।

---

[73] सामाजिक विघटन - डॉ. सत्येंन्द्र त्रिपाठी, पृ.231

“सुषमा : और तुम? तुमने जो यह बवाला मुझे दिया है, तुम बहुत समझदार हो। मैं आज अपनी नहीं तुम्हारे मन की करके रहूँगी। एबोर्शन...तो एबोर्शन सही।

पवन : मैं सिर्फ तुम्हें अपने पाँव पर खडा करना चाहता हुँ और तुम.. मुझे गालत समझती हो।”[74]

‘दिल्ली ऊँचा सुनती है’ में माधोसिंह की बेटी नीति पति से परित्यका होकर, अपने को माँ-बाप का बोझ समझती है। पिता का आर्थिक दबाव और अपनी नियति से ऊबकर वह मानसिक संघर्ष का शिकार रह जाती है।

नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में भी तलाक की समस्यायें भरी हैं। मर्द पत्नियों को कपडे बदलने की सहजता से बदलता है तो औरत अपने मन में प्यार के दिये जलाकर पति को पूजती रहती है। ‘जो जैसी आपकी मर्जी’ में शोभा काकू का पति यु. एस. में ओर एक स्त्री को अपनाता है और उसको साथ लेकर अपने देश लौटता है। यहाँ तलाक मिले बिना ही वह दूसरी शादी करता है। नाटक का एक ओर पात्र सुल्ताना पति द्वारा उपेक्षित होती है। एक लडका पैदा न कर सकने के कारण उसका पति एक ओर शादी करना चाहता है और उसे तलाक देता है। सुल्ताना की ये बातें पुरुषों की ऐसी मान्यताओं पर प्रहार करती है-

> “सुल्ताना- ये क्या बात है? जब चाहा बस औरत को तीन बार तलाक बोला और घर से बाहर निकाल दिया, बस फिर क्या था, इधर-उधर झाडू कपडा बरतन करने लगी बस इसी तरह कभी आधे पेट खाके कभी भूखे सो जाते थे।”[75]

---

[74] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.49

[75] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.31

ऐसी विषम स्थिति में स्त्रीयों की मानसिक दशा ही कलुषित होती रहती है। तलाक जैसी कुटिल व्यवस्था का परिणाम सामाजिक असंतुलन ही है।

3.2.3.5 प्रेम विवाह की असफलता

पाश्चात्य जीवन का असर भारतीय समाज में बढता ज्यादा है ताकि प्रेम जैसी भावनाओं का मूल्य घटता जाता है। विवाह जैसे पवित्र सामाजिक संस्था को व्यक्ति केंद्रित बनाने का प्रयास ही प्रेम विवाह के संदर्भ में होती है। कालानुसार आये सामाजिक परिवर्तन विवाह संबंधी मान्यताओं में बदलाव उपस्थित किया है। शिक्षा का प्रचार-प्रसार पाश्चात्य संस्कार का आगमन आदि के कारण आये परिवर्तन विवाह संबंधी मान्यताओं पर भी क्रांती उपस्थित की है। जातीय, धार्मिक, आर्थिक परिस्थितियों के बावजूद व्यक्तियाँ एक दूसरे से मिलने को इच्छुक रह जाता है। लेकिन अधिकांशतः ऐसे विवाहों का परिणत फल उतना अच्छा न देख्र पडता है। वे जितनी तेज़ी से एक दूसरे की ओर आकर्षित होते है उसी तेज़ी से अलग भी होते है। 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में सुषमा ओर पवन शादी के पहले प्यार किये थे लेकिन शादी के बाद कई कारणों से उनकी ज़िन्दगी असफल बन जाती है। उनके तनाव का कारण आर्थिक रह जाता है। गर्भच्छेद संबंधी दोनों की विभिन्न मान्यतायें, उनके वैवाहिक जीवन पर गहरा असर डालता है।

"सुषमा : नीच! कमीने! भेडिये! मुझे बस यही रिश्ता है तुम्हारा? ख्रून की एक बूँद तक नहीं मुझमें और मुझे ले चले हो उस कसाई ख्राने? मैं अच्छी तरह जानती हूँ तुम मुझसे घुटकारा पाना चाहते हो...मुझे इसी तरह ख्रत्म करना चाहते हो.. लेकिन मैं इतनी आसानी से तुम्हें सुख्र की नींद नही सोने दूँगी।"[76]

---

[76] पवन चतुर्वेदी की डायरी - कुसुम कुमार, पृ.49

दोनों के बीच का मन मुटाव उनके वैवाहिक संबंध को सत्यानाश कर देता है।

3.2.3.6 प्रेम का बदलता स्वरूप

सामाजिक परिवर्तन में मानव के मनोव्यापारों में भी परिवर्तन देख सकते है। प्रेम केवल प्रेम रह जाता है, शादी के लिए नही। प्रेम एक निश्चित लक्ष्य के लिए मात्र रह जाता है। प्रेम जैसे पवित्र मनोविकार का मूल्य खो बैढता है। 'सुनो शेफाली' ऐसे मूल्यरिक्त प्रेम का एहसास दिलाता है। प्रस्तुत नाटक में बकूल शेफाली से प्यार इसलिए करती है कि पिता का राजनीतिक भविष्य हरा-भरा रहे। घिनौने राजनीति का हस्तक्षेप बकूल-शेफाली के प्यार संबंध को बिगाडता है। यहाँ बकूल का प्रेम खोखला रह जाता है और शेफाली अपनी प्रेमी की कपटता को पहचान भी लेती है। टूटे दिल से शेफाली बिलखती है-

> "कौन लडकी नहीं चाहेगी दो साल तक सोते जागते सिर्फ एक ही सपना देखने के बाद वह उस सपने को अपनी ज़िन्दगी की हकीकत न बना ले?..तकलीफ तब और भी ज्यादा होती है जब पता चले कि यह हकीकत मेरे प्रेमी के वेश में कोई फैशनपुल मतलबी लोकसेवक है जो घात लगाकर मुझे कहाँ से कहाँ ले आया।"[77]

मतलबी प्रेमी अलग होने पर शेफाली दूर जाती है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में जिग्नेश वर्षा से प्यार करता है जिसके पीछे शारीरिक शोषण ही लक्ष्य था। उसको वर्षा से कोई commitment नहीं। जिगनेश के लक्ष्य को वर्षा पहचानती है और वह

[77] सुनो शेफाली - कुसुम कुमार, पृ.39

उससे मुक्त होना भी चाहती है। जब भी वह जिग्नेश से शादी की बात करती है तब वह कहता है-

> "ए वर्षा। also wanted to talk to you, क्या है कि अभी तमेरा ने मेरा क्या है मैं मेरे family का only son तो family business भी मुझे संभालना है ना, फिर मेरे मम्मी पापा ने भी मुझे कह दिया कि community के बाहर शादी नहीं करने का, तो मैं अपने मम्मी पापा के Against तो नहीं जा सकता था।"[78]

प्रेम का परिवर्तित स्वरुप सामाजिक मानसिकता में भी परिवर्तन लाया है। प्रेम ऐसा एक व्यापार बन बैठा है जहाँ प्यार नामक चीज़ का एहसास तक नहीं है। प्रेमियों का लक्ष्य केवल भौतिक सुख-सुविधाओं की तुष्टी रह जाता है।

3.2.3.7 पीढियों का संघर्ष

सामाजिक मूल्यों की नवीनता के परिणत फलों में एक है पीढियों का संघर्ष। पुरानी और नई पीढी में इतना अंतर आया है कि एक दूसरे को समझना और निकट पहचानना उनके लिए असंभव रह जाते है। पीढियों का संघर्ष वास्तव में आदर्शों का संघर्ष है। हर एक अपने आदर्शों में अटल-अचल रहने पर आपसी स्पर्धा उपजती है। व्यक्ति स्वातंत्र्य की सीमाओं के बावजूद, सामाजिक व्यवस्था में आदर्शों की समरसता अत्यंत ज़रूरी है। लेकिन ऐसी समरसता के अभाव में वे आपस में लडते-झगडते है। 'पवन चुतर्वेदी की डायरी' में पवन और डॉ. चतुर्वेदी आपसी लडाई के कारण अलग होते जाते है। पवन अपने पिता डॉ. चतुर्वेदी के आदर्शों को बरदाश्त

---

[78] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.24

नहीं करते है। पिता के मशविरों पर चलना उसके लिए तकलीफ की बात है। वह अपने पिता की प्रतिष्ठा को अवज्ञा से देखता है-

“पवन : आप मुझे यह याद दिलाने आये है कि मैं डॉ. चतुर्वेदी का बेटा हुँ। पद्मभूषण डॉ. चतुर्वेदी का बेटा जिसके तौर तरीके, रहन-सहन, चाल-ढाल में सिर्फ अपने पिता की प्रतिष्ठा झलकनी चाहिए। बेटे की परिस्थितियाँ कुछ मायने नहीं रखती।”[79]

नयी पीढी का स्थायी भाव विद्रोह बन गया है। वे किसी से सहमत नही होना चाहता है। युव पीढी का प्रतिशोध, कभी-कभी अपनी परिस्थितियों को जीतने में उपकारी रह जाता है। अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उढाने की उनकी कोशिश संदर्भोचित भी दीख पडती है। ‘ओम क्रांती-क्रांती’ में महिला कालेज के अयोग्य-अकर्याक्षम अध्यापिका के विरुद्ध-छात्राओं का विद्रोह समीचीन लगता है। अनु, थैलमा, मेनका द्वारा प्रिंसिपल से दानी के विरुद्ध शिकालन भी चलती है। अपनी असंतुष्टि मिसिस दानी पर प्रकट करने को वे हिचकती नहीं है।

“मेनका : आप हर प्रश्न इसी तरह स्थगित करके हमें टाल देंगी तो इस क्लास का आखिर क्या होगा?”[80] ऐसी छात्रायें, उस विद्यालय में सकारात्मक क्रांति लाने में सफल भी हो पाते है।

‘सकुबाई’ तथा ‘जी जैसी आपकी मर्जी’ में भी नयी पीढियों का प्रतिशोध देख सकते है। ‘सकुबाई’ में सकु की बेटी अपनी माँ से विद्रोह प्रकट करती है। उनकी राय में माँ कब तक कष्टता से जूझकर जिये आगे ऐसा नहीं होना चाहिए है।

---

79 पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.10

80 ओम क्रांती क्रांती -कुसुम कुमार, पृ.22

माँ को बेटी उपदेश देती है कि माँ आगे से किसी के सामने सर नहीं झुकाना। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना की बेटी सबीहा माँ से अनुरोध करती है कि वह माँ की तरह कष्टता झेलने को तैयार नहीं है। अपनी राय वह खुल्लम-खुल्लम व्यक्त करती है-

> "सबीहा : मैं किसी अनपढ से शादी नहीं करूँगी, मैं मार नहीं खाऊँगी, मेरे शौहर मेरे काम करने पर एतराज़ नही होना चाहिए। ससुराल वालों को और शौहर को, शादी के पहले ही जाकर डॉक्टर से ये भी समझ लेना चाहिए कि औरत को लडका होगा या लडकी ये मर्द की वजह से तय होता है ना कि औरत की वजह से।"[81]

पीढियों का संघर्ष समय के अनुरुप बन बैठता है। नयी पीढियों के बदलते स्वरुप एक ओर हानिकारक है तो दूसरी और उपकारी भी सिध्द होते है।

3.2.3.8 आत्महत्या

आत्महत्या या आत्माहुति एक व्यापक समस्या है। आदमी अपनी परिस्थिति से सहमत न होने पर ही जीवन का अंत करता है। एक बढती सामाजिक समस्या के तौर पर आत्महत्या बदल गयी है। "आत्महत्या किसी भी ऐसी मृत्यु को कह सकते है, जो किसी व्यक्ति द्वारा स्वयं सकारात्मक या नकारात्मक क्रिया का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम हो, जिसके परिणाम से पहले से ही परिचित है।"[82] आत्महत्या

---

[81] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.41

[82] Emile Durkheim, Suicide, Trans, by N.A Spaul adind and G Simpon, The free press, Glencoe, Illinois, 1951, p.44 उद्धृत उपन्यासों का समाज शास्त्र-डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्त।

व्यक्ति की परिस्थिति से संबंद्ध है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में माधोसिंह की बेटी नीति परित्यक्ता है। घर की गरीबी तथा अपने मानसिक दबाव नीति को आत्महत्या की ओर ले जाती है और वह आत्महत्या करती है। अपने आप को माँ-बाप के लिए एक बोझ न बनना वह चाहती है। इसलिए वह मौत को चुन लेती है।

नादिरा जी के 'सकुबाई' में सकु की बहन वासंती प्यार पाने के लिए किसी के साथ भाग जाती है और अंत में कामाटिपुरा में एक बुरी नौकरी की ओर फिसलती भी है। ज़िन्दगी में भटकी गयी वासंती अंत में आत्महत्या कर लेती है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में शोभा काकू अपने पति की दूसरी शादी से मन हारकर आत्महत्या कर लेती है। वह अपने पति के लिए इतज़ार की थी लेकिन उनकी उपेक्षा भरी नीति से वह हार जाती है और अपने को अंत करने का निश्चय कर लेती है।

> "काकू...काकू...काकू ने अपने दोनों हाथों की नसों को ब्लेड से काटकर आत्महत्या कर ली थी।"[83]

यहाँ शोभा काकू अपने पति की अलगाव से टूटकर खुद को समाप्त करती है।

3.2.3.9 स्वत्व का ह्रास तथा वैयक्तिक असफलता

व्यक्ति का सामाजिक संतुलन चेतन-अवचेतन मन की समरसता से प्राप्त है। और यही उसे कल्पनाजन्य ज़िन्दगी से दूर यथार्थता के धरातल पर लाती है। लेकिन जब ऐसी अवस्था पर न पहुँचने पर निराश व्यक्तित्व जीवन को अंधकार से भरा हुआ पाता है और असफलता पर शरण लेते है। "व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं की पूर्ती करना चाहता है, किंतु उसमें इनको पूरी करने की क्षमता नहीं होती, तब तक वह

---

[83] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.23

दुःखद तथ्य को स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं होता फलतः कल्पना जगत में जाकर अपनी इच्छाओं की पूर्ती करता है। वास्तविक संसार जिसमें उसको रहना है और काम करना होता है, अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ती करने में समर्थ दिखाई नहीं देता।"[84] 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' नाटक का पवन अपनी असफलता से जूझकर ज़िन्दगी से थका हारा पाते है। एक फिल्म हीरो बनने की इच्छा की असफलता उसकी पूरी ज़िन्दगी को असफलता में परिणत होने की दुरवस्था नाटक में देख पाते है। एक सफल व्यक्ति का बेटा होकर पवन का असफल बन जाना, परिस्थिति और व्यक्ति के बीच के संबंध की ओर इशारा करता है। "पवन का परिवेश कुछ ऐसा है जिसमें वह जीता तो है पर खुलकर साँस नहीं ले पाता। किसी को अपना दुःख परेशानियाँ बता नही सकता। एक घुटन भरी ज़िन्दगी वह जीता है इसलिए मानसिक परेशानियों से ग्रस्त है।"[85] हर कहीं असफलता ही उनके लिए थी। और वही असफलता नाटक भर पवन को सताती है।

> "पवन : वक्त की केंचुल कभी अपने लिये भी बदलेगी। बाबू! हमने तो जो चाहा वह कभी नहीं पाया।"[86]

कामयाबी की ओर कोशिश का अभाव भी पवन की असफलता को गतिशील बनाता है। अपने द्वारा रखे गये कदमों से पीछे मुडने की विमुखता व्यक्ति के अहं का परिचायक है। पवन अपनी परिस्थितियों से आगे निकलने के लिए मन लगाकर कोशिश करता भी नहीं फलतः बार-बार धोखा खाने को विवश हो जाता है।

---

[84] शिक्षा मनोविज्ञान और मापन - डॉ. नाथूराम शर्मा, पृ.367

[85] कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य- दीपा कुचेकर, पृ.75

[86] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.11

नादिरा जी के ‘दयाशंकर की डायरी’ में दयाशंकर में भी पवन की जैसी विवशता देख्र पाते है। दयाशंकर भी पवन के समान एक फिल्मस्टार बनने की इच्छा में विफल तथा अपनी बाकी परिस्थितियों से समझौता न पा सकता है। घर की आर्थिक विपन्नता दयाशंकर के लिए बाधायें उपस्थित करती है। महत्वाकांक्षा के कारण ही दयाशंकर की ज़िन्दगी बरबाद हो जाती है। अपनी अवस्था से ज्यादा, ज़िन्दगी की उन्नति के सपनों से समझौता पाने के कारण दयाशंकर ज़िन्दगी में पिछडा रह जाता है। पवन-

> “मेरी जेब में सौ रुपये नहीं तो क्या मैं सपने नहीं देख्र सकता? सपने देख्रना भी क्या इन लोगों की बपौती है? अगर मैं चाहूँ तो अपना प्रमोशन यूँ करवा सकता है।”[87]

दयाशंकर और पवन असफलता के प्रतिरूप बनकर अपने व्यक्तित्व को ख्रोते दीख्र पडते है।

3.2.3.10 पलायनवादिता

व्यक्ति अपने लक्ष्य को सफल न पाने से ज़िन्दगी में आगे कोशिश करने को विमुख्रता दिख्राता है जो उसको पलायनवादी बनाता है। कामयाबी के पहले नाकामयाबी को वे स्वीकारने को तैयार न हो जाते है। ‘पवन चतुर्वेदी की डायरी’ में पवन अपनी परिस्थितियों से आगे निकलने के लिए मन लगाकर कोशिश करता भी नहीं है। अपने पराजय उसे पिता से भी जलन दिख्राने को मज़बूर करता है।

---

[87] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.35

"पवन- आपका बेटा हुँ-यही सबसे बडा गुनाह है मेरा। मुझसे हर असाधारण चीज़ की आशा की जाती है... यहाँ हर कोई अपने से प्यार करता है...और जो बडा है, उसे तो बस अपने बडप्पन का बरकरार रखना है...जैसे आप!... आपका बडप्पन मुझे कुछ दे नहीं सकता तो, मुझसे कोई आशा क्यों करता है? मैं जैसा हुँ जिस हाल में हुँ, अच्छा हुँ।"[88]

उनके मनमुटाव नीतियों ने ही उसे ज़िन्दगी में पीछे की और थकेली है। सुषमा से दूसरे बच्चे का जन्म से पहले ही गर्भच्छेद कराने का उपदेश, मेहता द्वारा अपनी सारी पूँजि शेयर मार्कट में डालकर पैसा कमाने का लालच, पवन की वास्तविकता से मुँह मोडने की तत्परता दिखाती है। नाटक में पवन के वाचनालय की ह्रास स्थिति, उसके जीवन की जर्जरता का परिचायक है जो उनकी पलायन वादिता का स्पष्ट एहसास देता है।

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में माधोसिंह की बेटी नीति और खुद माधोसिंह अपने तमाम मजबूरियों से समझौता कर लेता है। नीति परित्यक्ता है और परिवार की कठिनाइयों में वह बोझ न बन जाए यही सोचकर ज़िन्दगी से हार मानकर आत्महत्या कर लेती है। इसी नाटक में माधोसिंह पेंशन न मिलने से तथा बेटी की आत्महत्या से परेशान हो जाता है।

"माधोसिंह : (रोते हुए) मुझे किसी चीज़ की आस नहीं अब.. नीति बेटी मेरे होते चल बसी भगना...कौन आय बची है अब मेरे लिए?"[89]

---

[88] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.10

[89] छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है- कुसुम कुमार, पृ.211

लेकिन अपनी पत्नी की ज़िन्दगी को अंधेरे में डालकर माधोसिंह मर जाते है। वह भी अपनी ज़िन्दगी में पलायनवादी बन बैठता है और आत्माहुती कर लेता है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में शोभा काकू अपने पति के गैर संबंध और दूसरी शादी से हताश होकर मृत्यु को स्वीकार कर लेते है। अपने सामने की सच्चाई से समझौता कराने की असमर्थता उसे भी पलायनवादी ठहराती है। व्यक्ति अपनी असफलताओं से भागकर कहीं छिपने की कोशिश करती है जिसका परिणाम उनकी मृत्यु या मानसिक असंतुलन से होता है। व्यक्ति के चेतन और अवचेतन मन की समरसता की माँग पर ज्यादा ज़ोर देते है।

'दयाशंकर की डायरी' में दयाशंकर अपनी महत्वाकांक्षाओं की असफलता से अपने को थका-हारा महसूस करता है। एक कल्पनाशील आदमी के नाते फिल्म और नाटक का भी दयाशंकर में स्पष्ट प्रभाव है। एक अभिनेता होने में असफलता-समाज में ऊँचे पद प्राप्त होने की इच्छा का पराजय, एम.एल.ए साहब की बेटी सानिया को पाने की नाकामयाबी दयाशंकर को ज़िन्दगी में परास्त करती है जो उसे कल्पनाशील जगत में जीने की प्रेरणा देती है। सच्चाई का सामना करने में पराजित दयाशंकार चेतना को खोकर पूर्णतः पागल हो जाता है। नेपाल राजा के रूप में उनका स्व-अवरोध उसकी मानसिक तृप्ति का कारण बन जाता है।

दयाशकर : "मुझे राजा के रूप में देख ले तो फौरन दो सैंकेंड के अंतर अपनी बेटी सानिया की शादी मुझसे कर दें।"[90]

---

[90] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.43

उनके लिए एक मामूली क्लर्क बनने से ज्यादा 'नेपाल का राजा' समीचीन लगता है। ज़िन्दगी की हकीकत से समझौता करने के लिए असामान्य मानसिक संतुलन ज़रूरी है, वह दयाशंकर में बिल्कुल नहीं था।

3.2.3.11 मानसिक असंतुलन

एक व्यक्ति का मन अपनी परिस्थितियों का उपज होता है। व्यक्ति अगर मानसिक तौर पर स्वस्थ न हो तो, हम कह सकते है कि उनकी बीमारी मानसिक तौर पर है। वह असामान्य व्यवहार का रह जाता है जो उसे एक सामाजिक व्यवस्था में न रहते लायक बनाता है। "वे व्यक्ति जो समाज स्वीकृत परिभाषा के अनुरूप सामान्य की श्रेणी में नहीं आते, मानसिक रूप से विघटित व्यक्तियों की श्रेणी में आते है।"[91] एक व्यक्ति के आर्थिक-सामाजिक परिस्थितियों की विषमता ही उसकी मानसिक बीमारी का कारण रह जाती है। 'दयाशंकर की डायरी' में दयाशंकर अपनी ज़िन्दगी में हर तरीके से हार जाता है। उनका अर्थाभाव, कार्यालयीन वातावरण, प्रेम की असफलता आदि दयाशंकर को पागल बना देती है। अपने आपको नेपाल का राजा मानता है और राजा के जैसे बर्ताव भी करता है।

दयाशंकर- "फटी हुई बडशीट गाऊन की तरह पहनता है और कुर्सी के ऊपर खडे होकर आज मैने ये राजसी कपडे खुद बनाए।"[92]

अंत में वह पागलों की तरह होश खो बैठता है। पागलों के अस्पताल में उसे भर्ती कराते है। जब वह अपना होश संभालता है तब अपनी माँ पर शरण लेने की इच्छा

---

[91] उपन्यासों का समाज शास्त्र- डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्त, पृ.194

[92] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.48

उसे होती है। अपनी कमज़ोर परिस्थितियाँ, दयाशंकर के मानसिक असंतुलन के कारण रह जाते है।

3.2.4 धार्मिक/सांस्कृतिक समस्यायें

प्रशासन, गैर सरकारी संगठनाओं के प्रयासों के फलस्वरुप धार्मिक रुढियों, अंधविश्वासों और कुप्रथाओं को एक हदतक रोकधाम किये है। लेकिन कुछ धर्म के ठेकेदारों द्वारा भोले-भाले लोगों को बहकाने के फलस्वरुप समय-समय पर देश में सांप्रदायिक दंगे-फसाद होते रहते है। रामजन्मभूमि और बाबरी मस्जिद को लेकर चल रहा विवाद सांप्रदायिक तनाव की ज़िन्दा दृष्टांत है। जहाँ धार्मिक रुढियों, अंधविश्वासों को लेकर स्वातंत्र्योत्तर भारतीय परिवेश प्रगतिशील हुआ है, वही कतिपय बुद्धिजीवियों के पास 'समझ के अभाव' के कारण समय-समय पर सांप्रदायिक तनावों से भी राष्ट्र गुज़र रहे है। कलाकारों की समस्याओं को भी गौर से देखने की ज़रुरत बन पडी है। वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कलाकारों का मूल्य घटता जा रहा है। जिसका फलस्वरुप समाज में उनका पतन हो रहा है। कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर अपने नाटकों के द्वारा धर्म और संस्कृति के प्रतिगामी तत्वों का निषेध करके क्रियाशील और जीवंत तत्वों का समर्थन करते है।

3.2.4.1 धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता

भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। भारत का संविधान अपनी इच्छानुसार धर्म चुनने का और उसी धर्म में विश्वास रखने की स्वतंत्रता देते है। लेकिन देश विभाजन और तद्जन्य समस्यायें सांप्रदायिकता के मूल में है। भारत और पाकिस्तान के विभाजन के समय हिन्दु-मुस्लिम आपस में लडे जिसका शेषभाग आज भी ज़ारी है।

अलीगड, मुरादाबाद, संभलपुर जैसे देशों में होनेवाले झगडे इसका स्पष्ट एहसास है। United State Commission on International Religious Freedom (USCIRF) द्वारा 2015 के रिपोर्ट में भारत में बढनेवाली धर्म परिवर्तन (घरवापसी), चर्चो पर होनेवाले हमले पर आशंका प्रकट करते है। इन सबके फलस्वरुप, जहाँ अनेक धर्म एक राष्ट्र की दुहाई पीटी जाती है वही धार्मिक वैमनस्य के कारण राष्ट्रीय एकता और अखंडता को खतरा पैदा होता है। धर्म का लक्ष्य एक स्वस्थ समाज का गठन करना है। वास्तव में -"पवित्र वस्तुओं से संबंधित विश्वासों और आचरणों की व्यवस्था को धर्म के नाम से अभिहित करता है।"[93] लेकिन आज मानव अपने जाति धर्म पर इतना अंधा हुआ है सांप्रदायिकता क विषैला रंग बिखेरने लगा है। अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राजकरो' की नीति के कारण जिस सांप्रदायिकता का बीजबपन भारत में हुआ उसकी जडे आज पूरे विश्व में इतनी गहरी हो गयी है कि उन्हें निर्मूल करना असंभव है।

> "ऐसा लगता है जैसे हर पौधे पर अविश्वास के ज़हरीले फल लगने लगे बहु संख्यक का अल्पसंख्यक पर अविश्वास, इस प्रदेश का उस प्रदेश पर अविश्वास, इस जाति का उस जाति पर अविश्वास, इस भाषा भाषी का उस भाषा भाषी पर अविश्वास।"[94]

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में सांप्रदायिकता एक ज्वलंत विषय रहा है।

---

93 Emile Durkheim, Elementary forms of the religious life free press, Glencoe, 1947, p.47 उद्धृत उपन्यासों का समाज शास्त्र-डॉ. विश्वंभर दयाल गुप्त।

94 शाब्दिता, धर्मवीर भारती, ग्रंथावली, पृ.84

'दयाशंकर की डायरी' में दयाशंकर के द्वारा पूछा जानेवाला सवाल आज की सांप्रदायिक कुटिलता के इस युग में बहुत समीचीन लगता है। क्योंकि धार्मिक मतांधता मानव के रहे-सहे अकल को भी सत्यानाश कर रहे है। इनके पीछे जाने के बदले अपनी ज़िन्दगी को संपन्न बनाने में ज्यादा तत्पर रहे तो अच्छा ही होगा-

"दया : अरे इनसे कोई ये पुछो कि मंदिर-मस्जिद के चलने या बन्द होने से क्या तुम्हारे घर में राशन आता है? लेकिन नहीं सब साले।"[95]

प्रस्तुत संदर्भ सांप्रदायिक माहौल में बहुत व्यंग्यात्मक उभरता है। 2002 में गुजरात के गोधरा में उग्र सांप्रदायिक दंगे फूट डाला। जिसमें अनेक बेघर, बेपरिवार और बेसहारा बन गये। नादिरा जी का सुमन और सना गुजरात के सांप्रदायिक दंगे के शिकार हुए शरणार्थियों और उसके दर्द दिल का दस्तावेज है। धर्म की पवित्रता को नष्ट कर उसकी आड में खलिस्तान बनाने पर ज़ोर देनेवाले धार्मिक ढेकेदार पूरी धार्मिक मान्यताओं को हवा में उडाये है। नाटक के काल्पनिक पात्र कृष्णा का कथन इस संदर्भ में सही उतरता है-

"ये तो पागल लोग है अपने स्वार्थ के लिए पाप करते है और कहते है कि धर्म की लडाई लड रहे है धर्म। बच्चों की मुस्कुराहट से बढकर कोई धर्म नहीं है।"[96]

धर्म के नाम पर झगडने वाले लोग तथा उसको प्रेरित करनेवाले धार्मिक नेता लोग दोनों भारत जैसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र को, धर्मांधता में डालकर सत्यानाश की ओर थकेलते है।

---

[95] दयाशंकर की डायरी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.29

[96] सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.60

3.2.4.2 धर्मांतरण

आज धर्म का स्वरुप अत्यंत विकृत होता जा रहा है। धर्म एक दूकानदारी बनकर रह गया है। इसके ठेकेदार जनता की भावनाओं का मनमाना शोषण कर रहे है। जो धर्म व्यक्ति की शांती और सुविधा के लिए निर्मित था, वह उसकी ही अशांती और असुविधा का माध्यम बन जाता है। जिसका एक मात्र कारण रह जाते है धार्मिक ठेकेदार। "धर्म मानव जीवन को नियमानुकूल चलानेवाला तत्व है। धर्म का अर्थ कल्याण है, परन्तु समय बीतने के साथ-साथ वह शोषण का हथियार बनकर रह गया है।"[97] कुसुम कुमार का 'लश्कर चौक' धार्मिक कठ्ठरता के कारण बरबाद हुए एक व्यक्ति का चित्र खींचता है। एक मुसलमान औरत को घर पर आश्रय देने के कारण, अपने धर्म से निष्कासित होने की नियती रामदास और परिवार को होती है। मामला विश्वास का नहीं बल्कि धार्मिक नेताओं की प्रतिष्ठा की रह जाती है। अपनी इच्छानुसार कायदे-कानून में परिवर्तन लानेवाले धार्मिक नेताओं के खिलौने बन जाते है आम आदमी। इसका उत्तम उदाहरण है रामदास का धर्मांतरण। नाटक यह भी दिखाता है कि धर्मांतरण मानसिक तौर पर एक व्यक्ति का धर्म बदलता नहीं।

"करीम : वही मातखाई है मैंने शर्माजी! वहीं....इस्लाम छू लेने मात्र से अब तक आत्मा कतई इस्लामिक नहीं हुई...मुसलमान हुआ ज़रूर हूँ पर इस हूक से छुटकारा नहीं पा सका कि मैं सच्चा मुसलमान नहीं हुँ...हिन्दु संस्कारों में रचा-बसा मेरा मन यह तसलीम करने से नहीं हिच-किचाता कि मैं और इस्लाम एकमेक नहीं हो सके।"[98]

---

97 हिन्दी नाटकों में समसामायिक परिवेश - डॉ.विपिन गुप्त, पृ.184

98 लश्कर चौक- कुसुम कुमार, पृ.54

दीपा कुचेकर के शब्दों में-

> “केवल धर्मांतरण करने से इंसान उस धर्म का नहीं होता। संस्कार शरीर पर नहीं आत्मा पर होते है। आत्मा पर किये गये संस्कार हम बदल नहीं सकते। अगर बदलने की कोशिश भी करते है तो कहीं न कही एक टीस, घृटन, द्वन्द्व, दुविधा छटपटाहट अपराध बोध के चक्रव्यूह में हम फँस जाते है।”[99]

सांप्रदायिकता देश की एकता तथा अखंडता को बिगाडने में सबसे आगे है। लश्कर चौक में रामदास का मामला एक प्रांत के सांप्रदायिक दंगे का कारण बन जाता है। दंगे शुरू होते है और हिन्दु-मुसलमान अपने-अपने धर्म के नाम पर लडते है। अंत में पाराबेगम की मौत भी दंगे की उपज के रूप में होती है।

3.2.4.3 जातीयता

जातीयता प्राचीन काल से भारत में रह रही है। उच्च जातियों का वर्चस्व पहले ही समाज में था लेकिन स्वतंत्र भारत में भी इसमें कमी नही हुई है। जाति व्यवस्था के कारण ही खान-पान, शादी विवाह, छुआछूत के नियम इतने कठोर है कि रुढीवादी समाज इन्हें छोड नहीं पाता। जाती का संबंध केवल गाँव तक सीमित नहीं है, प्रदेश और देश भी इससे आक्रांत है, मंत्री, अधिकारी और नेता जाती के लिए आज लड रहे हैं। जाति-व्यवस्था एक ऐसा पुराना किला है जो हमेशा सुरक्षा का भ्रम पैदा करता है। कुसुम कुमार के ‘सुनो शेफाली’ में शेफाली दलितों को दी जाने वाली रियायतों पर विद्रोह उठाती है और ऐसी रियायतों के उपभोक्ता बनने को कभी तैयार नहीं होती है। शेफाली-

---

[99] कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य- दीपा कुचेकर, पृ.82

"स्कूल में कभी किताबें बँटती है कभी मुफ्त ऊन मिलती, कभी वर्दी का कपडा...लेकिन हम तीनों बहने रियायत न लेती...हम क्यों कहें कि हम हरिजन है? यह जनहरि लडकियाँ क्या हमसे कोई ज्यादा है?...घर से टूटा हुआ पैन-पेंसिल ले आयेंगी और लिखते वक्त उल्टे हसी से माँगेगी...उस वक्त हमीं काम आयेंगे इनके...मुझे यह सोच सोचकर कुछ ज्यादा ही दुःख होता है।"[100]

लश्कर चौक में यह जातीयता शीर्षस्थ रूप से दिखाई देती है। लीला के घर आयी मेहरुन्नीसा से उसकी जाती पूछती है। एक तो वह अपनी जाति को मानती है तो दूसरी ओर अपने समाज की जाति-व्यवस्था का पालन करना भी चाहती है लीला-

"वे कहेंगे जाने कौन जात की पकड के लाए।"[101]

हर जाति अपने को श्रेष्ठ मानती है। मानवीयता से बढकर जातीयता ही समाज में व्यापक रूप में देख सकते है।

अस्पृश्यता, जातीयता जैसे अनाचार ने समाज के निचले स्तर में ही नही बल्कि भारतीय सेना में भी अपना कब्जा स्थापित किया है। परंपरावादी या अशिक्षित समाज के साथ-साथ सुशिक्षित और सुसंस्कृत वर्ग भी जातिवाद के जाल में फँसा हुआ है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी ऐसी चिंताओं का रहना मानसिक धुंधलका को सूचित करता है। नादिरा जी के 'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' में ले हसनेन के पिता सेना में तरक्की नहीं पाते है क्योंकि वह जाति से नीचा थे।

---

[100] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.23

[101] लश्कर चौक- कुसुम कुमार, पृ.16

"ले हसनेन : फिर ऐसे खयालात होने के बावजूद अगर आज ये मुल्क हमें यह एहसास कराए कि हमारा मजहब हमारे माथे पे एक बदनुमा दंग की तरह है तो फिर हम अपनी आनेवाली नस्तों को ऐसे पेशों में क्यों डाले। जहाँ वो तरक्की की सबसे ऊँची सीढी तक इसलिए नहीं पहुँच सकते क्योंकि उनका नाम हसनेन है।"[102]

'सुमन और सना' नाटक में जातियता के भटकाव के कारण लोग जाति बदलने को तैयार होते है। पटेल चाचा अपने जन्मभूमि जाने के लिए तत्पर है अतः जाति बदलने को भी तैयार है। यहाँ मानव के अतंर्मन को छूनेवाला संदर्भ ही देख पाते है। जातीयता भी एक त्रासद अवस्था है जिसमें आदमी अपनी अस्मिता को, कभी-कभार, खोने पडती है। ऐसी दुरवस्था में लोग अपने को अपमानित और बहिष्कृत पाते है।

3.2.4.4 धर्म के नाम पर राजनीति

समाज में पुराने समय से धर्म का सत्ता से अभेद्य संबंध रहा है। समाज के चतुर लोग आम आदमी का शोषण करते है और मसीहा बनकर रहते है। उनका रूप बदलता रहता है। वे कभी साधु के रूप में, कभी स्वयंसेवक बनते है, कभी राजनेता। सत्ता को अपने बचाव के लिए धार्मिक पाखंडों का आश्रय लेकर शोषण करने की सुविधा रहती है। 'सुमन और सना' नाटक में अमीना राजनीति से प्रेरित जेहाद की शिकार महिला है जो अपना जवान बेटा खो चुकी है।

---

[102] ऑपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.27

"अमीना- तब से आज आठ साल हो गये। उसकी कोई खबर नहीं, पता नहीं मेरा बेटा कहाँ होगा? तुम्हें इस बात की तसल्ली तो होगी कि तुम्हारा बेटा अब ईश्वर की पनाह में है, मुझे तो वो भी नहीं। मैं रोज उसके आने का इंतज़ार करती हुँ और उसके मरने का मातम भी...। कहते थे कि तेरे बेटे को जेहाद के लिए ले जा रहे है। क्या एक माँ की गोद उजाड देने का नाम जेहाद है?"[103]

धर्म अपनी कुटिल नीतियों के संचालन करने के लिए इन लोगों को अपना माध्यम बनाती है।

3.2.4.5 कलाकारों की समस्यायें

सहृदय को आनंदित करनेवाला कलाकार वास्तव में एक सेवा भाव का उत्तम उदाहरण है। क्योंकि मंच के आगे उनका कर्म मंच के पीछे की लीलाओं की अपेक्षा स्तरीय लगता है। कलाकार, अपने जीवन के बडे-बडे स्वप्न, आशा-आकांक्षा, मूल्य और आदर्श जीवन के यथार्थ के सामने चकना चूर होते देखपाता है। कलाकार की विवशता यह है कि वह मंच पर अपने परेशानियों को छिपाकर, अभिनय के लिए तैयार होना पडता है। कुसुम कुमार के 'रावणलीला' नाटक में रामलीला के प्रसंग में कलाकारों की चुनौतियों पर प्रकाश डाला है। यहाँ कलाकार अपने जीवन में कठिनाइयाँ झेलने को मज़बूर होते है। नाटक में करतार सिंह रावण का वेष करनेवाला प्रमुख कलाकार है लेकिन, उनकी राय में ऐसे होने से उसे ज़िन्दगी में कुछ लाभ नहीं मिला है।

---

103 सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.23, 24

"काशीराम : मगर यार रोटी-पानी का ठोस प्रबंध तो तेरे यहाँ भी है।

करतार : ठोस प्रबंध तो आपका है। अपना तो हाँ, कुछ कुछ प्रबंध ज़रूर है। सुबह शाम गंडेरियों की रेढी लगाने वाला में मेरा ठोस प्रबंध क्या है? आप बतायें, रामलीला में काम करने का शौक में भला मुफ्त में कैसे पा लूँ?"[104]

नाट्यमंडलियों की जर्जर अवस्था कलाकारों के जीवन पर भी गहरा असर डालती है। काशीराम तो अपने जीविकोपार्जन के लिए विवश होकर रामलीला का संचालन करता है। प्रस्तुत नाटक में काशीराम का कथन इसका उत्तम उदाहरण है-

"काशीराम- रामलीला समिति के पास अगर इतना धन होता तो यह बीस-बीस साल पुराने परदे न बदल लिये होते? और वह सारा फटी चार सामान दोबारा ना खरीद लिया जाता?"[105]

ऐसे कलाकारों की संख्या आज बढ रही है जो अपनी जीविकोपार्जन के लिए 'कला' की अपेक्षित करके, अन्य राह ढूँढने को लाचार हो जाता है। क्योंकि सिर्फ एक 'कलाकार' की हैसियत, उसे ज़िन्दगी में पहचान नहीं देती है।

3.2.4.6 झूठामूढा ज्योतिष

आज के ज़माने में ज्योतिष में अच्छा ज्ञान न होने के बावजूद भी लोगों को धोखा देनेवाले ज्योतिष अधिक है। अपने उदर-निर्वाह के लिए वे ऐसे करते है लेकिन लोगों को घोखा देते है। यह ज्योतिष का एक अक्षर भी नहीं जानते लेकिन

---

[104] रावणलीला- कुसुम कुमार, पृ.61

[105] रावणलीला- कुसुम कुमार, पृ.60

लोग उन पर अपने भविष्य की आस्था रखते है। 'सुनो शेफाली' में मनन आचार्च घाट पर रहनेवाला ज्योतिष है और उसी वृत्ति से जीविकोपार्जन करते है। वह खुद शेफाली से कहते है कि वह झूढ मूढ का ज्योतिष है। उनके कथन यों-

> मन्नन- "...मैं ज्योतिषी नही हुँ...रोज यहाँ भले कितने लोग आते हो...जिनके लिए मैं मन्नन आचार्य हुँ...पर मैंने आपसे कहा न! मैं वह नही हुँ...यमुना के इस घाट को मैं जहाँ तक हो सकता है...कुछ कायरों के इलाज के लिए इस्तेमाल करता हुँ!..."[106]

कई लोग ऐसे है जो झूठ-मूठ के ज्योतिष करके, लोगों का विश्वास में लेते है और धोखा देते भी है। सत्यमेव दीक्षित मन्नन आचार्य के पास अपने राजनीतिक भविष्य जानने के लिए आते है। मन्नन आचार्य का उचित रुप से फायदा भी उठाता है।

3.2.4.7 नशावृत्ति

मानव जाति गुण-अवगुणों का मूर्तरूप है। व्यक्ति में गुणों के साथ-साथ दोष भी छिपा हुआ है। इनमें नशा एक अत्यंत भीषण अवगुण माना जाता है। नशावृत्ति एक ऐसा भटका हुआ आग है कि तमाम सामाजिक व्यवस्था को जलाने की शक्ति उसमें है। आज समाज में शराब का उपयोग इतना बढा हुआ है कि नयी-पीढी इसका शिकार हो गई है। नशे के कारण व्यक्ति विवेक हीन होता है जिसके फलस्वरुप संपूर्ण समाज को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पडता है। 'संस्कार को नमस्कार' नाटक में संस्कार चंद आश्रम की लडकियों को जबरदस्ती

---

[106] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.27

शराब पिलाकर उनका शारीरिक शोषण करता है। शक्ति के मना करने पर संस्कार उससे कहता है-

"संस्कार : गिलास तो लाओ।
बस-बस अभी इतनी ही। तुम भी पियो हमारे साथ। दोनों साथ-साथ पियेंगे। यह ताकत की दवा है। इससे बहुत ताकत आती है।

शक्ति : इसमें बहुत ताकत है, लेकिन हम कमज़ोर नहीं है।

संस्कार: पहले जितनी ताकत है उससे दोगुनी आएगी। लाओ अपने लिए एक गिलास और लाओ।"[107]

संस्कार चंद नशे में मदमस्त होकर शक्ति पर अपना रुआब डालता है।

3.2.5 शैक्षिक समस्याएँ

शिक्षा का परम लक्ष्य ही सुयोग्य, शिक्षित नागरिक का निर्माण है। डॉ. विपिन गुप्त का शिक्षा संबंधी मत यों है-"समाज में शिक्षा की अनिवार्य भूमिका है। शिक्षा का संबंध धर्म, राजनीति, व्यक्ति, उद्योग, अर्थ आदि सभी से है। यही कारण है कि शिक्षा सामाजिक नियंत्रण की प्रमुख अभिव्यक्ति है।"[108] लेकिन ऐसी अनिवार्य भूमिका निभानेवाली शिक्षा आज ह्रासोन्मुख अवस्था में है। स्कूल केवल मोटे मुनाफे के लिए खोला जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने बच्चों को अच्छी सी अच्छी शिक्षा दिलवाना चाहता है लेकिन शैक्षिक क्षेत्र का भ्रष्टाचार और मनचलन

---

[107] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.47

[108] हिन्दी नाटकों में समसामयिक परिवेश- डॉ. विपिन गुप्त, पृ.119

योजनायें छात्रों के भविष्य से खेलती है। आलोच्य नाटककारों के नाटकों में शिक्षा संबंधी विभिन्न समस्याओं का सच्चा बयान मिलता है।

3.2.5.1 अध्यापकों की कर्तव्यहीनता

अध्यापक समाज को अंधकार से रोशनी में लाने के लिए कर्मरत थे। पुराने ज़माने में गुरु समाज में परम पूज्यनिय थे। कबीर की गुरु संबंधी मान्यतायें हम सबको मालूम है। वे गुरु और ईश्वर दोनों में गुरु को सबसे प्रमुख मानते है। क्योंकि गुरु ही ईश्वर को दिखानेवाला है। लेकिन आज के अध्यापक कर्तव्यहीनता का पर्याय रह गये है। कुसुम कुमार के 'ओम क्रांति-क्रांति' नाटक में वर्तमान अध्यापकों के ढोंग, पाखंड और अयोग्यता पर करारा व्यंग्य है। नाटक की मिसिस दानी, मिसिस मंगला ऐसे अध्यापकों की कोटि में आते है, जो डिग्रियाँ बहुत हासिल करती है लेकिन पढाना कुछ नहीं जानते। थैलमा के कथन से यह स्पष्ट होता है कि-

"थैलमा : मिसिस दानी, एम. ए, पी.एच.डी।

अनु : (छिडी हुई) छोडो यार वो पी.एच.डी कर ले चाहे पि.एच.डी का बाप, रहेगी तो वही जो वो है। पढाना एक शब्द आता नहीं। ना फर्स्ट इयर में पीछा छूटा था इसमें, ना अब सेकेंड इयर में उबरने देगी हमें।"[109]

पहले अध्यापक अपनी ईमानदारी, कर्तव्य बोध्य जैसे सत्गुणों की प्रतिमूर्तियाँ थीं, जिसका असर नव नागरिकों पर भी पडता है। अपने स्वत्व पर अनुचित का हावी

---

[109] ओम क्रांती क्रांती - कुसुम कुमार, पृ.10

होना वेईमानी की पराकाष्ठा था। लेकिन आज अध्यापक 'द्रोणाचार्य' बन जाते है जिसका उदाहरण है प्रस्तुत नाटक के अध्यापक।

3.2.5.2 आदर्श शिक्षक का कर्तव्य

भारतीय समाज में गुरु को सबसे प्रमुख स्थान देते है। उसे परमात्मा के समकक्ष माना गया है किंतु लेकिन आदर्श शिक्षक ही ऐसे पद का अधिकारी रह जाता है। अपने कर्तव्यों का पालन करनेवाला गुरु ही एक आदर्श शिक्षक की भूमिका में उचित स्थान पा सकते है। ऐसे अध्यापक विद्यार्थियों के हित का ख्याल रखते है तथा उनके मन में प्रतिष्ठा भी प्राप्त करते है। 'ओम क्रांती क्रांती' में मिसिस पंत ऐसी एक अध्यापिका है जो छात्रों के सर्वांगीण विकास पर ध्यान देनेवाली है। अपनी कक्षा की नयी पीढी की छात्राओं को वह ज्यादा प्यार से पढाती है। उसकी छात्राओं में एक है थैलमा जो कहती है-

> "थलमा बहुत बहुत प्यारी टीचर है मिसिस पंत!! पढाती है तो मेरा तो दिल बाहर को आता है!...हँसती है तो लगता है उनकी हँसी की नकल उतार लो...आँखों में चमक इतनी है...इतनी है उनके कि बस!...जी चाहता है, हम भी उस चमक की एक बूँद अपने अन्दर उतार लें।"[110]

शिक्षकों का कर्तव्य है कि वह अपने दायित्व को ईमानदारी से निभाए।

3.2.5.3 शिक्षा का व्यापार

शिक्षा के व्यावसायीकरण ने शिक्षा का और अध्यापकों के स्तर को गिरा दिया है। आज शिक्षा मात्र एक व्यापार बनकर रह गई है। 'ओम क्रांती क्रांती' नाटक में

---

[110] ओम क्रांती क्रांती - कुसुम कुमार, पृ.37

इसका स्पष्ट चित्र हम देखे सकते है- हिन्दी साहित्य में कबीर पर पी.एच.डी की उपाधी प्राप्त मिसिस दानी ये भी नहीं जानती कि कबीर अनपढ थे या नही। मिसिस दानी जैसी ऐसी अध्यापिकायें शिक्षा के औद्योगीकरण का उत्तम उदाहरण है। रिश्वत खोरी, सिफारिश जैसे अनैतिक तरीके से अयोग्य अध्यापक शिक्षा संस्थाओं मे नौकरी पाते है। जिसके कारण शिक्षा का स्तर गिर जाता है।

प्रिंसिपल और कालेज के अधिकारी वर्ग सब इसी का बोलबोला रह गये है। क्योंकि वे न्याय के पक्ष में न रहकर पैसे के पक्ष में ही रह जाते है। दिशाहिन भविष्य में युवापीढी के भटकने की ज़िम्मेदारी अध्यापक को है। धन ही अध्यापकों का परम लक्ष्य रह गया है। वे एक आराम की ज़िन्दगी की ओर तत्पर है, सादगी और नम्रता का अभाव उनमें ग्रसित है। इस नाटक में इसका उदाहरण मिलता है।

> “मिस थैलमा ने जो ये सोचकर कि यह एक ऐसा प्रफशन है जिसमे रहकर जिओं न जीने दो का मूड कुछ जबरदस्ती करता है।”[111]

इस तरह अध्यापन क्षेत्र में वाणिक वृत्ति ही आज मुखरित है।

3.2.5.4 अध्यापकों की अनुशासन हीनता

समाज में अध्यापक आदर्शवान होते है। क्योंकि वही अच्छे नागरिक का निर्माण करते है। ऐसी अवस्था में अध्यापक की अनुशासन हीनता पूरे भविष्य पर प्रभाव डालती है। कुसुम कुमार के नाटक ‘ओम क्रांति क्रांति’ में कक्षा में समय के मूल्य पर घोर-घोर भाषण देने वाली मिसिस दानी, कक्षा में बीस-तीस मिनट के बाद आती है। इस पर मीना व्यंग्य करती है-

---

[111] ओम क्रांती क्रांती - कुसुम कुमार, पृ.10

> "समय मत बरबाद कीजिए! समय अमूल्य है- अरे यह पूरी कक्षा गायब कहाँ है? तुम लोग कुल चार ही लडकियाँ हो यहाँ? अनुशासन हीनता की भी कोई हद होती है। मुझसे तो इसकी मिसाल तक देते नहीं बनता-तुम लोग चाहे तो तुम भी जा सकती हो..."[112]

कक्षा में आने को हिचकनेवाली अध्यापिका तत्काल कॉपियाँ लिखने का इतज़म करती है जो उनके निकम्मे पन का दृष्टांत है। ऐसे अनुशासनहीन अध्यापक भविष्य के लिए खतरा ही नहीं, भीषण परिस्थितियों का निर्माण भी करते है।

3.2.5.5 अशिक्षा

एक व्यक्ति के जीवन की अनमोल वस्तु है शिक्षा। ज़िन्दगी में एक व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण संपत्ती है उसकी शिक्षित अवस्था। अशिक्षा व्यक्ति को जीवन भर अंधकार में रखते है अशिक्षित अपने सामने के अवसरों को उपकारी न बना सकते है। 'सकुबाई' नाटक में शिक्षित न होने के कारण ही सकु तथा वासंती ज़िन्दगी में तकलीफ झेलती है। सकु एक हद तक जीत पाती है जिसका कारण सकु का आत्मविश्वास। वासंती अपनी परिस्थितियों से घेरकर आत्महत्या भी करती है। एक व्यक्ति के अस्तित्व का नियामक तत्व है शिक्षा जिसका अभाव उसकी सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रभाव डालता है। ऐसा एक पहचान सकु को मिलता है और सकु अपनी बेटी को अच्छी शिक्षा देती है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना में अपने समाज में गयी-बीती रह जाती है। लेकिन सुल्ताना अपनी

---

[112] ओम क्रांती क्रांती - कुसुम कुमार, पृ.15

बेटियों को अच्छी शिक्षा देता है और उसे ज़िन्दगी में उन्नती की ओर जाने का राह भी दिखता है। उनकी बडी बेटी सबीहा अपनी माँ से कहती भी है-

> "अम्मी तुम्हें तो तालीम की कद करनी चाहिए। अगर तुम पढी-लिखी होती तो क्यों ये दिन देखने पडते?"[113]

सुल्ताना की बेटी द्वारा प्रस्तुत यह कथन शिक्षा की महत्ता को अपने चरम सीमा पर पहुँचता है। शिक्षा का महत्व अनमोल है जिसे मानव अपने जीवन को सुदृढ बनाने में सशक्त मध्यम है।

3.2.5.6 शिक्षित बेरोज़गारी

बेरोज़गारी समाज की एक विकृत अवस्था है। इसमें ही, शिक्षितों की बेरोज़गारी आज के इस माहौल में सबसे बडी समस्या है, जिसकी संख्या कुल बेरोज़गारी से ज्यादा है। "ये शिक्षित बेरोज़गारी युवा पीढ़ी से संबंधित है। अतः इससे संबंधित युवा विक्षोभ की समस्या भी गंभीर रुप धारण करती है एवं कभी-कभी वह सामाजिक विस्फोट का कारण भी बन जाती है।"[114] 'सकुबाई' नाटक में शिक्षित बेकारी एक सामाजित सच्चाई के रुप में चित्रित है। टेलिशोपिंग के एजंड के रुप में एक लडकी मिस साहब के फ्लेट में आती है और सामान खरीदने की विनती करती है। सकु कहती है-

---

[113] जो जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.34

[114] आधुनिक भारत की सामाजिक समस्यायें- एच.एस. वर्डिया, पृ.89

"सकूबाई - पर ये तो पढी-लिखी होगी बारहवीं चौदहवीं...हम तो एकदम अनपढ़ है।...ए देवा SS क्या ज़माना आ गया है। पढे लिखे लोग भी घर-घर-घूमते है। और अनपढ भी।..चलो इस बात में तो हम लोग बराबर हुए।"[115]

शिक्षित लोगों की बेकारी एक सामाजिक विडंबना है और इसका उचित रूप से निवारण एक सामाजिक ज़रूरत भी है।

निष्कर्ष

इस प्रकार दोनों नाटककारों ने मानवीय जीवन और समाज, देशकाल की सभी समस्यायें, विसंगतियाँ अपने नाटकों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों की समस्याओं को अपने नाटकों में समेटने का प्रयास किया है। अपने परिवेश की सठीक प्रस्तुति नादिरा ज़हीर बब्बर और कुसुम कुमार के नाटकों की अपनी विशेषता है। राजनैतिक क्षेत्र की तमाम कुटिलताओं का इतना नंगा प्रस्तुतीकरण किया गया है कि वर्तमान सारी राजनैतिक परिस्थितियों का आँखों देखा हाल हमारे समुख्र उपस्थित है। कुसुम कुमार के 'सुनो शेफाली', 'संस्कार को नमस्कार', तथा नादिरा ज़हीर बब्बर के 'अप्परेशन क्लाउडबर्स्ट' तथा 'सुमन और सना' इसके दृष्टांत है। आर्थिक समस्याओं में पिसता आम आदमी की दयनीयता का एक प्रत्यक्ष मिसाल है इनके नाटक। अर्थ की महत्ता, समाज में असमानता की सृष्टि करती है जिसका परिणतफल आम आदमी ही भोगता है। दिल्ली ऊँचा सुनती है, रावणलीला,

---

[115] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.23

सकुबाई, पवन चतुर्वेदी की डायरी, दयाशंकर की डायरी आदि नाटकों में अर्थ की असमानता तथा आर्थिक दबाव में पिसते आदमियों का सच्चे चित्र खींचे है। बदलते समय के अनुसार सामाजिक गतिविधियों में भी बदलाव आया है जिसके कारण समाज में कलुषित वातावरण रह गया है। सामाजिक मूल्यों का अधःपतन, समाज के सभी स्तरों को गिरा दिया है। जिसके फलस्वरुप पति-पत्नि, बाँप-बेटे के रिश्तों में भी तनाव उपस्थित किया है। 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' नाटक सामाजिक गतिविधियों का सच्चा बयान करती है। हमारी धार्मिक मान्यताओं में वैयक्तिक स्वार्थता की घुसपैट ने सारी धार्मिक परिस्थितियों को कलुषित बना रखा है। जो धर्म मानवकल्याण के लिए सृजित है, उसी के द्वारा ही मानव आपस में लडते दिखाई देते है। 'लश्कर चौक', 'सुमन और सना' आदि नाटकों में धार्मिक मान्यताओं का गिरावट दीख पडता है। शिक्षा के क्षेत्र में, व्यावसायीकरण, भ्रष्टाचार आदि ने शिक्षा के पवित्र लक्ष्य का सत्यानाश कर दिया है। शिक्षा का क्षेत्र भी अब इतना गिर गया है कि अध्यापक भी अपना मूल्य खो चुके है। 'ओम क्रांती क्रांती' नाटक में अकार्यक्षम अध्यापकों की कर्तव्यशून्यता का स्पष्ट एहसास मिलता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में युगीन संवेदना भरा हुआ है। दोनों नाटककार ने अपने समय की सारी समस्याओं को यथार्थ रुप से अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है और अपने सामाजिक सरोकार का प्रमाण भी दिया है।

चौथा अध्याय

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में स्त्री-विमर्श

4.1 स्त्री विमर्शः आशय एवं परिप्रेक्ष्य

हिन्दी साहित्य जगत में स्त्री-विमर्श एक ऐसी चर्चित संकल्पना रही है जो नारी जीवन एवं अस्तित्व को लेकर कई प्रश्न खडी करती है। सदियों से अपने ज़मीन तलाशती स्त्री के अनंत विस्तार की चाहत स्त्री-विमर्श में समायी हुई है। 'स्त्री-विमर्श वह दौर है जब स्त्री-स्वतंत्रता, स्त्री-शक्ति की पहचान, स्त्री-की अपने स्वतंत्र अस्तित्व व व्यक्तित्व को पहचान, स्त्री की इच्छा आकांक्षा, स्त्री अधिकारों के प्रति चेतना तथा परंपरा पोषित अवधारणाओं पर उनके द्वारा खडे किये सवालों पर स्त्रीयाँ और साथ ही साथ पुरुष भी खूलकर चर्चा करते है। स्त्री-विमर्श की मुख्रर पहल करने वाले व्यक्तियों में से एक श्री राजेन्द्र यादव लिखते है कि- "कभी हमने कहा था कि सबसे पहले तो स्त्री को देह के स्तर पर मुक्त होना पडेगा, क्योंकि नैतिकता, संस्कृति, धर्म, देह सुचिता के सारे बंधन स्त्री देह को लेकर ही है। यहाँ इस बात में भी कोई अंतर्विरोध नहीं कि दुनिया के सारे परिवर्तन पहले विचार के स्तर पर ही घटित होते है। इसके बाद ही व्यवहार जगत तक आते है।"[1] बदले हुए समय ने कई भ्रमों और रुढ़ियों को दूर कर दिया है जिसका परिणाम यह हुआ कि पहले की अपेक्षा स्त्री-मुक्ति-चेतना-और स्त्री-पराधीनता संबंधी विचार न सिर्फ व्यापक हुए है बल्कि गहरे और जटिल भी गये है। ऐसा कह सकते है कि बदलते हुए समय एवं परिवेश के साथ-साथ जीवन और जीवन दृष्टि भी बदलती जा रही है, जहाँ 'स्त्री-विमर्श' एक स्वाभाविक परिणाम रह गया है। स्त्री-विमर्श की शाब्दिक संरचना में 'स्त्री' और 'विमर्श' दो शब्दों का मेल है। स्त्री शब्द नारी का पर्यायवाची शब्द है, जिसका अर्थ पौराणिक संदर्भों से अनुप्रणित है। 'स्त्री' शब्द का कोशगत अर्थ है-

---

1 समाधान माँगता स्त्री-विमर्श - राजेन्द्र यादव, हंस मासिका, नवंबर 2009, पृ.6

“औरत (शरीर रचना, स्वभाव आदि के कारण स्त्रियों के चार भेद है- पदिमनी, चित्राणी, शंखिनी, हस्तिनी) पत्नी, मादा पशु, सफेद चींटी, दीमक, एक वृत्त।”[2] ‘विमर्श’ का शाब्दिक अर्थ है विचार, विवेचन, आलोचन, परीक्षा, जांच। ‘विमर्श’ के लिए अंग्रेज़ी में Deliberation, Consultation आदि शब्द प्रयुक्त है। ‘विमर्श’ शब्द का कोशगत अर्थ है-“विवेचन, परीक्षण, समीक्षा, गुण-दोष की मीमांसा, परामर्श तर्क, ज्ञान चरमबिन्दु आदि।”[3] ‘स्त्री-विमर्श’ का शाब्दिक अर्थ होता है स्त्री से संबंधित विचार या विवेचन, परामर्श या चर्चा। स्त्री विमर्श अर्थात् स्त्री-जीवन से जुडे महत्वपूर्ण वस्तुओं की चर्चा, विचार विमर्श, विचार विनिमय के माध्यम से स्त्री के जीवन संघर्ष एवं अस्तित्व पर मंथन करना। “आज नारी अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए परंपरागत मूल्यों से लड रही है। वह धीरे-धीरे महसूस करने लगी है कि इन्सान के रुप में उसका भी निजी व्यक्तित्व है।”[4] इस प्रकार स्त्री विमर्श अपने व्यक्तित्व को महसूस करनेवाले आधी आबादी के अधिकारों, विचारों एवं सपनों का विमर्श है। नारी-विमर्श का बुनियादी आधार है- नारी की पहचान, नारी स्वतंत्रता अथवा मुक्ति अर्थात, नारी की पहचान को संबंधों से परे एक व्यक्ति की पहचान के रुप में स्थापित करना। “स्त्री-विमर्श एक नारी वादी सिद्धांत है जो स्त्री केन्द्रित ज्ञान में चर्चा करता है।”[5]

---

[2] बृहद कोश, ज्ञानमंडल लिमिटड, वाराणसी, पृ.1313

[3] बृहद कोश, ज्ञानमंडल लिमिटड, वाराणसी, पृ.1059

[4] राष्ट्रवाणी, सितंबर-अक्टूबर-2010, पृ.32

[5] स्त्री-विमर्श- विनय कुमार पाठक, पृ.21

आधुनिक संदर्भों में स्त्री-विमर्श का अर्थ है, वर्तमान निश्चित सामाजिक संदर्भों में स्त्री-जीवन के विषय के इर्द गिर्द होता-ऐसा विचार विनिमय कि उसके द्वारा कोई मान्यता-व्याख्या या तथ्य को भाषा के माध्यम से साहित्य में प्रतिबिंबित करना। वर्तमान स्त्री विमर्श से संबद्ध स्त्रीवादी लेखिका रमणिका गुप्ता का कहना है कि- "दरअसल हमारा मध्यवर्गीय समाज घोर वर्जनाओं, अंधविश्वासों और रुढियों का पोषक है खासकर स्त्रियों के प्रति वह बहुत ही कुंठित, रुढ और रहस्यवादी....स्त्री विमर्श में यथा स्थिति को तोडने के लिए खुलकर विमर्श हो रहा है तो उस में हर्ज ही क्या है? जितना खुलकर विमर्श होगा उतनी ही वर्जनायें टूटेंगी।"[6] सामान्य रुप से नवें दशक के लेखक और लेखिकाओं द्वारा 'स्त्री-विमर्श' शब्द का प्रयोग किया-गया जो स्त्री शाक्तीकरण के क्षेत्र में एक विशेष पदावली है। डॉ.नमिता सिंह का कहना है- हम जब स्त्री-विमर्श की बात करते है तो उसका अर्थ सामाजिक विकास की प्रक्रिया से जुडा होता है। किसी भी समाज के विकास का स्तर वहाँ नारी समाज की स्थिति से ही आंका जा सकता है।"[7] अतः कह सकते है कि नारी विमर्श से तात्पर्य नारी के बारे में सोच-विचार, समाज में उसकी स्थिति क्या है आदि नारी संबंधी विविध बातों पर चर्चा करना समाज में उसकी स्थिति क्या है, कैसी हो उसके बारे में सलाह-मशविरा करना ही नारी-विमर्श है।

नारी अपनी विषम सामाजिक स्थितियों में जकडी हुई थी कि पुरुष प्रधानता, रुढियों की कट्ठरता, शिक्षा का अभाव आदि के कारण वह अपना स्वत्व खो चुका था। अन्याय मूलक व्यवस्था के प्रचलित आदर्शों, मान्यताओं, विश्वासों तथा बंधनों

---

[6] संबोधन त्रैमासिक- डॉ. रमणिका गुप्ता, अक्तूबर-2004, पृ.171

[7] संबोधन त्रैमासिक- डॉ. नमिता सिंह, अक्तूहर-2005, पृ.156

से नारी को मुक्त करने का प्रयास हुआ था जिसका स्पष्ट प्रमाण है नारी मुक्ति आंदोलन। नारी मुक्ति आंदोलन की शुरुआत स्वाभाविक रूप से ही पश्चिम से ही शुरू हुई थी। पश्चिमी देशों में भी नारी की स्थिति प्राचीन काल से गौण और पुरुष प्रधान समाज-व्यवस्था से निर्मित अन्याय, अत्याचार, शोषण का शिकार थी। नारी स्थिति में सुधार हो, उसे मनुष्य के रूप में सम्मान, गौरव मिले इस हेतु से उन्नींसवी सदी में पश्चिमी देशों के कई नारीवादी बुद्धिजीवियों, समाज सुधारकों, महिला कार्यकताओं एवं समाज चिंतकों ने प्रयास शुरू किये थे। सर्वप्रथम सन, 1674 ई. में मार्गरेट ब्रिटेन ने मरीलांड विधान सभा में नारी के लिए मताधिकारी की माँग की। मेरी वालस्टोन क्राफ्ट ने सन् 1972 ई.में 'द व्हिंडिकेशन आफ राईट्स ऑफ विमेन' नामक पुस्तक लिखी थी। प्रस्तुत पुस्तक को प्रथम नारी वादी रचना तथा मेरी वालस्टोन क्रफ्ट को नारी मुक्ति आंदोलन की सूत्रधार कहा जाता है। उनके अनुसार स्त्रियाँ बौद्धिक स्तर पर पुरुषों के समान होती है। उन्होंने नारी के अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई थी तथा विपरीत परिस्थितियों में भी अदम्य साहस दिखाया था। कैरोलिन नार्टन, महिलाओं को पुरुष समान अधिकार की माँग को लेकर आंदोलन शुरू किया था। ब्रिटेन के प्रसिद्ध विचारक जान स्टूवर्ट मिल ने अपनी पुस्तक 'द सब्जेकशन ऑफ विमेन' में नारी विमर्श की चर्चा की थी। उन्होंने इंग्लैंड के हाउस ऑफ कॉमन्स में सन 1867 ई. में महिला मताधिकार के पक्ष में भाषण देकर नारी के लिए मताधिकार की माँग की थी। वह नारी शिक्षा पर विशेष बल देते है। फ्रांसीसी लेखिका सीमोन द बौउवार ने अपने पुस्तक द सेकेंड सेक्स में वह नारीपन से मुक्ति पाने के बारे में कहती है। उनके अनुसार स्त्री पैदा नही होती बनाई जाती है। लंडन में कार्यरत सेफ्रेजेट आंदोलन' से नारी संबंधी सोच-विचार में परिवर्तन शुरू हुआ

था। सन 1960 ई. के बाद ब्रिटेन के नारी मुक्ति आंदोलन की हिस्सा बनी शीला रॉबॉथम ने अपने अनुभवों को चित्रित किया है और नारी मुक्ति पर ज़ोर दिया है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पश्चिमी नारी मुक्ति आंदोलन एक सामाजिक आंदोलन है। इस आंदोलन में नारियों पर होनेवाले अन्याय, शोषण तथा अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ तथा एक स्वस्थ, नारी-स्वतंत्रता से भरे संसार की स्थापना भी प्रभुख्र लक्ष्य रहे है।

पश्चिमी नारी मुक्ति के आंदोलन से प्रभावित होकर भारतीय नारी मुक्ति आंदोलन ने अपनी राह ली। "सन् 1975 में स्त्री दशक की घोषणा होने के बाद भारतीय नारी के अपने एक विशेष नारी मुक्तिवाद का जन्म हुआ, नारी की स्थिति पर विशेष पर विशेष चिंतन की शुरूआत हुई। नारी मुक्ति आंदोलन ने अपने प्रति होनेवाले शोषण अन्याय और छल के विरुद्ध स्त्री को सजग करने के प्रयत्न किये है।"[8] लेकिन पश्चिमी नारी के जैसे भारतीय नारी ने पुरुष के विरुद्ध अपने अधिकार के लिए संघर्ष नहीं किया बल्कि पुरुष उसके सहयोगी तथा मार्गदशक रहे। स्वाधीनता संग्राम इसका स्पष्ट उदाहरण है। नवजागरण काल के दौरान स्त्री मुक्ति की दिशा में किये गये प्रयासों तथा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं के योगदान व उनके बलिदान के पुनस्वरूप जहाँ एक ओर हमारा देश विदेशी पराधीनता से मुक्त हुआ वही दूसरी ओर स्त्रीयों ने भी अपनी दासता की स्थिति को पहचानकार उसके ख़िलाफ आवाज़ उठाना शुरु कर दिया था। राष्ट्र और मानव समाज की प्रगति का नींव नारी मुक्ति पर है। इस संबंध में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी जी ने अंतर्राष्ट्रीय

---

[8] आधुनिक कथा साहित्य में नारी स्वरूप और प्रतिभा - सुभा चिटणीस

महिला वर्ष के संदेश में कहा था, "नारी स्वतंत्रता भारत के लिए विलासिता नहीं है। अपितु राष्ट्र की भौतिक, वैचारिक और आत्मिक संतुष्टि के लिए अनिवार्य बन गयी है।"[9] भारतीय स्त्री मुक्ति आंदोलन के इतिहास से यह पता चलता है कि 19 वीं सदि के बाद भारतीय स्त्रियों में अपनी उन्नती की प्रबल आकांक्षा पैदा हो गयी भी। सामाजिक मूल्यों के साथ उसमें व्यक्तिमूल्य और अपना अस्तित्व मूल्य उभरने लगा है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में नारी का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। श्रीमती सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में महिलाओं को मताधिकार की मांग कर (1917 ई) राजनीति में सक्रिय भाग लेने का प्रयत्न किया। ऐनी बसन्ट और सिस्टेर निवेदिता ने नारी शिक्षा के द्वारा जागृति लाने का बीडा उठाया। यह शिक्षा केवल जानकारी तक सीमित न होकर अंग्रेज़ी शासन की दासता के विरुद्ध जागरण की शिक्षा भी थी। मद्रास में श्रीमती मागरिड कजिन्स ने सन् 1917 ई. में अखिल भारतीय स्तर पर एक महिला संगठन इंडियन विमन्य असोसियेशन की स्थापना की और नारी सुधार को आगे बढाया है। चुनाव लडने के अधिकार कुछ शर्तों पर मिलने के बाद सन् 1926 ई में भारत में पहली बार नारी ने चुनाव में भाग लेकर सफलता पाई। सन् 1927 ई. में 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन संगठन' की स्थापना हुई। नमक सत्याग्रह, भारत छोडो आंदोलन, दूसरा सत्याग्रह आदि में नारी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। दूसरे सत्याग्रह आंदोलन में गाँधीजी ने आह्वान किया था- "अब तो मैं दावे के साथ कह सकता हुँ कि इस संग्राम की सूचना ही इस तरह की गई है कि इसमें बहने चाहे तो पुरुषों से अधिक भाग ले सकती है।"[10] कस्तूरबा गाँधी, अरुणा आसफली, सुचेता

---

[9] औरत एक दृष्टिकोण- अमृता प्रीतम, पृ.120

[10] दूसरे सत्याग्रह के आंदोलन के दौरान- गाँधीजी

कृपलानी आदि औरतें राजनीतिक आंदोलन से जूडी रही थी। सरोजिनी देवी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर, सुचेता कुपलानी आदि ने संविधान निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान किया था। स्वतंत्रता के बाद नारी मुक्ति को लेकर कई आन्दोलन हुए जिसके फलस्वरुप दहेज प्रतिबन्ध कानून, घरेलू हिंसा प्रतिबन्ध कानून जैसे अनेकानेक कानूनों तथा नियमों का निर्माण हुआ। आज़ादी के बाद भारतीय नारी अपनी पूरी शक्ति के साथ आगे बढ रही है। "नारी मुक्ति आंदोलन ने भारतीय नारी को जागृत करने में बहुत बडी भूमिका निभाई है। आज वह पुरुष की दासी नहीं रह गई, आज की नारी की अपनी अलग पहचान है उसका अपना एक अलग व्यक्तित्व है। आज उसने अपने पॉव पर खडा होना सीख्र लिया है।"[11] इस प्रकार भारतीय नारी मुक्ति आंदोलन नारियों की स्थिति में सुधार लाने में एक हद तक सक्षम हुआ है। स्त्री विमर्श का पहला कदम स्त्री मुक्ति आंदोलन में मिल सकता है।

नारी के अस्तित्व के संबंध में कहें तो, अनादिकाल से नारी सामाजिक अन्याय, अत्याचार शोषण का शिकार बनी रही है। पुरुष-प्रधान समाज व्यवस्था में उसका अस्तित्व तथा स्वत्व का ह्रास ही दृष्टिगोचर है। पुरुष की अवधारणा जहाँ केन्द्रीय और सकारात्मक होती है वहीं स्त्रीत्व की मूल अवधारणा ही नकारात्मक है। पुरुष सत्तात्मक समाज में सारी मर्यादायें तथा संस्कार रुपी बंधने पुरुष मूल्यों और मार्दादाओं से संचालित एवं निर्देशित होता है। पुरुष समाज के साथ अपने विभिन्न संबंधों की जकड के बावजूद अपने स्वत्व की तलाश के लिए स्वतंत्र हो सकता है जबकि स्त्री को सतत् विस्मृत रहकर माँ, बहन, भाभी पत्नी, पुत्री के रूप में ही मर जाना होता है। स्त्रीत्व का विशेष प्रयोग से उसे दबाकर स्त्री बनायी जाती है और

[11] दीप्ति नवल - धर्मयुग, नारी अंक, 5 मार्च-1955, पृ.14

जीवन पर्यंत सामाजिक संबंधों तथा संस्कारों में उसकी परिभाषायें तय करती है। स्त्री के विकास में संस्कृति की प्रतिगामी भूमिका का तसलीमानसरीन भी रेखांकित करती है- "आगे बढने की योग्यता होते हुए भी संस्कारों की रस्सी उसे पीछे खींचती है।"[12] संस्कारों के बंधन में फँसकार नारी अपने अस्तित्व खो बैठती है। नारी का स्वत्व पुरुष की अनुगमिनी बनने में रहा। समाज की आधी शक्ति सामाजिक, धार्मिक संस्कारों, रीति रिवाज़ों तथा संस्कारों के नाम पर लक्ष्मण रेखा के भीतर जकड दी गयी। मनुस्मृति में यों कहा है- "वैवाहिकों विद्याः स्त्रीणां संस्कारों वैदिक स्मृतः पति सेवा गुरौ बसो गृहोर्थाf न परिक्रिया।"[13] परिणामतः हज़ारों वर्षों तक समूचा स्त्री-समाज शिक्षा व ज्ञान के प्रकाश से वंचित रहा। अशिक्षा तथा आर्थिक परावलंबन इन दो कारणों ने मिलकर स्त्री को दासत्व की स्थिति में पहूँचा दिया तथा पुरुष वर्चस्ववादी समाज ने उसके भरण-पोषण के नाम पर मालिक और देवत्व का दर्जा प्राप्त कर दिया। भारतीय समाज की रुपरेखा न केवल पुरुष प्रधान रही बल्कि वहाँ स्त्री को मानवीय मानुषी समझने से ही इनकार कर दिया गया। मृणाल पांडे का कहना है कि-"लगभग सभी धार्मिक और दार्शनिक दायरों में स्त्रीत्व का पुरुष के संदर्भों में एक अपूर्ण और जीवन के रुप में ही देखा गया है। वरना यह न माना जाता कि मात्र स्त्री होकर जन्म लेना, यही सामाजिक अर्थ में (सार्थकता में) स्त्री होने के लिए पर्याप्त नहीं और स्त्री के लिए स्त्रीत्व (यानी खास तरह से उठने, बैढने, बोलने, चलने) की विशिष्ट तालीम भी लेते चलना ज़रुरी न कहा जाता है।"[14] यह

---

[12] औरत के हक में - तसलीमा नसरीन, पृ.23

[13] मनुस्मृति, पृ.1:4

[14] स्त्री देश की राजनीति से देह की राजनीति तक- मृणाल पांडे, पृ.5

तो सर्वविदित है कि भारतीय संविधान के अनुसार महिलाओं के मूल अधिकारों में समानता का अधिकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। पर व्यवहार में उसे कार्यान्वयन करने के लिए स्त्रीयों को एक लंबे संघर्ष से गुजरना पडा। औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण की ओर बढते भारत में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य भी तेजी से बदला फिर भी नारी की सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति में कोई विशेष व वास्तविक बदलाव नहीं आया है और न ही उसकी समस्यायें और संकट भी कम हुए। बल्कि वास्तविकता यह है कि स्त्रियों की समस्यायें पहले से अधिक जटिल और गंभीर रुप में सामने आयी है। जैसे सुमन कृष्णकांत के अनुसार-“महिलाओं को जिन्होंने अपने परिवार तथा समाज के लिए वस्तुतः स्वयं को मिटा दिया, योजनाबद्ध विकास के पाँच दशकों के बाद भी उन्हें सामाजिक व्यवस्था में यथोचित स्थान नहीं मिला है।”[15] जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं की सशक्त उपस्थिति, स्त्री शक्ति के विकास तथा सामाजिक व राष्ट्रीय विकास में उनके महत्वपूर्ण योगदान को देखकर तो ‘यत्र नार्येस्तु पूज्यन्तें, रमन्ते तत्र देवताः’ की उक्ति चारितार्थ होनी चाहिए थी, लेकिन हुआ उसके ठीक विपरीत। आशा के विपरीत नारी शोषण व अत्याचार में वृद्धि होती गयी। शिक्षा के बाजजूद भी नारी दमित रह जाती रही। दहेज प्रथा, लिंग भेद, भ्रूणहत्या, यौनशोषण आदि कूरीतियों नारी स्वतंत्रता के लिए चुनौती रही गयी। जीवन के विविध क्षेत्रों में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराती स्त्रियों की स्वाधीनता की भावना को स्वच्छंदता का पर्याय मानकर उसे भोग्य समझा जाने लगा। पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वाह, में उसे पुरुष का अपेक्षित सहयोग नहीं मिला।

[15] इक्कीसवीं सदी की ओर - सुमन कृष्णकांत, पृ.136

डॉ. रोहिणी अग्रवाल का कहना है कि-"नारी पुत्री है भगिनी है पत्नी है बस है नहीं तो नारी।"[16] जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने बहु आयामी व्यक्तित्व तथा बहुमुखी प्रतिभा को सिद्ध करने के बावजूद हमेशा की तरह आज भी स्त्री शोषित व उत्पीडित है, दोयम दर्जे का जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।

ऐसे एक अवसर पर स्त्री-विमर्श की प्रधानता उभरती है। नारी मुक्ति की दर्द भरी कहानी को सृजनात्मक परिवेश में उभरने में साहित्य सदा अग्रणी है। नारी मुक्ति के इर्द-गिर्द घूमता साहित्य पुरुष तथा स्त्री दोनों से संपन्न रहा है। लेकिन यह कटु सच्चाई है कि नारी व्यथा को सही अर्थों में नारी ही समझ सकती है। यहाँ उभरती है स्त्री लेखन की प्रधानता। नारी द्वारा ही नारी व्यथा का ठीक अभिव्यक्ति होती है क्योंकि उस व्यथा का वह खुद अनुभवी है -"आज स्त्रियाँ साहित्य के हर क्षेत्र में सक्षम रुप से हस्तक्षेप कर रही है। वे अपने भोगे हुए सच को ही नहीं, जिसे वे अधिक विश्वसनीयता से अभिव्यक्त करती है, बल्कि दूसरे विषयों पर भी उसे विश्वसनीयता से लिखती है।"[17] इसका मतलब यह नहीं कि पुरुष लेखकों द्वारा नारी पीडा को व्यक्त नहीं किया जा सकता। फिर भी महिला लेखिकाओं का स्त्री संबंधी दृष्टिकोण, वर्ण्य विषय और उसका पैनापन ज्यादा प्रामाणिक है। इस पर डॉ. विनय

---

[16] हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला - डॉ. रोहिणी अग्रवाल, पृ.19

[17] स्त्री विमर्श कलम और कूदाल के बहाने- डॉ. रमणिका गुप्ता, पृ.9

का कहना है कि- “कहना न होगा कि आज महिला लेखन सामान्य और असामान्य स्थितियों में स्त्री की संघर्षशीलता और सामाजिक न्याय पाने की भावना तथा अपने अस्तित्व को एक इकाई का रूप देने की इच्छा से प्रेरित है। समकालीन जीवन के परिदृश्य में भयानक विसंगतियों के बीच लेखन के स्तर पर महिला रचनाकार इस बात का स्पष्ट प्रमाण दे रही है कि राजनैतिक बदलाव के साथ सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर पर परिवर्तन बहुत आवश्यक है।”[18] अतः नारी जीवन की व्यथा-कथा की रचनात्मक धरातल पर प्रस्तुति ही स्त्री-विमर्श का मुख्य उद्देश्य है, जो आधुनिक युग की माँग है।

4.2 कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में चित्रित नारी समस्याएँ

स्त्री-विमर्श के परिप्रेक्ष्य में अनेक महिला-लेखिकाओं ने अपना योगदान दिया है। ऐसी लेखिकाओं में कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर का अपना विशिष्ट स्थान है। दोनों ने पीडित एवं प्रताडित स्त्रीयों के व्यथा एवं पीडा के साथ स्वतंत्रता के लिए छटपटाती स्त्रियों के संघर्ष को भी प्रस्तुत किया है। इनके नाटकों में ‘स्त्री-विमर्श’ सशक्त तेवर को लेकर उपस्थित है। वास्तव में आधुनिक बुद्धिवादी नारी, इज्जतहीन सामाजिक वातावरण में अपने अस्तित्व को ढूँढ रही है। परिवेश के कट्ठर नियमों में जकडकर वह स्वतंत्रता से सांस नहीं ले सकती है। ऐसी नारियों के संत्रास भरी अवस्था का स्पष्ट बयान है इनके नाटक। उन्होंने नारी की दमन-गाथा के साथ-साथ इस दमन-चक्र के खिलाफ आवाज़ उठाती स्त्रीयों का अत्यंत बारीकी के

---

[18] आधुनिक कथा साहित्य में नारी स्वरूप और प्रतिभा - डॉ. विनय, पृ.48

साथ चित्रण किया है। इनके नाटकों की स्त्रीयाँ शिक्षित और आर्थिक स्वाअलंबी होकर भी पुरुष की संस्कार जन्य कुंठाओं का शिकार होती है। इनके नाटकों में रोज़ के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं को केन्द्र में रखकर नारी के समग्र जीवन संघर्ष को चित्रित किया गया है। नारी मनोविज्ञान, सामाजिक विसंगतियों का बोध और उनसे उभरने की बेचैनी उनके नाटकों की पहचान है।

4.2.1 समाज में नारी का अस्तित्व

वैज्ञानिक उन्नति और शिक्षा में आयी क्रांती ने नारी को अपनी परिस्थितियों से प्रतिशोध तथा अपनी अहमियत को बरकरार रखने की प्रेरणा तो ज़रूर दिया है। फिर भी परंपरागत रुढियाँ और बंधन उसे ऐसे जकडी हुई है कि नारी की सामाजिक स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया है। नारी की ऐसी अवस्था के लिए खुद परिवार और समाज जिम्मेदार है। शिवप्रसाद सिंह की राय में- "विवाह के समय कन्या को यह शिक्षित करके भेजा जाता है कि ससुराल में डोली से प्रवेश करने के पश्चात कन्या अर्थी पर ही ससुराल से बाहर निकलती है।"[19] यही तो समाज में नारी की स्थिति है। आज उच्चशिक्षित होकर भी पुरुष या समाज के विकृत धुंधली मनोदशा नारी के विकास में बाधा डालते है। कुसुम कुमार के 'सुनो शेफाली' में शेफाली के आत्मसम्मान को चोट पहुँचानेवालें कार्य ही समाज से और खुद परिवार से उसे मिलता है। सत्यमेव दीक्षित और बकूल के अलावा खुद माँ ही उसे शादी की प्रेरणा देती है। जैसे वह शेफाली से कहती है-

---

[19] आधुनिक हिन्दी परिवेश - शिवप्रसाद सिंह, पृ.36

"तेरे पाव पडती हुँ, लडकी तेरे पाँव पडते हुँ कुछ खुद पर तरस खा... कुछ हम पर रहम कर...कुछ भगवान से डर....

मैं कुछ नही चाहती...सिर्फ तेरी शादी हो जाए उससे।"[20]

यहाँ शेफाली की जागरुक मानसिकता के विरुद्ध होनेवाली बातें उसके आत्मसम्मान को घाव करती है। अपनी माँ तक उसे समझ नहीं पाती। ऐसे अवसर पर शेफाली अपने अस्तित्व खो बैठती है। जया परांजपे के अनुसार-"शेफाली की व्यथा नारी विषयक पारंपरिक मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न बनकर उभारती है।"[21]

'संस्कार को नमस्कार' में नारी निकेतन को अपने स्वार्थ लाभ के लिए उपयोग करनेवाला संस्कार चंद, समूचे नारियों के आत्मसम्मान पर पानी फेरता है। संस्कार चंद नारी केन्द्र की औरतों की शक्ल पर ज्यादा ध्यान देता है- "इन भवानियों से कहो अपनी शक्लें तो ठीक रखा करें। केन्द्र का दारोमदार इनपर है- माना, पर सूरतों पर चार बजाये रखने का मतलब? मुझे तो यहाँ की ज्यादातर महिलायें भिखारिनी जैसी लगती है।"[22] नारी केन्द्र की सारी महिलायें अपनी इज्जत खो बैठती है। और पतित जीवन जीने को बाध्य हो जाती है।

'जी जैसी आपकी मर्जी' नाटक में दीपा, वर्षा, सुल्ताना और बबली टंडन, चारों अपनी पारिवारिक सामाजिक परंपराओं में पिसकर अपने आत्मसम्मान खो

---

[20] सुनो शेफाली - कुसुम कुमार, पृ.37

[21] हिन्दी नाट्यविमर्श- जया परांजपे, पृ.62

[22] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.21

देती है। पढी लिखी होकर भी बबली सामाजिक रुढियों में कैद रह जाती है। नाटक में बबली टंडन का प्रश्न है-

> "एक छत और दो वक्त की रोटी देना कोई चांद तारा तोड़ लाना तो नही है जिसके लिए हम अपना सब कुछ गॅवा देते है क्यों...क्यों.?"[23]

नारी अपने परिवार से ही हरी हुई है फिर समाज उसे आश्रय कैसे देगा? बबली टंडन की दुरवस्था पारिवारिक दखियानूसी मूल्यों की उग्रता तथा पुरुष की कुचली हुई नीति के कारण ही है। नाटक में सुल्ताना, दीपा और वर्षा सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल अपने को बदलने को बाध्य होती है। वर्षा पोटे-

> "जैसे ही मैं सातवीं और आठवीं क्लास में आयी तो भी तो life ही बदल गयी अब स्कर्ट नही पहनना, पंजाबी ड्रस पहनना। हुँ SSS लडकियाँ ...ऐसे नहीं बैठती, वैसे नहीं बैठती, लडकियाँ ज़ोर से नहीं हँसती, लडकों को साथ खेलना बंद।"[24]

इस प्रकार नारी अपने परिवेश में कैद होकर अत्याचारों को झेलती है जो उनका दायित्व माना जाता है। ऐसी अवस्थाओं में परिवार और कायदे-कानून नारियों को आजीवन जकडते है। ऐसी जकडी हुई अवस्था में नारी में अपना आत्मासम्मान नष्ट हो पाती है। अतः स्त्री को अपने परिवार में, समाज में अपना कोई अस्तित्व नहीं दिखाई देता है।

---

[23] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.40, 41

[24] जी जैसी आपकी मर्जी -नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.19

4.2.2 समाजोद्धार की आड में नारी शोषण

समाजोद्धार अपने लक्ष्य तक सही रास्ते में जब पहुँचते है तब, वह पवित्र माना जाता है। लेकिन ऐसे पवित्र कार्यों की आड में जब शेषण का काम चलता है तब वह लज्जा की बात रह जाती है। समाजोद्धार के लिए जो बाध्य है उसी के द्वारा ही शोषण होता रहता है। रक्षक ही शिक्षक रह जाने वाली ऐसी अवस्था में नारी की सुरक्षा का कोई गेरेंडी नहीं है। नारी के लिए रक्षा का उपाय कहीं न रह जाता है। 'संस्कार को नमस्कार' में नायक संस्कार चंद एक समाज सेवक है साथ ही अपने दमित कामवासनाओं का निरीह लडकियों पर थोपनेवाला एक कपट भी है। उनके ज़रिए नारी निकेतन का संचालन अपने स्वार्थ इच्छा के उद्देश्य से है। समाज की अनाथ निरीह और गरीब नारियों का उद्धार संस्कार चंदा के 'निरीक्षण' में नारी निकेतन में संपन्न है। यहाँ असल में उद्धार के बदले शोषण ही चलता है। नाटक में सूत्रधार का यह कथन बहुत मर्मस्पर्शी है-

> "अपने दर्शकों को आग्रह करना तो ज़रूरी न सूत्रधार। कहीं वे भूल से इस नाटक का संबंध उसे पापिन से जोड ले। संस्कृति भारतीय संस्कृति से...जानते तो तब क्या होगा? अर्थ का अनर्थ। ....दर्शकों को यह समस्या ज़रूरी कि हमारे नाटक का संबंध संस्कृति से नहीं, संस्कार से है? कन्या से नहीं उसके पति से है।"[25]

विश्व के श्रेष्ठ संस्कार, भारत संस्कार माना जाता है जहाँ समाजोद्धार के बदले समाज का पतन तेज़ी से होता है जिसके फलस्वरुप संस्कार का स्तर गिर जाता है।

---

25 संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.11

'सुनो शेफाली' में शेफाली एक शिक्षित और आत्मनिर्भर युवती होने के बावजूद भी उसपर, राजनीतिज्ञ सत्यमेव दीक्षित द्वारा शोषण की कोशिश होता है। अपने बेटे बकूल द्वारा उसकी शादी कराने के पीछे एक गूढ लक्ष्य निहित है। एक दलित युवति से बेटे का शादी कराकर अपने राजनैतिक भविष्य को उज्वल बनाना ही उनका लक्ष्य था। लेकिन शेफाली इस धोखे से परिचित होती है और ऐसे कुटिल परिश्रम से पीछे मुडती है। नारियों को केवल अपनी कार्यसिद्धी के लिए उपयोग करनेवाले राजनैतिकों की कपटताओं पर नाटक व्यंग्य करता है। अपनी उल्लू सीधा करने के लिए राजनायिक अपनी कुटिल नीतियों को उपयोगी बनाने की कोशिश करते है। ऐसी कोशिशों में नारियों का शोषण ही ज्यादा होता है। शेफाली की व्यंग्य भरी बाते सुनिये-

> "अछूतोद्धार की इस दिशा में सभी प्रयत्न असफल होते देखकर मैंने निराशा की स्थिति में पहले इस हरिजन लडकी के प्रेम किया, फिर शादी कर ली......लीजिए भाइयों और बहनों अब तो आप ही देंगें ना अपना कीमती वोट। यही ना तुम्हारा सपना?"[26]

शेफाली द्वारा बकुल पर लगाया गया यह व्यंग्यबाण समूचे कपट समाज सेवियों पर चुभनेवाला है।

4.2.3 यौनशोषण

नारी समस्यायों में सबसे प्रमुख है यौन शोषण की समस्या। ऐसी एक समस्या की प्रासंगिकता ऐतिहासिक महत्व रखती है। क्योंकि दरबार में 'पांचाली वस्त्राक्षेप'

---

[26] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.54

से शुरू होनेवाली एक महान परंपरा भारत संस्कृति की अपनी धरोहर है। इस परंपरा का पालन आज भी उसी तीव्रता या उससे बढकर हो रहा है। आश्चर्य की बात यह है कि समय का बदलाव हमारी सारी परिस्थितियों को बदला है लेकिन पुरुषों के ऐसे विकृत मनोभाव में कोई परिवर्तन अभी तक नहीं आया है। नारी को भोगविलास का साधन माननेवाला मर्द की यह कुटिल नीति आज बढती जाती रही है। 90 दिन की बच्ची को लेकर 90 उम्र की बूढी तक पुरुष वर्ग की निकृष्ट कामवासना का शिकार है। महिला आयोग की अध्यक्षा मोहिनी गिरी ने अपने आँकडे प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि- "दिल्ली में 17 घंटे में एक स्त्री के साथ बलात्कार और हर 12 घंटे में एक स्त्री का यौनशोषण होता है।"[27] पुरुष वर्चस्व के बोलबाला जब तक समाज को ग्रसित है तब तक नारी शोषणों से मुक्ती नहीं। 'संस्कार को नमस्कार' नाटक यौनशोषण के विकृत रूप को हमारे सम्मुख उभारते है। प्रस्तुत नाटक का उद्देश्य ही यौन शोषण का पर्दाफाश है। नटी द्वारा नाटक की प्रमुख समस्या का यों उद्घाटन होता है-

"इस नाटक की मेन प्राब्लेम है-सैक्स एकस्लाइटेशन।"[28]

नारी केन्द्र में संस्कार चंद के आगमन का मुख्य उद्देश्य वहाँ की कुमारियों का यौनशोषण है। कुटिल कामवासना से मस्त संस्कारचंद लडकियों को मदिरा पिलाता है और यौन शोषण केलिए सज्जित करता है। उदा:-

---

[27] दैनिक हिन्दुस्तान, अखबार दिनांक, 15 मई 1995

[28] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.13

"संस्कार कितनी अच्छी, कितनी पवित्र हो तुम शक्ति! टिटरान के कपडों में बहुत सुन्दर लगोगी तुम! बस करो अब-बहुत थक गई होगी तुम। लेट क्यों नहीं जाती यहाँ- लेट जाओ अब हम तुम्हारी टाँगे दबायेंगे- इतना घबरा क्यों गई हो?"[29]

ऐसे संस्कार चंद अपने पुरुषत्व का रुआब उनपर डालता भी है। प्रसिद्ध आलोचक नरनारायण राय की राय में- "अपनी पत्नी को माँ समझनेवाले संस्कार भाई अपने पौत्री के उम्रकी लडकी साथ दुर्व्यवहार करते है। ऐसे दोहरे व्यक्तित्व के धनी संस्कार भाई को लेखिका ने यथार्थ रुप में चित्रित किया है।"[30] मर्द अपनी कामेच्छा के आगे रिश्तों को तृण सम कुचलकर फेंक देता है। आश्रम की लडकियों के दादा का स्थान रखनेवाला संस्कार चंद उनको अपनी यौनतृप्ती के शिकार बनाते है। उनके जैसे कपट समाज सेवी आज समाज में सर्वत्र व्याप्त है।

नादिरा ज़हीर बब्बर की 'सकुबाई' नाटक में सकु अपने मामा द्वारा बलात्कृत का शिकार होती है। जिन हाथों से उसका संरक्षण होना होता उन्हीं से उसका यौन शोषण सकु के लिए सघन प्रहार बन जाता है।

"सकु जैसे कोई कुचल दे रहा है....बलात्कार? या फिर छोटे मामा ने मुझे बेहोश कर दिया था।"[31]

---

[29] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.45

[30] समकालीन हिन्दी नाटक टूटता संदर्भ- नर नारायण राय, पृ.154

[31] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.30

पुरुष की स्वामी भावना ही नारियों की ऐसी स्थिति के मूल में है। अपनी ऐसी हालात से बचने के लिए प्रतिशोध की रास्ता अपनाने के लिए नारी को तैयार होना चाहिए। आपका अलग नाटक 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना की बेटी पर उसके दूसरे पति हकीम का बलात्कार वह बरदाश्त नहीं कर पाती। पति से बेटी का यौन शोषण सुलताना के दिल को कचोटती है। एक माँ की आँखों के सामने बेटी पर बलात्कार मानवता पर होने वाला सघन प्रहार है।

> सुल्ताना-"मेरे सर पर खून सवार था। मैं गुस्से से पागल हो रही थी, जहाँ वे हकीम साहब को चोट लगी थी उसी जख्म में मारती चली मारती चली गयी।"[32]

एक माँ की दर्दनाक नियति का इससे ज्यादा बयान नहीं चाहिए। जो सबीहा को अपनी बेटी की तरह मानना चाहिए था, उसी के द्वारा उसका यौन शोषण अत्यंत दर्दनाक तथा हमारे मन को निचोडने वाला था। क्या पुरुष अपनी चाह सभी पर उतरने के हकदार है? ऐसा एक प्रश्न बीते समय से आज भी हमारे सम्मुख है जिसका उत्तर न मिल पाया है। शादी शुदा औरतों पर होनेवाला यौनशोषण भी सबसे प्रमुख समस्या है। वे अपने अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लिये जीने लगती है। नादिरा जी के 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना और बबली टंडन अपने-अपने पति द्वारा यौन शोषण के शिकार रही है। पति की कामलिप्सा के शिकार होकर

---

[32] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.33

ये दोनों अपनी नियति पर रो बैठती है। "नाटक सवाल उठाता है कि ज़िन्दा भर रहने के लिए औरत को अन्धा, बहरा और गुँगा बन जाना ज़रुरी है?"[33] समाज ने नारी के अपनी नियति से परिस्थितियों से जूझकर तडपने लायक बनोदिया है।

4.2.4 नारी भोग विलास का साधन

व्यावसायीकरण के इस युग में नारी एक भोगविलास का साधन बन गयी है। समाज स्त्री को ऐसी एक मानसिकता से देखता है कि जिनका फल नारी को भोगविलास की वस्तु मानना ही रह गया है। 'दयाशंकर की डायरी' में मुंबई जैसी महानगरीय सभ्यता में नारी को प्राप्त मान्यता स्पष्ट दिखाई देता है। दया शंकर की बाते इसका प्रकट उदाहरण है-

> "दयाशंकर- खास तौर पर बूडढे जैसे ही कोई खूबसूरत लडकी ट्रेन में चढ़ेगी ये अपनी सीट छोडकर उसे बिठा देती है और कहते 'आजा बेटी यहाँ बैठ जा' फिर बगल में खडे होकर उसके ब्लाउस में झांकते है।"[34]

नारी के शरीर की पवित्रता आज कुटिल दृष्टियों से दूषित हो रही है। विज्ञापन और फिल्मों द्वारा नारी के नंगे शरीर का प्रदर्शन होता रहता है, जिसने उसे एक बिकाऊ माल बना दिया है। विशेषतः अमीरो के लिए नारी एक मूल्यहीन सौदा है जिसका जब चाहे इस्तेमाल कर सकते। उनकी निगाह में नारी 'यूस एंड थ्रों' की चीज़ है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में वर्षा ऐसे परंपरागत शोषण का शिकार होने से बचने की कोशिश करती है। नाटक में जिग्नेश नामक खानदानी लडका वर्षा को फसाने के

---

33 आधुनिक भारतीय नाट्यविमर्श- जयदेव तनेजा, पृ.291

34 दयाशंकर की डायरी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.22

लिए जाल बिछाता है लेकिन दीपा अपने साहस और अक्ल से उस कुटिल नीति से बचती है। दीपा का सवाल बडा मर्मस्पर्शी रह जाती है-

> "Bullshit Community के बाहर की लडकियों को घुमाना चाहते हो, उनके साथ सोना चाहते हो तब मम्मी, पापा से पूछा था?"[35]

'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' में हवलदार राठी मोरोमी की ओर वासनायुक्त व्यवहार करता है। लेकिन मोरोमी प्रतिशोध करती है और उस पर टूट पडती भी है।

> "मोरोमी : ए क्या। तेरे दिल में, तेरे सीने में कोई सच्चाई है?...अभी जब में बेहोश हो गई थी तब तू किस तरह से मेरे बदन को टटोल रहा था।"[36]

नारी के प्रति सामाजिक मानसिकता में जब तक बदलाव न आयेगा तब तक वह ऐसी अवस्था से छुटकारा नहीं पा सकेगी।

4.2.5 नारी : आतंकवाद और सांप्रदायिक दंगे का शिकार

वर्तमान समाज में नारी केन्द्रीय भूमिका निभा रही है, जिसका फल यह है कि समाज की सारी गतिविधियों का असर उस पर पडता ही है। आतंकवाद हो, सैनिक कार्यवाही हो या सांप्रदायिक दंगे नारी पर ही सबका बुरा प्रभाव पडता है। औरत जात हो तो सब सहने के लिए बाध्य दिखायी पडती है। लश्कर चौक नाटक में इस समस्या को प्रमुख स्थान दिया गया है। प्रस्तुत नाटक में धार्मिक मतभेद जब दंगे में परिणत होते है तो औरतें ही उसमें ज्यादा तकलीफ झेलती है। धार्मिक नेताओं की

---

[35] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.24

[36] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.49

स्वार्थता के कारण जो लडाई होती है उसे रोकने के लिए औरतें ही आगे आती है। नाटक में पारा बेगम का सवाल अधिक प्रासंगिक लगता है-

> "मैं पारा बेगम, घर की लाज शरम! क्या आप में से कोई बताएगा, मुझे कहाँ जाना होगा?"[37]

मशहूर समाज सेविका उर्वशी बूटालिया का कहना है कि कभी-कभी स्त्रियाँ भी सांप्रदायवाद के थोखे में आकर उसके प्रेरक तत्व के रूप में काम करती है। 'सुमन और सना' 2002 को गुजरात में हुए सांप्रदायिक दंगे के शिकारों पर लिखा गया नाटक है। इस नाटक में कितनी औरतें बेवा हो गयी, कितने पुरुषों की कुटिल मानसिकता के शिकार हुई, सब का ठीक बयान न मिल पाता। नारियों के दिलों को ही सारे हत्याकांड प्रभावित करती है। जैसे-

> "अमीन है- तब से आठ साल हो गये। उसकी खबर नहीं, पता नहीं मेरा बेटा कहाँ होगा, किस हाल में होगा? तुम्हें तो इस बात की तसल्ली होगी कि तुम्हारा बेटा अब ईश्वर की पनाह में है। मुझे तो वो भी नहीं... मैं रोज उसके आने का इंतजार करती हुँ और उसके मरने का मातम भी।"[38]

यहाँ तो स्त्री की शरणार्थी मानसिकता ही मुखरित है। वह समाज में एक दूसरे के बिना, चाहे पति हो, बेटे हो नहीं जी सकती है। प्रसिद्ध मनोशास्त्री सुधीर कक्कड इस प्रकार कहते है-

---

[37] लश्कर चौक- कुसुम कुमार, पृ.82

[38] सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.23

"For although in most societies an Indian woman does not stand alone her identity is wholly defined by the relationship to others."[39]

असल में यह एक भावुक औरत की नियति है कि वह अपना जीवन परिस्थितियों पर आश्रित रहकर ही जीती है। युग-युगों से वह त्याग का अवतार बनकर अपने परिवेश में हो रहे सारे अतिक्रमों से पीडित और प्रताडित है। 'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' में मोरोमी ऐसे कटु अनुभवों की भोक्ता है। मोरोमी की राय में वह खुद ही नही सारी पूर्वोत्तर राज्यों की महिलाएँ त्रासद ज़िन्दगी जी रही है। आतंकवाद और उसके परिणामस्वरूप मोरोमी अपने पति और बेटे को खोती है।

"कैं कंग: और तुम्हारे पति...?

मोरोमी : सुनन चाहते हो....सुन सकोगे? तुम्हारे आर्मी के जवान एक बार उसे शक की बुनियाद पर North Lakimpur उठाकर ले गये..कहते उसको वहाँ रखा। मैं हर हफ्ते मिलने जाती मगर वे कहते कि पूछताछ चल रही है। उसे इतना मारा पीटा कि उसका शरीर बेकार हो गया था। एक तरह से अपाहिज हो गया था। दर्द से बचने के लिए उसने नशीली दवाइयाँ लेनी शुरू कर दी... वो नशीली दवाइयों के बिना एक पल भी नहीं रह पाता था। और एक दिन वो दवायें खाकर ऐसा सोया कि फिर कभी नहीं उठा..."[40]

अपनी हैसियत की अथाह चाह रखनेवाली के सामने नियती एक दोधारी तलवार बनकर रह जाती है। अतः हम देख सकते है कि आतंकवाद, साम्प्रदायिक दंगे जैसे अत्याचार होने पर समाज में नारी की स्थिति है अत्यन्त दयनीय बन जाती है।

---

[39] विमेन इन इंड्यिन सोसाइटी- सुधीर कक्कड, पृ.44, 45

[40] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ. 49

4.2.6 लिंगभेद की समस्या

हमारे भौतिक वातावरण चाहे जितना भी बदले पुरुष का प्रभुत्व, सामाजिक मनोदशा में रुढ़मूल हुआ एक अजीब चीज़ है। इसका उत्तम उदाहरण है समाज में जड पकडा लिंगभेद। स्वतंत्रता प्राप्ति के वक्त सरकार द्वारा, स्वतंत्र भारत में लिंग के आधार पर भेदभाव न होने का निर्णय था। भारतीय संविधान से भी यह स्पष्ट किया है कि लिंग और जाति के आधार पर समाज में भेदभाव न हो जाये। लेकिन इन सबका तो लागू करना और एक बात है। वेल्ड इकणोमिक फारम के अनुसार भारत में स्त्री-पुरुष असमता ज्यादा स्थित है। पुरानी मान्यतायें स्त्री को सर्वसहः का पद देकर सब कुछ भोगने के लायक बनी रखी है। "जीवन के कठोर संघर्ष में जो पुरुष विजयी प्रामाणित हुआ उसे न केवल कोमल हाथों से जपमाला देकर स्निग्ध चितवन से अभिनंदित करके और आत्मनिवेदन से अपने निकट पराजित बना डाला।"[41] भारत के कई परिवारों में कन्या का जन्म लेना अच्छा नहीं माना जाता। पुरुष और स्त्री का जन्म जिस कोख से होता है, उसकी हैसियत क्या पुरुष वादा कर सकता है? 'जी जसी आपकी मर्जी' में वर्षा पोटे को गर्भस्थ दशा में ही खत्म करने का पापा और दादी की कोशिश, लिंग भेद का उत्तम दृष्टांत है। लेकिन एक कर्तव्य निष्ठ डाक्टर की उचित हस्तक्षेप से वह बच जाती है। ऐसे डाक्टरों की अहमियत आज खतरे पर है क्योंकि, समाज के नियमों के अनुकूल अपने प्रोफेशनल एतिक्स को हवा में उडा देने वाले डाक्टरों की संख्या आज बढ रही है। वर्षा डाक्टर की कृपा से जन्म लेती है। लेकिन घर में दादी पापा की अतृप्ति का शिकार बनती रही। दादी माँ-

---

[41] साठोत्तरी हिन्दी नाटक- सविता चोधरी, पृ.53

"उसके जन्म पर मिठाई? मिठाई किस बात की? अरे तीसरी करमाजली पैदा हुई है। हमारी तो किस्मत ही फूट गयी।"[42]

नारी का जन्म से करमजली है, अनहोनी है, परिवार के दूसरों की सेवा के लिए बाध्य है। दीपा भाई के अधिकार भाव से ऊबकर उनके विरुद्ध अपना अस्तित्व को बरकरार रखने की कोशिश करते है। दीपा अच्छी तरह समझती है कि उसकी बहिन की मृत्यु घरवालों की लापरवाही से ही हुई है। नाटक में एक वक्त दीपा का यह प्रश्न हमारे मन में कील सा चुभता है-

"मैं हमेशा सोचती हुँ, ऐसा क्यों होता है? क्यों अम्मा को मार पडती है? क्यों हम बहिने हिन्दी मीडियम में? भैया को दो-दो ट्यूशन फिर भी घिस्तर-फिस्तर के पास होता है। हम बिना ट्यूशन स्कालरशिप लाते है। फिर भी क्यों नहीं प्यार करते हमें सब लोग? क्या बुराई है हम में, हमें भी तो प्यार चाहिए ना?"[43]

लडकी का जन्म जघन्य पाप समझने वाले इस वैज्ञानिक युग में ऐसे सवालों की प्रासंगिकता सोचने की बात ही है।

समाज में पुरुषों की अपेक्षा नारीवर्ग को ज्यादा कमज़ोर समझा जाता है। नारी को अबला ठहराने की कोशिश तो परंपरागत रुढ़ियों में है जो 'जी जैसी आपकी मर्जी' में नादिरा जी ने व्यक्त किया है। नाटक में वर्षा पोटे पिता की तबीयत की बुरी अवस्था में दूकान संभालती है और परिस्थितियों का अच्छे ढंग से

---

[42] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.12

[43] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.18, 19

सामना करती है। लेकिन बाकी लोगों की नज़र में वह लडकी है जो समाज में अबला है। सकुबाई में भी ऐसा एक संदर्भ है कि शहनाज़ अपने पति से बिछुडने के बाद भी दूकान संभालकर शान से जीने के काबिल रह जाती है। जैसे......

> "इतनी अच्छी औरत...फिर आ गये उसके रिश्तेदार....दूकान हडपने...। दिन भर उसी का खाते थे और अब...। इतना सब होने के बावजूद उसने हिम्मत नही हारी। वहीं औरत शहनाज़ जिसका नाम। पर्दा उठाया और निकल पडी मर्दों की दुनिया में......काफ्रेड मार्कट में मर्दों के बीच।"[44]

स्त्री-पुरुष भेदभाव एक परंपरागत दृष्टिकोण है जो औरतों को साहसिकता और आत्मनिर्भरता से दूर करता है।

लडकी होकर पैदा होने से भी बडा कसूर है लडकियों को जन्म देना। पुत्र और पुत्री दोनों ईश्वर के वरदान है। बेटा-बेटी, भाई-बहन, पती-पत्नी और बूढा-बूढी सब प्रकृति की स्वाभाविक अवस्थायें है जिन्हें कुटिल मानसिकता आत्मसात करने को हिचकती है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना चार लडकियों को जन्म देने के कारण उसे पति से तलाक मिलता है। सांस इसी कारण से उसे दोषी ठहराकर गालियाँ देती थी कि वह घर में चिराग पैदा नहीं कर सकी। इसी नाटक में सुल्ताना की बेटी का कथन ऐसी संकुचित मनोदशा को दूर करने में काबिल है। जैसे सबीहा कहती है-

---

[44] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.50

"ससुराल वालों को और शौहर को शादी के पहले ही जाकर डॉक्टर से ये भी समझ लेना चाहिए कि औरत को लडका होगा कि लडकी ये मर्द की वजब से तय होता है कि ना औरत की वजह से।"[45]

बच्चा लडका हो या लडकी जिसका निर्णय पुरुष से तय होते है। लेकिन अधिकांश लोग इससे अनभिज्ञ है। और अगर ज्ञात है तो भी औरत पर आरोप लगाना ही सामाजिक कारोबार है। लिंगभेद से उत्पन्न विभिन्न समस्यायें औरतों के जीवन को संघर्षशील बनाने में सबसे आगे है।

4.2.7 भ्रूण हत्या

गर्भच्छेद ऐसी एक कटु समस्या है जो आज के इस शिक्षित युग में भी उसकी जडें मज़बूत दीख पडती है। माँ कहलाने से औरत वंचित होती, एक निष्ठूर और क्रूर नियति है। इसको एक गंभीर विषय के रुप में मानना ही चाहिए। गर्भच्छेद के कई कारण होने पर भी औरत इस क्रूरता का शिकार बन जाती है। कानून द्वारा इसका रोकधाम पूर्णतया असंभव है। 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में आर्थिक पराधीनता के कारण पवन सुषमा से दूसरे बच्चे को जन्म से पहले निकालने की माँग करता है। लेकिन सुषमा अपने मातृत्व पर खडे होने वाली ऐसी बाधाओं पर गरज पडती है। जैसे-

"नीच! कमीने! भेडिये! मुझसे बस यही रिश्ता है तुम्हारा? खून की एक बूँद तक नहीं मुझमें और मुझे ले चले हो उस कसाईखाने? मैं अच्छी तरह जानती हुँ, तुम मुझसे छुटकारा पाना चाहते हो.....।"[46]

---

[45] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.34

आर्थिक अभाव, लडकी को जन्म देने की विमुखता आदि गर्भच्छेद के कारण है, लेकिन नारियों पर सबका प्रतिकूल असर पडता है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में छुटकी दीपा को गर्भस्थ अवस्था में ही मार डालने को दादी और पापा का निर्णय था। लेकिन डॉक्टर का उचित हस्तक्षेप उसे कोख से बाहर आने का भाग्य दिया।

> "दीपा : सुबह अम्मा बाबुजी के साथ डाक्टर के पास गई। पता नहीं वहाँ बात कैसे शुरु हुई, मगर डॉक्टर ने बाबुजी से कहा-
>
> "मैं आपकी रिपोर्ट पुलिस में कर सकती हुँ, आपकी हिम्मत भी कैसे हुई इस काम के लिए मेरे पास आने की।"[47]

प्रचलित बुरी सामाजिक रवैये के कारण ही गर्भच्छेद जैसे सामाजिक विपत्ती आज भी समाज में जड पकडी है।

4.2.8 शिक्षित नारी

शिक्षा के साथ-साथ नारी में नयी जागृति उत्पन्न हुई है। वह अपनी स्वतंत्रता पर कोई रोक नहीं चाहती। पुरुष के साथ ही या उसके कुछ आगे बढने में शिक्षा स्त्रियों को उपकारी रही। शिक्षा एक माध्यम है जिसके ज़रिए औरत अपने प्रतिकूल वातावरण को भी अनुकूल बनाती है। शिक्षा नारियों की बौद्धिकता को बदलती है जिसके कारण वह स्वाभिमानी, आत्मनिर्भर, तथा आत्मसम्मानित ठहर जाती है। यही कारण है कि 'सुनो शेफाली' की नायिका शेफाली अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों पर एक हद तक जीत पाती है। राजनैतिक सत्यमेव दीक्षित तथा उनके बेटे बकूल के

---

[46] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.49

[47] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.12

कमीने-सस्ता छल-कपट के आँगे शेफाली हार न मानती है। प्रतिशोध का रास्ता अपनाकर बाप-बेटे की कुटिल योजनाओं को वह हराती है-

> "शेफाली : बराबरी माँग कौन रहा है? बराबर तो मैं हुँ...उनकी दया का पात्र बनना होता तो मेरी शादी के खील-बताशे तुम भी कब के बाँट चुकी होती... अम्मा, मैं कैसे ना यह सोचूँ कि हम उनकी दया के पात्र होने के अलावी भी कुछ है।''[48]

शिक्षित होने के कारण ही सरकार की कुटिल योजनाओं को भी वह बरदाश्त ना कर सकती है। दलितों के लेबल पर दी जानेवाली रियायतों को वह ढोंग मानती है। विनोद जैन की राय में- "शेफाली का विद्रोह वर्षों से मिलनेवाली रियायतों तथा आरक्षण नीति के विरुद्ध है।"[49] सकुबाई में सकु पढने की इच्छा तो करती थी लकिन अपनी बेटी साईली को पढाके वह अपनी शिक्षा कि चाह पूरा करती है-

> "सकुबाई- मेरी लडकी साइली, पढ़ाने में बहुत तेज़ है। बी.काम में फस्ट क्लास आई है। ...स्कालर मिलता है। ...बारहवीं में भी फर्स्ट क्लास था उसका...। (न्यूस पेपर दिखाते हुए) ऐसा फोटो छापा था उसका।"[50]

समाज में नारी अपने पैरो पर खडे रहना चाहती है और उसी के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है। आज वह हर क्षेत्र में कार्यरत है और प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर रही है जिसका कारण शिक्षा ही है।

---

[48] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.38

[49] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना- विनोद जैन, पृ.51

[50] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.61

4.2.9 सामाजिक रूढियों में फँसी हुई शिक्षित नारी

शिक्षित होकर भी परंपरा के द्वन्द्व में फँसनेवाली नारियाँ समाज में आज ज्यादा है। शिक्षित हो या अशिक्षित भारतीय नारी अपनी परंपराओं से संपृक्त रहना चाहती है। इस संबंध में नासिरा शर्मा लिखती है कि- "भारत वर्ष में जितनी बुद्धि जीवि महिलायें थीं या हैं उतनी संसार के किसी देश में नहीं, मगर यह सारी महिलायें पहले माँ, बहन, बेटी, पत्नी है और फिर इंजीनियर, डॉक्टर, लेखक, पायलट और मंत्री है। जिन औरतों का विवाहित जीवन सुखमय नहीं है समाज उन्हें आदर की दृष्टि से नहीं देखता, भले ही पद के कारण सम्मान करना मज़बूरी हो। यह अपने में एक गलत सोच है मगर हिन्दुस्तान के समाज का यथार्थ यही है।"[51]

घरवालों की पुरानी मान्यताओं और अपने नये दृष्टिकोणों के बीच फँसकर वह जीवन में द्वन्द का अनुभव करती है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में बबली टंडन शिक्षित होकर भी पुरानी रीति रिवाज़ों के अनुसार उसे अमनदीप जैसे धोखेबास से विवाह करना पडता है। अन्त में धोखा खाना पडता है। शिक्षित होकर भी पुरानी मान्यताओं मे फँसनेवाली औरतों की दयाहीन नियति वर्तमान समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या है। प्रभा खेतान के अनुसार- "यह औरत की नियति है कि वह पुरुष की अधीनता में रहे। इस परिवर्तित नहीं किया जा सकता। उसको (स्त्री को) प्रभु से कोई सत्ता नहीं मिली।"[52] शिक्षितों की भी ऐसी पतित अवस्था समाज का अभिशाप है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में ही दीपा शिक्षित है। अच्छी तरह पढती

---

[51] औरत के लिए औरत- नासिरा शर्मा, पृ.151

[52] स्त्री उपेक्षिता द सेकेंड सेक्स का हिन्दी रूपांतरण-प्रभा खेतान, पृ.60

है और स्कालरशीप भी पाती है। लेकिन घरवालों की दख़ियानूसी विचारों में वह फंसकर अपने को तुच्छ माननी पडती है। घरवाले उसे आगे पढाना नहीं चाहते है।

4.2.10 अशिक्षित नारी की समस्या

शिक्षा के अभाव में नारी का जीवन बहुत तकलीफों से भरा है। शिक्षा न मिलने के कारण वह अपने परिवेश तथा कमज़ोरियों तथा ताकतों से अनभिज्ञ रह जाती है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना की नियती यही है। अज्ञानता के कारण वह अपने ऊपर पडे अन्यायों का प्रतिशोध नहीं कर सकी। अपनी बेटी सबीहा से शादी की चर्चा करते वक्त, जो जवाब उसे मिला, वह सारी औरतों की आँखें ख़ोलनेवाला है। सबीहा अपनी माँ से कहती है-

> "अम्मी तुम्हें तो तालीम की कद्र करनी चाहिए-अगर तुम पढी-लिख़ी होती तो क्यों ये दिन देख़ने पडते?...मैं किसी अनपढ से शादी नहीं करूँगी। मैं मार नहीं ख़ाऊँगी, मेरे शौहर को मैं काम करने पर एतराज नहीं होना चाहिए।"[53]

यह एक सच्चाई है कि शिक्षा नारी के लिए एक शस्त्र जैसा है जिसके अभाव में वह अपने को कमज़ोर अनुभव करती है। अपने पर आनेवाले आक्रामक परिवेश से प्रतिशोध लेने के लिए शिक्षा उसका हत्यार बनेंगा।

4.2.11 नारी ही नारी का दुश्मन

बदलते मानवीय मूल्यों के साथ स्वार्थता और आपने लिए की भावना बढती जा रही है। ऐसी एक अवस्था में केवल अपनी बात पर व्यक्ति की चिंताएँ और क्रियायें सीमित होने लगी है। स्वार्थता के कारण मानव का मनोभाव इतना संकुचित

[53] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.34

है कि बन गया सबसे आगे निकलने की इच्छा में अपने ही वर्ग को पीछा करने में वे हिचकता नहीं। 'संस्कार को नमस्कार' में कामोबेन नारी निकेतन की संचालिका है जो वहाँ के आलंबहीन औरतों के शोषण का मार्ग प्रशस्त करती है। निरीह औरतों की सहायता के आड में कामोबेन नारी शोषण के लिए संस्कार चंद को मदद करती है। संस्कार चंद द्वारा नारी निकेतन के औरतों के यौनशोषण की सहायिका है कामोबेन। वहाँ के निरीह औरतों के शोषण उसके लिए निसार बात है तथा उसी के द्वारा अपना स्वार्थ लक्ष्य की पूर्ती भी करती है। यौन शोषण जैसी भीषण समस्या में कामोबेन की भूमिका, नारी द्वारा नारी पर होनेवाला अन्याय का उत्तम उदाहरण है। इस प्रकार 'सुनो शेफाली' में शेफाली सत्यमेव दीक्षित और बकूल को शादी के मामले में परास्त तो करती है लेकिन बहन किरण से वह परास्त होती है।

> "बकुल और किरण शेफाली के सामने खडे है। किरन दुल्हन बनी बकुल का हाथ पकडे हुए है। बकुल शेफाली को देखकर निस्तेज चुपचाप खडा है। शेफाली की आँखें बंद। गले में कुछ फँसकर रह जाने की पीडा महसूस करती हुई वह खडी है।"[54]

अपनी बहन द्वारा शेफाली ज़िन्दगी में थकी हारी रह जाती है और ज़िन्दगी से उसे सदा के लिए हार माननी पडती है।

'जी जैसी आपकी मर्जी' में बबली टंडन के पति अमनदीप कोहली, अपने अफसर की पत्नी अनिता से नाजायज संबंध रखता है। माँ बनने की खुशी में झूमनेवाली बबली पति के इस रिश्ते से हार जाती है। जैसे वह स्वयं इस प्रकार

---

[54] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.56

कहती है- "वो अमन फोन पे...मुझे तो अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा...पता है वो किसके साथ...वो उनके Boss की wife अनिता.. कितने प्यार से मिली थी मुझ से शादी में। मेरे तो जैसे पैरों तले ज़मीन ही निकल गई हो। ये सब क्यों...क्यों?"[55] यहाँ एक नारी से पराजित अन्य नारी की दुरवस्था सामने है। अनिता की स्वार्थेच्छा बबली की ज़िन्दगी को बरबाद करती है। अपनी लाभेच्छा के लिए अपनी ही वर्ग को सत्यानाश की ओर थकेलने वाली स्वार्थता युग की उपज ही है। 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में पवन-सुषमा दंपतियों के बीच इला आती है, एक विघातक तत्व के रूप में।

> "सुषमा - इला! इला!! इला !!! इला न हुई कोई देवी-भवानी हो गई, जो तुम्हें इस हदतक पागल बना दिया है उसने!"[56]

पवन इला के जाल में सुषमा को तिरोहित करने तक को तैयार हो जाता है। इस प्रकार नारी ही नारी का दुश्मन बन जाती है।

4.2.12 नारी आर्थिक विपन्नता का शिकार

मनुष्य के जीवन का नींव ही अर्थ पर स्थिति है। उसके रहन-सहन आर्थिक संपन्नता पर आश्रित है। स्त्री-स्वतंत्रता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार आर्थिक अधिकार है। अगर औरत ऐसी एक स्वतंत्रता को न छू पाती है तो उसकी ज़िन्दगी

---

[55] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.40

[56] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.52

समस्याओं में उलझती है। मधुकिश्वर की राय में- “This lack of basic rights in both her natal and marital home contributed enormously of mating woman experience perpectual insecurity especially in those communities where a woman is kept from owning property in her own home.”[57] ‘संस्कार को नमस्कार’ में नारी निकेतन में जो निरीह लडकियाँ है उनकी आर्थिक विवशता ही उन्हें ऐसे केन्द्रों की ओर थकेलती है। संस्कारचंद और कामोबेन अच्छी तरह जानते है कि इन लडकियों के लिए वकालत करने के लिए कोई न आयेगा। इसलिए ऐसी लडकियों का शोषण भी खूब होता है। ‘सुनो शेफाली’ में शेफाली दलित तथा गरीब है। इसलिए सत्यमेव अपना ‘प्रभुत्व’ दर्शाकर उसे अपना अधीन लाने की कोशिश करता है।

> “दीक्षित : तकलीफ की क्या बात है इसमें। जो लडकी मेरे घर की बहु बनने वाली है उसके लिए मैं चाहे जितनी तकलीफें उठा सकता हुँ। ...”[58]

वह सोचता है कि शेफाली जैसी गरीब लडकी उनकी आर्थिक स्थिति तथा समाज की मान्यता देखकर उसपर मुग्ध होकर अपनी इच्छानुसार कुछ करेंगे। ‘पवन चतुर्वेदी की डायरी’ में सुषमा भी आर्थिक विपन्नता से जूझती है जिसका दृष्टांत है पवन द्वारा उससे गर्भच्छेद करने का अनुरोध। पवन और सुषमा के जीवन की शिथिलता का एक कारण आर्थिक पराधीनता है। सुषमा अपने गरीब अवस्था में भी बच्चे को टालने केलिए तैयार नहीं होती है। ऐसी परिस्थितियों में विवश होकर जीना अपनी नियति मानती है। ‘जी जैसी आपकी मर्जी’ में सुल्ताना, बबली सब अपनी आर्थिक

---

57 मधुकिश्वर, मानुषी पत्रिका, नं. 94, मई-जून 1996, पृ.7

58 सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.52

पराधीनता से जूझती है। इस विवशता के कारण ही वह अपनी परिस्थितियों में दबकर जीती है। बबली खुद पूछती है-

> "एक छत और दो वक्त की रोटी देना कोई चाँद तारे तोड लाना तो नहीं है जिसके लिए हम अपना सब कुछ गँवा देते है। सब कुछ खो देते है, सब कुछ देते है क्यों, क्यों...क्यों?"[59]

'सकुबाई' में सकुबाई अपनी आर्थिक स्वतंत्रता के लिए ही घर-घरों में काम करती है और अपने पैरों पर खडे होने में कामयाब होने की कोशिश करती है।

4.2.13 स्त्री-पुरुष समानता का प्रश्न

अर्द्धनारीश्वर की संकल्पना लेनेवाली भारतीय संस्कृति में नारी जीवन की सफलता पुरुष जीवन को धन्य बनाने में मानता है। नारी-पुरुष संबंध में समत्व की भावना केवल कागज़ों पर लिखने के लिए है। परंपरागत चिंताधाराओं के कुटिल आवेग में पुरुष को सदा समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त है। स्त्री के लिए यह एक जिम्मेदारी है कि पुरुष को हर हाल में खुश रखना। 'जी जैसी आपकी मर्जी' में दीपा की दादी उनके भाई का खयाल रखने की ज़िम्मेदारी उन बहनों पर सौंपती है। एक बार दादी माँ को धिक्कारने से दीपा दंड भी पाती है। दीपा की कहना है-

> "मुझे भी गुस्सा आया, मैने कहा, 'भैया अपने आप पानी नहीं पी सकते?' ये सुनकर भैया ने मुझे ज़ोर से थप्पड मारा और कहा ढीठ हो गई है, ढीठ एक दिन उसके घुलाई कर दूँगा फिर दिमाग ठिकाने आ जायेगा।"[60]

---

[59] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.41

[60] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.15

इसी नाटक की बबली टंडन को पति घर में जाते समय माँ उपेदश देती है कि हर हाल से अपने पति को खुश रखना। बबली पूछती है कि हम स्त्रियों का खयाल कौन रखेगा?

> "मुझे बडा धक्का लगा, समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। एक तरफ तो गुस्सा आ रहा था। दूसरी तरफ विदाई के टाइम पर मम्मी की दी हुई नसीहत, 'बेटी अपने हसबैंण्ड को हर हाल में खुश रखना।' "[61]

असल में नाटक द्वारा नादिरा जी पुरुष केन्द्रित समाज में नारियों के अस्तित्व पर प्रश्न लगाती है। अतः हम कह सकते है कि पुरुष वर्चस्व समाज की सारी विकृतियों का तिक्त फल नारी को ही भोगना पडता है।

4.2.14 वेश्यावृत्ति

वेश्यावृत्ति एक ओर से नारी शोषण ही है। कोई भी स्त्री जन्म से ही वेश्या बनना तय नहीं करती। परिस्थितियों के घेरे में आकार ही ऐसा होता है। एक और से नारी शोषण ही स्त्री को वेश्यावृत्ति की ओर ले जाती है, जिसका इतिहास मूकसाक्षी है। पुराणों में जो देवदासियाँ है उनका जीवन इस शोषण के कारण ही परिवर्तित हुए है और वे देवदासियों के पद पर अभिषिक्त हुई है। वेश्यावृत्ति, असल में नैतिकता का गिरावट है जो आज के इस युग में नारियों की अवस्था त्रासदी की

---

[61] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.37

ओर ले जा रही है। "90 प्रतिशत वेश्याये अनपढ़ है, 60 प्रतिशत वेश्यायें हरिजन या निम्न वर्ग की है। 80 प्रतिशत स्त्रियाँ 12 से 20 वर्ष की उम्र के बीच इस पेशे में लाई गयी है, 75 प्रतिशत महिलायें उनके ही संबंधियों, रिश्तेदारों या जानकारों द्वारा बीची गयी 10 प्रतिशत महिलायें ग्रामीण क्षेत्रों से लाकर शहरी क्षेत्रों में वेश्यावृत्ति व्यवसाय में बसाई गयी है।"[62] 'सकुबाई' में वेश्यावृत्ति की समस्या वासंती के संदर्भ में मिलती है। नाटक में सकुबाई की बहन वासंती अपने इष्ट पुरुष के साथ गाँव से शहर की ओर भागती है। उनके साथ जीवन यापन के बाद और एक पुरुष के साथ फिर वह जीती है और अंत में मुंबई के कामाठीपुरा में वेश्यावृत्ति में आ पडती है।

> "पुलिस वाला- तेरी बहिन सोसाइड कर लिया है। आत्महत्या। उधर कामाटी पुरा में धन्धा करती थी।..."[63]

औरत वेश्या के रूप में अवरोधित होने के परिवेश प्रस्तुत नाटक में स्पष्ट दिखाया है। ऐसी एक अवस्था से ऊबकर वासंती अंत में आत्महत्या कर-लेती है।

4.2.15 पिता द्वारा बेटी का बलात्कार

परिवर्तनशील समाज में व्यक्ति अपने परिवर्तित नैतिक मूल्यों के बलबूते पर कुछ भी करने को उद्यत है। बलात्कार एक प्राचीन अस्तित्व रखने वाली समस्या है फिर भी संबंधों के नैतिक बोध पर हुआ ह्रास, उसको नया परिवेश देता है। "वैसे बलात्कार अपराध नहीं, बल्कि पुरुषों द्वारा, औरतों को इस खतरें का हौआ दिखाकर लगातार भयभीत रखना भर प्रतीत होता है।"[64] बलात्कार का रूप इतना धिनौना

---

62 औरत होने की सज़ा, शोषण से दबी स्त्री देह- अरविन्द जैन, पृ.255

63 सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.42

64 मैन विमैन एड रेप- अगस्त आवर विल, पृ.184

बना रखा है कि बाप-बेटी, भाई-बहन, मामा-भांजी आदि रिश्ते भी इस बलात्कार से मुक्त नहीं है। नादिरा जी के 'जी जैसी आपकी मर्जी' में सुल्ताना की बेटी सबीहा का बलात्कार हकीम द्वारा होता है। जिसे एक बाप के दायित्व से सबीहा को संभालने की जिम्मेदारी है, उसीद्वारा उसका बलात्कार बाप-बेटी जैसे पवित्र संबंधों पर प्रश्न चिह्न लगाता है। अपने पति की कुकृत्य सुल्ताना बरदाश्त नहीं कर सकती

> "मेरे सर पर खून सवार हो गया। मैने कोने में रखा हुआ कपडे धोने वाला धोका उठाया और अपनी पूरी ताकत के साथ उस हकीम के सर पर पीछे से दे मारा।"[65]

नाटक में पिता द्वारा बेटी का बलात्कार समूचे मानवीय संबंधों की शिथिलता की ओर इशारा है।

4.2.16 आत्मविश्वास नारी का शस्त्र

स्त्रीत्व की महिमा, मातृत्व की महिमा और सौन्दर्य की सरस अभिव्यक्ति ही स्त्री-चरित्र में ढालती थी। परंपरागत समाज में स्त्री का स्वाभिमानी व्यक्तित्व सहज स्वीकार्य नहीं था। लेकिन नारी जब अपने आत्मविश्वास में सुलगती है तो उसकी ज़िन्दगी और उसका दृष्टिकोण ज्यादा चमकने लगेगा। पुरुष का स्वाभिमान नारी के आत्मविश्वास के आगे पिछडा जाता है और नारी अपनी पिछडी परिस्थितियों को पीछा करके आगे बढती भी है। 'सकूबाई' में सकु अपनी ज़िन्दगी में कामयाब हो जाती है, जिसका एकमात्र कारण है उसका आत्मविश्वास। गाँव में घर की चहारदीवारी से मुंबई की ओर पलायन और अपनी आर्थिक स्वतंत्रता सकु की ज़िन्दगी के नियामक

---

[65] जी जैसी आपकी मर्जी - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.33

तत्व रह जाती है। अशिक्षित सकु अपने शिक्षित होने की इच्छा से बेटी की पढ़ाई पूरा करती है। जीवन में उसने जो चाहा उसी को पाने में सक्षम भी निकला। उसकी बेटी साइली से लिखी गयी कविता उसके अदम्य आत्मविश्वास को दर्शाती है-

> "यूं हताश न हो
> तूने तो सारे जीवन संघर्ष किया
> रानी लक्ष्मी बाई की तरह, तू भी तो एक योद्धा ही है
> वो तो केवल एक लडाई लडी और मर्दानी कहलाई
> पर तू तो सदियों से जीवन के संग्रम में जूझ रही।"[66]

सकु के लिए आत्मविश्वास एक ऐसा शास्त्र है जो परिस्थितियों के घेरे में जीतने को सहायक रहा। 'सुनो शेफाली' में शेफाली आत्मविश्वास भरी नारी है। दलित और शोषित ज़िन्दगी के संघर्षभरी अवस्थाओं में भी शेफाली सिर झुकाने को हिचकती है। सत्यमेव दीक्षित अपनी संपत्ती और राजनीतिक पद के गर्व से शेफाली को किराये में लेने की बात सोच रहा था लेकिन अपने स्वत्व का मोल चुकाने को वह किसी को हक नहीं देता है। मन्नन आचार्य और शेफाली के बीच की बातचीत में मन्नन शेफाली का कद्र करता है-

> "मन्नन- भावुक आदमी ही ढोकर खाता है एक पल और दूसरे पल योद्धा बना खडा दिखाई देता है...इनसानियत की खुशबू भावुक आदमी के लहु में ही सबसे ज्यादा होती...तुम भावुक हो, तभी गर्वीली हो...तभी तुम्हारा मन उज्जवल है और शायद तभी तुम कायर नहीं हो...बीच..भँवर में खडी रहकर भी किसी काठ की नाव के लिए चीख-पुकार नहीं की तुमने।"[67]

---

[66] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.63

[67] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.48

यहाँ शेफाली का आत्मविश्वास ही उसे ज़िन्दगी में सहारा देता है।

4.2.17 नारी द्वारा अर्थोपार्जन

आज नारी पुरुष के बराबर ही समाज में सम्मानित है। पुरुष के समान ही अर्थोपार्जन के क्षेत्र में भी वह आगे बढ चुकी है। "नारी के अर्थोपार्जन के मूल में उनकी व परिवार की सहमति अत्यधिक मात्रा में रहती है। अर्थ के बना परिवार के सदस्य जिन इच्छाओं की पूर्ती कर पाने में असमर्थ रहते है, वह नारी के नौकरी करने के कारण पूर्ण हो जाती है। शिक्षित विवाहित स्त्री द्वारा नौकरी करने की जो लहर आई है, उसका उसमें संपूर्ण व्यक्तित्व, उसके दांपत्य जीवन तथा पारिवारिक संबंधों पर असर पडना अनिवार्य है। अब उसे एक ओर गृहिणी और दूसरी ओर जीविकोपार्जक दोनों की भूमिका निभानी पडती है। इस दोहरी भूमिका की परस्पर विरोधी आवश्यकताओं के बीच जूझना पडता है।"[68] जहाँ एक ओर नारी के कार्यस्थल पर काम का ज्याद बोझ कंध्ये पर रखता है वहीं नारी शरीर पर भी वासनात्मक दृष्टि रखी जाती है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में अलका पैंशन विभाग के कार्यालय में काम करती है। वहीं काम करनेवाला मिस्टर ए उस पर बुरी नज़र रखता है। मिस्टर ए अलका से ओछी बात करते हुए कहता है-

"मिस्टर ए : कलवाली पिक्चर में आपकी बडी याद आयी अलका जी।
अलका : मेरी याद क्यों आयी?
सोनी : (शरारत में) अब इसे रोज आपको देखकर उस पिक्चर की याद आया करेगी। कसम से, कभी इनकी याद...
अलका :बहुत जल्दी इस दफ्तर की नौकरी छोडकर जानेवाली हुँ।"[69]

---

68 कामकाजी भारतीय नारी : बदलते जीवन मूल्य और सामाजिक स्थिति - डॉ. प्रेमिला कपूर, पृ.29

69 दिल्ली ऊँचा सुनती है- कुसुम कुमार, पृ.183

'सकुबाई' नाटक में शहनाज़ के पति सड़क-दुर्घटना में मारे जाते है। शहनाज़ बेसहारा हो जाती है। अपनी विषम स्थितियों में निडर होकर अपना पर्दा छोडकर वह बाहर निकलती है। अपनी दूकान संभालती है और अपनी गृहस्थी को चलाती है। सकु इस पर कहती है-

> "इतनी अच्छी औरत....। फिर आ गए रिश्तेदार... दूकान हडपने...। दिन भर उसी का खाते थे और अब नहीं हारी....। वही औरत शहनाज जिसका नाम। पर्दा उठाया और निकल पडी मुर्दों की दुनिया में...। क्राफेड मार्केट में मर्दों के बीच... बच्चों से कहा- बच्चों तुम घर संभालों। मैं दूकान संभालती हुँ और फिर क्या दूकान चलि कि पूछे मत...एकदम दौडने लगी।..."[70]

अपने जीवन की बुनियादि ज़रुरतों को मिल पाने के लिए औरतों का अर्थोपार्जन-एक ज़रुरी बात रह गयी है। लेकिन इसी बीच उसे बहुत सारी तकलीफों को सामना करना भी पडा था।

4.2.18 दलित नारी का प्रतिशोध

संकुचित मनोवृत्ति और स्वार्थ के वशीभूत वैदिक काल उत्तरार्द्ध के आते-आते वर्ण व्यवस्था सिमटकर जाति व्यवस्था में परिवर्तित हो गयी। समाज में मनुष्य का स्थान और उसका सम्मान, उसके काम और उसकी उपलब्धी से नहीं बल्कि किस जाति और किस वर्ग में वह जन्म लेता है उससे आंकलन किया जाने लगा। इसी आंकलन में दलितों की गणाना की गयी है। जिससे समाज के मनोभावों में स्पष्ट भेद दिखाई पडता है। वस्तुतः कोई दलित होता नहीं, दलित पैदा होता है। दलित

---

[70] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.50

होना एक बंधन जैसा माना गया है। डॉ. भगवान दास कहार का कहना है कि- “दलित या शोषित वर्ग से तात्पर्य है एक ऐसे वर्ग,समूह या जाति विशेष का व्यक्ति अथवा वह जाति कि जिसके धन, संपत्ति, माल अधिकार एवं श्रम आदि का हरण किसी अन्य सत्ता-शक्ति-संपन्न वर्ग या जाति के द्वारा किया गया हो।”[71] दलितों को कमीने समझने वाले दलितेतरों पर प्रतिशोध चिरकाल से संपन्न है। कुसुम कुमार के ‘सुनो शेफाली’ में शेफाली हरिजन युवती है। शेफाली अपने दलित होने से कभी अपकर्ष दिखाती नहीं। इसके बदले दलितों पर देनेवाली सारी रियायतों पर आक्रोश उठाती है। क्योंकि ऐसी छूटें हरिजनों को एक विशेष-सामाजिक स्थिति प्रदान करती है जिसमें वह आजीवन बन्दी बन जाते है। शेफाली की बातें सुनें-

> “शेफाली : नहीं...गंभीर किस लिए? सब मुझसे रियायत ही रियायत करेंगे... फिर मुझे गम किस बात का? ...बचपन से लेकर अब तक घर से बाहर हर कदम पर रियायत ही रियायत सामने रखी मिलीं.....लेकिन हम तीनों बहनें कोई रियायत न लेती... हम क्यों कहें कि हमसे कोई ज्यादा है?”[72]

रियायतों की ओर मुँह मोडने वाली शेफाली अपनी जातीयता के नाम पर राजनीतिक उन्नति की ओर बढने में सत्यमेव दीक्षित को भी पराजित करती है। सत्यमेव अपने बेटे की शादी दलित शेफाली से कराकर, चुनाव में वोट बटोरने की सोच में था। लेकिन शेफाली अपनी जाति का लाभ उठाने को उद्धृत सत्यमेव की आशाओं में पानी फेर दिया है। नाटक में शेफाली दलितोद्धार के नाम पर होनेवाले पाखंडों का पोल

---

[71] दलित साहित्य और सामाजिक न्याय - डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, पृ.83

[72] सुनो शेफाली - कुसुम कुमार, पृ.22, 23

खोलती है। अपनी निचली आर्थिक, सामाजिक, वातावरण के बगैर वह प्रतिशोध करती है, जातिवाद के विरुद्ध।

4.2.19 नारी पर अत्याचार

पुरुष वर्चस्व समाज में नारी पर अत्याचार और एक कठोर सत्य है। ऐसा अत्याचार विशेष रुप से पति-पत्नि संबंधों में ही देखा जाता है। पति-पत्नि का संबंध एक सुन्दर ढाँचे में ढला हुआ है तो भी पुरुष प्रधान समाज की मानसिकता के कारण, अक्सर बिगड जाता है। मिथ्या आरापों के कारण, घर की चारदीवारी में वह पीडित होती है। महलिता शाक्तीकरण के इस युग में भी यह एक कटु सच्चाई है। ऐसा अत्याचार सिर्फ अनपढ और गरीब परिवारों में ही नहीं होते बल्कि पढे लिखे धनाढ्य लोगों के बीच भी ऐसा अत्याचार व्यापक है। 'सकुबाई' नाटक में सकुबाई इस पर कहती है-

> "सकुबाई- और फिर अनपढ लोग ही औरतों को नहीं मारते...पढे लिखे भी मारते हैं। एक दिन मेमसाहब को पता चल गया...और फिर वही हुआ...। उस दिन इतवार का दिन था। सुबह...सुबह काम पर आई तो देखा मेमसाब का मुँह सूजा हुआ है। (बाई आँख और गाल की तरफ इशारा करती है।) ऐसे...। ....ये सब सूजकर लेबल पर आ गया था।"[73]

मेमसाहब को पति से ताडना मिली है। नारी पर पुरुषों के कमीने आचरण का कोई देशकाल सीमा नहीं है। जब तक पुरुष वर्चस्व समाज से नहीं मिटेगा तब तक नारियों पर ऐसा अत्याचार ज़ारी रहेगा।

---

[73] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.39

निष्कर्ष

निष्कर्षत: हम कह सकते है कि हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श चर्चा का विषय है। एक ओर स्त्री विमर्श एक नारा है तो दूसरी ओर गंभीर चिंतन का विषय है। आज स्त्री-साहित्य की अपनी विरासत भी लगभग निर्मित हो चुकी है जिसमें विमर्श एक बहुमूल्य मायना रखता है। हिन्दी के प्रमुख महिला नाटककार कुसुमकुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में स्त्री-विमर्श ज्यादा मुखरित है। साथ ही नारी की असफलताओं का भी मर्मस्पर्शी रूप से अंकन हुआ है। नारी स्वत्व का खोज तथा नारी के आत्मविश्वास और आत्मसम्मान भरी गाथाओं का भी सूक्ष्म विश्लेषण उनके नाटकों में हुआ है।

कुसुम कुमार के नाटकों में 'सुनो शेफाली', नारी के आत्मसम्मान, आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास को प्रत्यक्षरूप में उकेरता है। नाटक नारी जागरण की ज़रूरत पर ज़ोर देता है। नारी दलित हो, निम्नवर्ग की हो या अशिक्षित अपने आत्मसम्मान को कायम रखने को बाध्य है-जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप 'सुनो शेफाली' में स्पष्ट परिलक्षित है। 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में सुषमा के माध्यम से अर्थाभाव से जूझने वाली, लेकिन आत्मसम्मान को संरक्षित रखने में अटल-अचल नारी का चित्रण है। अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के प्रति सजग नारियों का चित्रण इनके नाटकों में मिलती है। दलित और निर्धन नारी की विभिन्न समस्याओं का चित्रण कुसुम कुमार ने अपने नाटक 'सुनो शेफाली' तथा 'संस्कार के नमस्कार' जैसे नाटकों के माध्यम से किया है। निम्न मध्यवर्गीय औरतों की कष्टताओं को कुसुम जी ने 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' तथा 'लश्कर चौक' में गौर किया है। उनके नाटक स्त्री-विमर्श के तहत पर सक्षम निकली है नादिरा ज़हीर बब्बर परंपराओं तथा रूढियों में तडपती नारी की

कहानी को हमारे सम्मुख खडा कर दिया है। कुसुम कुमार के समान नादिरा, जी भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता के लिए संघर्षशील नारी को हमारे सम्मुख दर्शाती है। 'सकुबाई' नाटक में सकुबाई के ज़रिए के आत्मविश्वास की पराकाष्ठा दिखाते है तथा कैसे अपने प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझना है, यह भी दिखाते है। 'जी जैसी आपकी मर्जी' जीवन के विविध पहलुओं की नारियों के ज़रिए स्त्री शाक्तीकरण का रास्ता खोलता है। प्रस्तुत नाटक के सभी पात्र स्त्री समस्याओं का यथार्थ बयान देते है जो आज की यथार्थता का सीधा चित्रण है। समस्याओं में दबे रहने के साथ-साथ, उनसे मुक्त होने की नारी की उत्कट इच्छा का स्पष्ट एहसास नाटक देते है। पुरुष प्रधान भारतीय समाज में नारी के विलाप को अंकित करने में दोनों नाटककार सफल निकले है। साथ ही विविध पहलुओं की नारियों के अदम्य साहस और मनोबल भी इनके नाटकों द्वारा व्यक्ति किया है। अतः हम कह सकते है कि हिन्दी नाटक साहित्य में स्त्रीविमर्श के परिप्रेक्ष्य में कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक सफल तथा सक्षम दीख पड़ते है।

पाँचवाँ अध्याय

शिल्पविधान

साहित्य का व्यापक रचना संसार पढ और सुनकर तथा देखकर भोगा जाता है। इसी आधार पर नाटक को श्रव्य और दृश्य काव्य कहते है। दृश्यकाव्य नाट्य साहित्य का पर्याय है जो सामूहिक कलाओं के माध्यम से रंगमंच पर प्रदर्शित किया जाता है। भरतमुनि का विशाल नाट्यशास्त्र पंचम वेद के रूप में उपलब्ध है जो हमारी नाट्यशीलन की प्राचीन उन्नत परंपरा और रंगमंच के उत्कर्ष का परिचायक है। साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक में शिल्प पक्ष पर अधिक बल दिया जाता है। नाटक एक दृश्य काव्य होने के कारण ही ऐसा होता है। "शिल्पविधान के द्वारा ही कोई नाटककार अपने नाटक को रंगमंच और समय के अनुरुप बनाकर पाठकों तथा प्रेक्षकों पर अपेक्षित प्रभाव डालने के योग्य बना पाता है।"[1] शिल्प का संबंध किसी भी वस्तु निर्माण से होता है। किसी वस्तु के निर्माण में जो साधन प्रयुक्त होते है और जो विधियाँ अपनाई जाती है, उनका समुच्चय ही शिल्प कहलाता है। वस्तुतः शिल्प वस्तुनिर्माण की दस्तकारी है। समकालीन हिन्दी नाटकों में शिल्प बहुआयामी, प्रयोगशील और दृश्यत्व गुण संपन्न होने के साथ-साथ पाश्चात्य नाट्य-साहित्य के रंग आंदोलन से प्रभावित भी है।

हिन्दी मे प्रचलित शब्द 'शिल्प' अंग्रेज़ी के टकनीक शब्द का हिन्दी रुपांतर है। हिन्दी शब्द सागर में शिल्प को निम्न वर्गों में लिखा है।

---

1 समकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार- डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा, पृ.39

शिल्प संज्ञा (पु) सं.

1. हाथ से कोई चीज़ बनाकर तैयार करने का काम। दस्तकारी। कारीगरी। हून्नर जैसे बरतन बनाना, कपडे सीना, गहने कठना आदि।

2. कल संबंधी व्यवसाय- जैसे अब इस नगर में कई शिल्प नष्ट हो गये है।

3. दक्षता, परख्र, कौशल, चातुर्य

4. निर्माण, सृजन, सृष्टि, रचना

5. आकार, आकृति रूप

6. अनुष्ठान क्रिया, धार्मिक कृत्य।"[2]

रचनाकार की अनुभूति और रचना के कथ्य के अनुसार ही शिल्प निर्मित होता है- "शिल्प का महत्व मनोवेगों और भावों को स्पष्ट आकार देने में सिद्ध होता है। अच्छी रूप-विधा या शिल्प-विधि वही है जो वस्तु को सही समय सही परिप्रेक्ष्य में उचित ढंग से प्रस्तुत कर दे।"[3]

वास्तव में नाटक की रंगमंचीय क्षमता ही उसके शिल्पपक्ष को उजागर करती है। वान-ओ कॉनर ने शिल्पविधि को वह साधन माना है "जो लेख्रक को अपने अनुभव, जो वास्तव में विषय वस्तु होती है, प्रयुक्त करने को प्रेरित करता है। क्योंकि शिल्पविधि ही वह रास्ता है जिसके माध्यम से वह अपने विषय को ख्रोज सकता है, जाँच सकता है और विस्तार कर सकता है। इसी के माध्यम से वह उसमें अंतर्निहित भाव को अभिव्यक्ति कर सकता है। और उसका मूल्यांकन कर सकता है।"[4] शिल्प

---

2 हिन्दी शब्द सागर- सं. श्यामसुन्दर दास, नवाँ भाग, पृ.47-51

3 हिन्दी उपन्यास शिल्प : बदलते परिप्रेक्ष्य- डॉ. प्रेम भटनागर, पृ.13

4 Van O'Conner, Forms of Fiction's, p.9 (हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि- डॉ. आदर्श सकसेना, पृ.47)

का संबंध प्रत्यक्ष रुप से कला पक्ष से होता है तथा उसका रुप रचनाकार पर निर्भर करता है। शिल्प की विशेषताओं को अधिक स्पष्ट करते हुए डॉ. त्रिभुवन सिंह ने लिखा है, "जो कुछ मूल आता है निश्चित रुप से वह अनावश्यक है पर उस अनावश्यक को भी आवश्यक बनाकर उसे कला के अंग के रुप में प्रस्तुत कर देना शिल्प का ही कार्य है। कृति पढते समय जो पाठक को आवश्यक और अनावश्यक का बोध नहीं हो पाता और वह सब कुछ चावपूर्वक पढ जाता है उसके मूल से शिल्पगत आकर्षण ही होता है।"[5] शिल्प की शब्दगत तथा साहित्यक मीमांसा से स्पष्ट उभरता है कि शिल्प एक कौशल है। साहित्यकार अपनी बात को अधिक से अधिक प्रभावशाली रुप से संप्रेषित करने के लिए जो विधियाँ अपनायी जाती है, वही टेकनीक या शिपविधान है।

समसामायिक हिन्दी नाटकों ने कथ्य के नये क्षितिज का संस्पर्श मात्र नहीं किया बल्कि शिल्पगत क्षेत्र में भी नये रुप प्रस्तुत किये हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल के हिन्दी नाटकों के शिल्प विधान का लक्ष्य कथ्य को सशक्तता के साथ व्यंजित करना, नाटकीयता को तीव्रता से उभारना तथा कलात्मक कुशलता प्रदर्शित करता रहा है, इसके लिए समकालीन नाटककार प्राचीन भारतीय नाट्य परंपरा और पाश्चात्य नाट्य चिंतन से भी नाट्य तत्वों को ग्रहण अपने संप्रेष्य को सूक्ष्म अभिव्यक्ति दे रहा है। अधिकांश विद्वानों ने नाटक के तत्व के रुप में निम्नलिखित बातों को प्रमुख स्थान दिया है- वस्तुपक्ष, पात्र और चरित्र चित्रण, भाषा और संवाद तथा रंगमंचीयता। इन्हीं तत्वों के आधार पर कुसुमकुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों के शिल्पपरक विवेचन आगे ज़ारी है।

---

[5] हिन्दी उपन्यास, शिल्प और प्रयोग- डॉ. त्रिभुवनसिंह, पृ.282

5.1 वस्तुपक्ष

वस्तुतत्व नाटक का मूल ढाँचा, भित्ति या आधार होता है। नाटक का सबसे महत्वपूर्ण और रंगसापेक्ष तत्व वस्तु होती है। नाटककार अपनी कथावस्तु के द्वारा धर्म, अर्थ, काम की सिद्धी प्राप्त करना चाहते है। अपने मूलबिन्दु पर नाटककार की व्यक्तिगत अनुभूति, नाटक के स्वरुप में समाहित होकर, रसास्वादन के लिए वस्तु तत्व होती है। "नाट्यानुभूति सत्य, ज्ञान, संवेदना और सौन्दर्य को लेकर चलती है और उसका लक्ष्य जीवन का निर्माण करना होता है। नाटककार की चेतना जितनी व्यापकि होगी, उसकी नाट्यानुभूति भी उतनी ही प्रतिनिधिक होगी। नाटककार कल्पना के माध्यम में नाट्यानुभूति को कथावस्तु में संयोजित करता है।"[6] नाटक की वस्तु प्राण तत्व है। नाटक का मूलाधार होकर कथावस्तु नाटक की समस्त घटनाओं और कार्यों की पर्याप्त व्याख्या और अर्थबोध देती है। नाटक के माध्यम से जो कुछ कहा जाता है वह 'कथ्य' है अर्थात, 'वस्तु' है। घटनाओं के कालक्रम में अपेक्षित परिवर्तन करते हुए अथवा मन कल्पना से उदभूत घटनाओं को मिलाकर उनका नया अनुक्रम बनाना ही कथ्य या वस्तु है। प्राचीन आचार्य अरसु ने नाटक में कथानक को विशेष महत्व दिया है। उन्होंने घटनाओं के विन्यास को कथानक माना है। "कथानक कार्य व्यापार की अनुकृति है क्योंकि कथानक से यहाँ मेरा तात्पर्य घटनाओं का विन्यास है।"[7] नाटक की वस्तु प्राणतत्व है। वस्तु, जहाँ एक और नाटककार की कुशल रंगदृष्टि की कसौटी है, तो दूसरी ओर नाटक का केन्द्र बिन्दु है

[6] नाट्यचिंतन नये संदर्भ (नाटक की प्रासंगिकता)- डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल चन्द्र, पृ.37

[7] अरस्तु का काव्य शास्त्र- अनु डॉ. नगेन्द्र, पृ.20, 21

जहाँ नाटक के सभी तत्व सभी कलायें ऊर्जा ग्रहण कर सार्थक बनती है। नाटक में रंगमंच की सारी योजनायें वस्तु में ही नियोजित होती है।

स्वातंत्र्योत्तर परिवेश में प्राचीन सुदृढ कथानक के बदले, वस्तु चलन में नवीनता की खोज साबित होती है। क्योंकि नया परिवेश बोध और उसकी तीक्ष्ण् अभिव्यक्ति नाटक के कथावस्तु में नये प्रयोगों की ओर ले चलते है। परिवेश बोध की अभिव्यक्ति के रुप में समसामयिक नाटकों में आम आदमी की त्रासद भीषण ज़िन्दगी से लेकर सत्ता की विकृतियों तक को अनावृत किया गया है। “साठोत्तर हिन्दी नाटकों में शैली, शिल्प और विशेषकर कथ्य के इतने व्यापक, बहुमुखी और वैविध्यपूर्ण प्रयोग संभव हुए कि नाट्य रचना में आमूल परिवर्तन हो गया और नाटक की सफलता का आधार उसकी कथ्य रचना पर निर्भर हो गया।”[8] स्वतंत्रता के बाद सत्य और अहिंसा पर टिकी राजनीति का भयानक, क्रुरतम एवं विकृत रुप प्रकट हुआ जिसके मूल में अधिकार प्राप्ती की लालसा है। भ्रष्ट और असंगत परिवेश, जीवन मूल्यों का विघटन हिन्दी नाटकों का कथ्य बन गया। डॉ. चन्द्रशेखर का कहना है-“आधुनिक हिन्दी नाटक में तीव्र सरोकार से इस पर्यावरण का साक्षात्कार किया है और अपने रचना संकल्प को इससे जोडा भी है। विविध आयामी समकालीनता अपनी क्रूर मुद्राओं सहित पचासोत्तरी हिन्दी नाटक में उभरी है।”[9] वस्तुतः आज के नाटककार ने भोगे हुए यथार्थ को युगीन संदर्भों की साँचे में ढलकर हमारे सम्मुख रखने की कोशिश की है।

---

[8] समकालीन हिन्दी नाटकों में कथ्य चेतना- लव कुमार ‘लवलीन’- किताब का नाम- समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच-संपादक- डॉ. नरेन्द्र मोहन, पृ.45

[9] हिन्दी नाटक और लक्ष्मी नारायण लाल की रंगयात्रा- डॉ. चन्द्र शेखर, पृ.15

इसके पूर्ववर्ती अध्याय में कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर सभी नाटकों की कथाओं का परिचय संक्षेप में दिया गया है। अतः यहाँ नाटकों की विषयवस्तु पर विचार किया जायेगा।

5.2 चरित्र चित्रण

नाटक के प्रमुख तत्वों में पात्रयोजना एवं चरित्र-चित्रण का महत्वपूर्ण स्थान है। चरित्र चित्रण नाटक साहित्य की समस्त विधाओं में सर्वाधिक सशक्त एवं महत्वपूर्ण विधा है। वास्तव में चरित्र-सृष्टि नाटक और नाटककार दोनों की शक्ति एवं सामर्थ्य की महत्वपूर्ण कसौटी है। नाटक के माध्यम से नाटककार जो कुछ कहना चाहता है उसके लिए वह एक सशक्त कथानक रचना है। कथानक में जीवन की स्थितियाँ, घटनाक्रम और कार्यव्यापार को पात्र आत्मसात करके उनको जीता और झेलता भी है। नाटक में प्रमुख केंन्द्रीय पात्रों पर दर्शक की भावनायें जुडी होती है। और वही, प्रमुख पात्र नाटक के चरित्र कहलाते है। अतः चरित्र सृष्टि नाटक का महत्वपूर्ण पहलू है। यद्धपि पात्रों के चरित्रचित्रण में भ्रद्रता, औचित्य, जीवनगत विश्वनीयता तथा संगति का अपना-अपना महत्व है फिर भी बदलते परिवेश में चरित्र चित्रण में भी विभिन्न रीतियों का समागम स्वाभाविक है "नाटक के संदर्भ में पात्र निसंदेह नाटक का आधार है और यही वस्तुतः चरित्र को प्राप्त करता है। नाटककार इस पात्र में ही चरित्र भरता है।"[10] श्रेष्ठ नाटकों में सभी श्रेष्ठ चरित्र व्यावहारिक जीवन के बीच से उठाये जाते है जो सभी अंगों से पुष्ट होते है। बदलते मानवीय मूल्य का प्रस्तुतीकरण नाटक में पात्रों के ज़रिए होते है। नाटक में कथानक का चाहे कितना ही महत्व क्यों न हो चरित्र का महत्व सर्वाधिक है। इस प्रकार संपूर्ण चरित्र-

---

[10] साहित्य का श्रेय और प्रेय, जैनेन्द्रकुमार, पृ.81

सृष्टि नाटक की अपनी अनुभूति, जीवन दृष्टि और रंग अनुभव पर निर्भर करती है। पात्र का वास्तविक जगत की भांति अपना एक संसार है जिसमें वह जन्म लेता और कार्यरत रहता है।

5.2.1 पात्र और चरित्र की अवधारणा

हिन्दी नाट्य आलोचना के संदर्भ में 'पात्र' और 'चरित्र' शब्द प्रायः एक ही अर्थ में प्रयुक्त है फिर भी इनमें पर्याप्त भेद दिखाई देता है। पात्र का केन्द्रीय अर्थ है किसी वस्तु का आधार अथवा प्राप्त कर्ता। नाटक में नाटककार स्वयं पात्रों के विषय में कुछ नहीं कहता किंतु पात्र, संवाद विसंवाद तथा विभिन्न अभिनय मुद्राओं के द्वारा स्वयं अपने चरित्र को उद्घाटित करता है। नाटक के समस्त अभिकर्ता, नायक अथवा केन्द्रीय चरित्र से लेकर संदेशवाहक या प्रहरी तक मूलतः पात्र ही होते है और फिर अपने में उन्निहित संभावनाओं के आधार पर ही चरित्र बनते है। ऐसा भी कहा जाता है- "प्रत्येक चरित्र मूलतः पात्र होता है परंतु प्रत्येक पात्र अनिवार्यतः चरित्र नहीं होता।"[11] नाटककार मानवीय जिन्दगी से संबद्ध किसी घटना विशेष को चुनता है और उन घटनाओं के अनुकूल पात्रों को रूपायित करता है। नाटक का कथानक जीवंत पात्रों की कार्यव्यापार द्वारा ही प्रस्फुटित होता है। चरित्र-सृष्टि में नाटककार ने मनोविज्ञान की सहायता से चरित्रों को अधिक मानवीय बनाने का प्रयास किया है। "जीवन के अंतरंग का व्यापक अनुभव, लोक व्यवहार का ज्ञान, वस्तु व्यापार स्थिति, सूक्ष्म पर्यवेक्षण- शक्ति, जगत व जीवन के प्रति विकसित हुई अपनी मौलिक दृष्टि, मानव-जीव की व्याख्या और मनोविज्ञान की गहराई, रचनातंत्र के अभ्यास से प्राप्त

---

[11] समसामयिक नाटकों में चरित्र सृष्टि- जयदेव तनेजा, पृ.29

सिद्धहस्तता और लेखक के व्यक्तित्व के निर्माण करने वाले तत्वों-अध्ययन, पांडित्य, भावुकता, कल्पना आदि-का उत्कर्ष आदि समस्त गुणों व शक्तियों का समवेत परिचय हमें उसकी चरित्र-सृष्टि के द्वारा ही प्राप्त होता है।"[12] कलाकार अभिनय करने समय उस चरित्र को आत्मसात कर उसे रंगमंच पर साकार करता है। प्रत्येक नाटक में पात्रों का सृजन जीवन के विविध पहलुओं से होता है। चरित्र-सृष्टि में यह देखा जाता है कि पात्र अपने समय के स्वीकृत समाज व्यापी प्रतिमानों के प्रतीक है जो समय परिवर्तन के अनुकूल परिवर्तित दिखाई देता है। कलाकार का कालापत्तर ही रंगमंच पर होता है क्योंकि वह खुद को भूलकर पात्र में लीन होता है।

5.3 संवाद एवं भाषा

संवाद ही नाटक की कथावस्तु, पात्र, अभिनय आदि को विकासोन्मुख करता चलता है। संवादों की अपनी विशेषता होती है जिनके द्वारा यह कार्यव्यापार को अग्रसर करने में, चरित्रों को विकसित करने में सफल होता पाया गया है। नाटक के संवाद ही रंग प्रदर्शन की आत्मारुपी को धारण करते है और पूर्व प्रभाव के साथ संप्रेषित करते है। "कथानक की अभिव्यंजना एवं चरित्रों की प्रतिष्ठा का मूल आधार संवाद ही है। संवादों की सृष्टि में दो आवश्यक शर्तें अपेक्षित होती है-एक तो संवाद प्रभावोत्पादक ढंग से एक नाटकीय संगीत और दृश्य तत्व में वस्तु, घटना और चरित्र को संप्रेषित करें, दूसरे दर्शकों को स्वाभाविक सुस्पष्ट और आकर्षक लगने के साथ संवाद महज बोध प्रदान करें।"[13] संवादात्मक होना नाटक का स्वरुपगत लक्षण है। कविता, उपन्यास, कहानी की भाँती नाटक में वर्णन का समावेश नहीं किया जा

---

[12] भारतीय नाट्यसाहित्य- संपादक- डॉ.नगेन्द्र, पृ.312

[13] हिन्दी के प्रतीक नाटक और रंगमंच- डॉ.के.एन. सिंह, पृ.89, 90

सकता। संवाद सीधे पात्रों के जीवन से अश्लिष्ट रहती है जिससे नाटक में रचनात्मक संसार का निर्माण होता है। संवाद को पात्रों के विचारों से जोडकर अरस्तु ने अपनी राय प्रकट की है कि- “इसके अतर्गत, ऐसा प्रत्येक प्रभाव आ जाता है जो वाणी से उत्पन्न होता हो। इसके उपविभाग है- प्रमाण और प्रतिवाद, करुणा, त्रास, क्रोध आदि भावों की उदबुद्धि, अतिमूल्यन और अवमूल्यन।”[14] नाटक में संवाद आधार वस्तु की वाहिका मात्र न बनकर स्वयं आधार वस्तु बन जाता है। संवादों में नाटकीयता, संक्षिप्तता एवं क्षिप्रता, कथ्य की अभीष्ट वस्तु को स्पष्ट करने की सामर्थ्य, कथा विकास करते हुए उसका उद्देश्य व्यक्त करने की क्षमता आदि विशिष्ट गुण होते है। संश्लिष्टता, सर्वसुलभता एवं आकृष्ट करने की क्षमता पात्रानुकूलता सतर्कता, रोचकता, प्रासंगिकता एवं स्वाभाविकता आदि से उत्तम नाटक की सृष्टि कर सकता है।

संवाद की तरह ही नाटक में भाषा का भी महत्वपूर्ण भूमिका है। भाषा संस्कृति का एक प्रमुख अंग है और हर एक समाज के अस्तित्व का परिचायक भी है। संस्कृति चाहे ‘शिष्ट समाज की हो या लोक समाज की, अपने को भाषा के सहारे ही प्रकट करता है। नाटक और भाषा का संबंध कहते है। साहित्य अभिरुचि का एकमात्र साधन है भाषा। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में नाटक की भाषा अलग पहचान रखती है। भरत रत्न भार्गव की राय में-“चरित्र का सामाजिक वर्ग, उसकी शैक्षणिक पृष्ठभूमि, मानसिक स्थिति, तात्कालिक परिस्थिति, अन्य चरित्रों से उसका आंतरिक संबंध आदि चरित्र की अनेकानेक अवस्थायें उसके द्वारा बोली

[14] अरस्तु का काव्य शास्त्र- अनु. डॉ. नगेन्द्र, पृ.51

जाने वाली भाषा से ही व्यक्त होगी। अभिनेता की भंगिमायें और मुद्रायें उन शब्दों के अर्थों को अधिक सार्थक और संपूर्ण बनाने में सहायक सिद्ध होती है।"[15]

अन्य विधाओं की भाषा सुपाठ्य और विश्लेषण की भाषा होती है और इसकी सबसे बडी विशेषता है कि वह दृश्यत्व गुण संपन्न होती है उसके निजी रंग ध्वनि स्वर्थ और संकेत है, इन गुणों के माध्यम से वह दृश्यत्व उपस्थित करती है। नाटक की सफलता और सशक्तता भाषा के आधार पर ही अवलंबित होती है। "भाषा ही वह तत्व है जो नाटक को रूपायित करता है। उसी के माध्यम से नाटक का ढाँचा खडा किया जाता है। और उस ढाँचे के बीच घटना क्रम के विकास के साथ कथावस्तु का उद्घाटन, देश काल का निर्धारण और चरित्रों की स्थापना होती है। क्रिया व्यापार की प्रक्रिया चरित्रों के पारस्परिक संबंध और उनकी भावनाओं तथा प्रतिक्रियाओं का एहसास भी उस भाषिक संरचना से ही होता है।"[16] हिन्दी नाटकों की भाषिक संरचना का विकास भाषा पात्रानुकूल और स्वाभाविक होना चाहिए। भाषा के अन्तर्गति शब्दयोजना वाक्यविन्यास आदि गुण आते है। रंगमंच की भाषा अपने रंग ध्वनि, स्पर्श आदि संकेतों तथा संपूर्ण विशेषताओं, रंग संस्कारों के साथ संवेदों के शिल्प के नाटक आकार प्रदान करती है।

5.4 रंगमंचीयता

एक दृश्यत विधा होने के कारण, नाटक की जीवंतता और सार्थकता रंगमंच पर फलीभूत होने में है। अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक ही वह सामूहिक कथा है जो एक साथ अनेक लोगों से सीधा साक्षात्कार करती है और यह मंचीय प्रस्तुतीकरण

---

[15] कलावार्ता- संपादक-कमला प्रसाद, अंक 103, पृ.156, 157

[16] नाटक की साहित्य संरचना- गोविन्द चातक, पृ.111

के अभाव में संभव नहीं है। डॉ. नेमीचंद्र जैन की राय में- “नाटक का पूर्ण प्रस्फुटन और संप्रेषण मंच पर ही जाकर होता है। रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा प्राण प्रतिष्ठा के बिना नाटक को संपूर्णता प्राप्त नहीं होती। इसलिए रंगमंच से अलग करके नाटक का मूल्यांकन या उसके विविध अंगों पक्षों पर विचार अपूर्ण ही नहीं भ्रामक भी है।”[17] अतः नाटक सृजन का ध्येय ही रंगमंच होता है। इससे नाटक और रंगमंच का अभेद्य संबंध की गहनता समझ में आता है।

‘रंगमंच’ शब्द का कोशगत अर्थ है नाचना, गाना, नृत्य या अभिनय का स्थान। रंग और मंच संस्कृत भाषा के शब्द है रंगमंच के लिए रंगशाला, प्रेक्षागृह, थियेटर आदि शब्द प्रचार में है। ‘रंग’ का शाब्दिक अर्थ है ‘नाच’ और ‘मंच’ का ऊचा बना हुआ मंडप है। इस लिए रंगमंच का अर्थ है-“वह उच्च स्थान जहाँ पर रंगकर्मी नाच, नृत्य, नाटक आदि अभिनय कलाओं को प्रदर्शित किया जाता है।”[18] रंगमंच आज अंग्रेजी शब्द थियेटर का पर्यायवाची माना जाता है। थियेटर का रुप व्यापक है जिसमें नाट्यसाहित्य, प्रस्तुतीकरण, अभिनय, उपस्थापन, रंगशिल्प, रंगभवन, रंगशाला और नाट्यालोचन, सब समाहित है।

रंगमंच नाटक को अतिरिक्त आयाम देता है और उसे ज्यादा जीवंतता प्रदान करता है। “साहित्य के क्षेत्र में कविता, कहानी, उपन्यास आदि का संप्रेषण मुख्यतः आज मुद्रण के द्वारा होता है। किंतु जहाँ तक नाटक का सवाल है, उसके संप्रेषण का अपना एक अलग ढंग है जो अन्य विधाओं से बिलकुल भिन्न है। नाटक रंगमंच के माध्यम से ही संप्रेषित होता है। यही वैशिष्ट्य उसे अन्य साहित्य विधाओं से अलग

---

[17] रंगदर्शन- डॉ. नेमी चन्द्र जैन, पृ.15

[18] समकालीन हिन्दी रंगमंच- डॉ. रमिता गुप्त, पृ.19

कर देता है।"[19] नाटक की यह जीवंतता ही उसे कला की श्रेणी में रख्र देती है। जिस प्रकार एक कला के निर्माण में बहुत सारे अंगों का योगदान होता है उसी प्रकार रंगमंच को निर्मित करने में उनके साधनों का योग होता है। अभिनेयता, वेशभूषा, दृश्यबोध, दृश्ययोजना, प्रकाश व्यवस्था, धनिप्रभाव, रूप सज्जा, संगीत, नृत्य आदि रंगमंच के तत्व में आते है। नये कथ्य के माँग के अनुरूप वैविध्यपूर्ण नाट्यशैलियों के ज़रिए आज का रंग निर्देशक नये मंच सज्जा के माध्यम से नाटक को नवीन अर्थवत्ता प्रदान करते है।

5.5 ओम क्रांती क्रांती

5.5.1 वस्तुपक्ष

शिक्षा व्यवस्था में स्थित भ्रष्टाचार, बदहाली का मूर्तरूप ओम क्रांती क्रांती की वस्तुयोजना को शिक्षा अत्यंत प्रासंगिक बनाता है। नाटक की वस्तु महिला कालेज की विकृत शिक्षण व्यवस्था से संबद्ध है। शिक्षकों की मनमानी और दायित्वहीनता का इतना नंगा वातावरण नाटक की प्रासंगिकता बढाती है। छात्रों की विवशता और उनका विद्रोह जो परिवेश जन्य है, क्रांती उपस्थित करती है। मिसिस दानी जैसी अध्यापिकाओं को प्रस्तुत करके नाटक अपनी सामाजिक सरोकार को व्यक्त करता है। नाटक की शुरुवात में कुसुम कुमार कहती है- "तेज़ चलती हुई चौपट और अनियंत्रित हमारी शिक्षा व्यवस्था में क्रांती शब्द की ओर आज एक फूँक से ज्यादा कुछ नहीं है। क्रांतियाँ सामान्यतया परिवर्तन का आह्वान होती है। (नारों की बात नहीं कर रही) लेकिन क्लास रुम की क्रांतियाँ जिन्हें उकसाने का जिम्मेदार खुद

---

[19] रंगमंच, कला और दृष्टि- गोविन्द चातक, पृ.22

शिक्षक वर्ग है, पहले से ही अधिक जडता लाती है।"[20] नाटक की समस्त घटनाओं का केन्द्रबिन्दु एक महिला कालेज है। यहाँ की तीन लडकियाँ प्रबुद्ध युवा पीढी के प्रतीक है जो अध्यापिकाओं की योग्यता को मापने की शक्ति और सामर्थ्य रखती है। लेकिन शिक्षकों की स्थिति ऐसी नही है। पी.एच.डी जैसी उपाधियों के बावजूद भी, पढना एक शब्द उनको आता नहीं। यहाँ उच्चशिक्षित और बुद्धिमान और तथाकथित शोधार्थियों के प्रति कडा व्यंग्य किया गया है। और यह बताता है कि आज का विद्यार्थी बौद्धिक दृष्टि से अध्यापकों से आगे है। प्रस्तुत नाटक असल में दो बिन्दुओं पर ज़ोर देता है कि शैक्षिक क्षेत्र की मूल्यहीनता और नयी पीढियों की उद्वेलित अवस्था। ऊँची योग्यताओं के बावजूद भी अध्यापकों की अज्ञता शिक्षा व्यवस्था की मनमानी तथा भ्रष्टाचार की और इशारा है। अध्यापकों के चटोरे स्वभाव, साथ ही केंटीन की राह चलने वाले वनिता-व्यापार आदि का भी नाटक में उल्लेखन किये है। 'ओम क्रांती क्रांती' वस्तुगठन में अधिक रोचकता और प्रभावोत्पादकता लायी है। आम तौर पर प्रस्तुत नाटक विषय-चयन में बारीकी तथा सतर्कता बरतती है।

5.5.2 चरित्र चित्रण

'ओम क्रांती-क्रांती' में पात्र विषयानुकूल प्रस्तुत है। सभी पात्र नाटक की वस्तु की संप्रेषणीयता में सक्षम निकले है। नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण आगे है।

5.5.2.1 मिसिस दानी

'ओम क्रांती-क्रांती' नाटक का प्रमुख पात्र है मिसिस दानी। वह महिला कालेज की अध्यापिका के रूप में कार्यरत है। उचित योग्यता के अभाव में राजनीतिक

---

[20] छं मंच नाटक - ओम क्रांती क्रांती- कुसुम कुमार, पृ.263

सिफारिश जैसे हथकंड के माध्यम से उसने अध्यापिका का पद प्राप्त किया है। कैजुवल दृष्टिकोण से संपन्न मिसिस दानी अपनी अज्ञान का बोझ छात्राओं के ऊपर डालकर अपने अहं का परिचय देती है। मिसिस दानी का कथन-

> "तुम लोगों का सहयोग भी एक समस्या है मेरे लिए? सिर्फ मेरे चाहने से कि तुम लोगों का कुछ भविष्य बने...क्या होगा? उनके लिए खुद तुम्हें भी तो प्रयत्न करना होगा।"[21]

अपने कर्तव्य को भूलकर छात्रों पर आरोप लगानेवाली मिसिस दानी अध्यापकों की कर्तव्य हीनता का स्पष्ट रूप होती है। अपनी अकार्यक्षमता को छिपाने के लिए वह छात्रों पर आरोप लगाती है कि वे वक्त पर कक्षा में नहीं आती। मिसिस दानी सभी क्लास में समय पर नहीं आती है। तत्काल कॉपियाँ देकर कक्षाओं को तृप्त कराती है। कबीर पर पि.एच.डी किये मिसिस दानी को कबीर पर तटस्थ ज्ञान न रह जाती है। कबीर के बारे में छात्रों का संदेह वह दूसरी अध्यापिका से पूछकर निवारण करने की बात कहती है। छात्रों से यों कहती है-

> "शायद तुम्हें यह पता न हो कि कबीर बहुत सी बातें उलटबसियों में पिरोकर भी करते थे। ऐसे कुछ दोहों का अर्थ उलटा भी निकलता हो..ठीक है। मिसिस मंगला कबीर पर रिसर्च कर रखी है...मैं उनसे पुछकर तुम्हें बता दूँगी...कबीर निरक्षर थे या कुछ थोडे से पढे लिखे उन्हें ज़रूर पता होगा।"[22]

पढाने में रुचि न रखनेवाली मिसिस दानी में कर्तव्यनिष्ठाता का अभाव ही स्पष्ट परिलक्षित है। पचास मिनट के पीरियड में मिसिस दगानी आधा समय बीतने

---

[21] ओम क्रांती क्रांती- कुसुम कुमार, पृ.16

[22] ओम क्रांती क्रांती- कुसुम कुमार, पृ.21

पर ही कक्षा में आती है। वह छात्रों के लिए मज़ाक का विषय बन जाती है। असल में वह अपनी अज्ञता, कर्तव्यशून्यता, अकार्यक्षमता आदि का प्रतिरुप बनकर, कर्तव्य शून्य अध्यापकों का प्रतिनिधित्व करती है। यहाँ उद्वेलित नयी पीढी के छात्रों से सतर्क रहने की ज़रूरत की ओर इशारा करती है। छात्रों के भविष्य को लेकर खेलनेवाली मिसिस दानी जैसे अध्यापक पूरी शिक्षा-व्यवस्था के लिए अभिशाप है।

5.5.2.2 मेनका जोशी

मेनका जोशी प्रस्तुत नाटक की छात्राओं में एक है। एक अध्यापिका की बेटी होने के कारण ही वह सुसंस्कृत और अच्छी पली है। अन्य छात्राओं की अपेक्षा वह पढने में ज्यादा तत्पर है। दूसरों के हँसी मज़ाक से मेनका सहमत नहीं होती है। मेनका-

> "बकवास बंद कर अनू...पढ लेने दे।.. प्लीज पढ़ लेने दे।....आज बिल्कुल ब्लैंक हुँ मैं...।"[23]

पढाई में चाव रखने के साथ ही वह उज्जवल भविष्य की कामना भी करती है। इसीलिए वह अध्यापिकाओं का आदर-सम्मान खूब करती है। बाकी तीनों द्वारा अध्यापिका पर होनेवाली हँसी वह सह न पाती है। उनकी राय में अध्यापक आदर का पात्र होना चाहिए। फिर भी नाटक में मेनका जोशी मिसिस दानी पर टूट पडती है। अपने भविष्य पर खिल्ली उडानेवाले अध्यापकों की मनमानी वह सह न पाती है और वह भी मिसिस दानी पर टूट पडती है।

[23] ओम क्रांती क्रांती- कुसुम कुमार, पृ. 10

मेनका पूछती है- "आप हर प्रश्न इसी तरह स्थगित करके हमें टाल देंगी तो इस क्लास का आखिर क्या होगा?"[24]

यहाँ अध्यापिका की पाखंडता पर आक्रोश उढानेवाले युवावर्ग के रूप में मेनका जोशी चित्रित है। मेनका एक शांतशील स्वभाव की लडकी होकर भी अपने परिवेश के कारण विद्रोही ढहरती है। मेनका का पात्र नाटक में बहुत समीचीन भूमिका में उभरती है।

5.5.2.3 अनु

नाटक का एक ओर पात्र है अनु जो अपनी विद्रोही भावना से ओतप्रेत है। चार लडकियों में सबसे शरारती आदत की लडकी है अनु। कक्षा में पूरा समय बरबाद करने के पक्ष में नहीं है वह। मिसिस दानी जैसी अध्यापिकाओं की कक्षा में रहना वह पसंद न करती है। अध्यापकों की अज्ञानता पर वह सदा व्यंग्य करती रहती है। जैसे-

> "छोडो यार! वे पि.एच.डी कर ले चाहे, पि.एच.डी का बाप रहेगी तो वही जो वो है। पढाना एक शब्द नहीं आता! न फर्स्ट इयर में पीछा छूटा था, इससे ना अब सेकेंड इयर में उबरने देगी हमें।"[25]

अध्यापकों की निष्क्रियता से वे विद्रोही बन बैढती है। क्लास और कैंटीन एर साथ अटेंट करनेवाली अनु आज के उद्धेलित मानसिकता का परिचायक है। राजनीतिक मूखौटों पर भी वह सरासर व्यंग्य करती है। अनु की बात सुने-

---

[24] ओम क्रांती क्रांती- कुसुम कुमार, पृ.22

[25] ओम क्रांती क्रांती- कुसुम कुमार, पृ.10

"अब ये जनता नहीं, जनता की प्रतिनिधि है मीना देवी। प्रतिनिधि जनता नहीं होता और जनता प्रतिनिधि नहीं...आप समझती क्यों नहीं मीना देवी...प्रतिनिधि यदि जनता में बैठ गया तो जनता निधि और वह उसकी प्रति हो जायेगा।"[26]

यहाँ राजनीतिक साशिज़ों पर सजग नयी पीढी का प्रतिरूप है अनु। व्यवस्था के ऊपर आवाज़ उठानेवाली ताकत अनु जैसे पात्र के ज़रिए नाटक दर्शाती है। शिक्षक गण यदि सभ्य और कार्यक्षम नहीं तो छात्रवर्ग उसके विरुद्ध क्रांती उपस्थित करेंगे। अनु के माध्यम से नाटककार समाज में नयी पीढी की विचारगत तथ्य हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

5.5.3 संवाद और भाषा

ओम क्रांती, क्रांती शिक्षा पद्धति की अकार्यक्षमता पर लिखा गया नाटक है। इस नाटक में संवाद इतना तीक्ष्ण है कि खुद कथावस्तु संवादों से उदभूद होता है। अध्यापन केवल डिग्रियों के भंडार बनकर रह जाता है और छात्रों के सामने अपनी अयोग्यता के कारण शर्मिन्दा रह जाते है।

"थैलमा : डांड, लेकिन फिर भी बेचारे को मिसिस दानी में उतनी ही पडी होगी।...(उपहास के स्वर में) डॉ. मिसिस दानी...एम.ए, पी.एच.डी।

[26] ओम क्रांती क्रांती- कुसुम कुमार, पृ.35

अनु : (चिढी हुई) छोडो यार! वो पी.एच.डी करते चाहे, पि.एच.डी का बाप, रहेगी तो वही जो वो है। पढाना एक शब्द आता नहीं।"[27]

अध्यापकों की अज्ञता पर प्रखर व्यंग्य करनेवाले प्रस्तुत संवाद से नाटक की कथावस्तु अपने आप पोल खोलती है। इसके अलावा संवादों में व्यंग्यात्मकता बहुत अच्छे रुप से मिलती है। मिसिस दानी जैसे आदर्शहीन अध्यापकों पर नाटक सपाट व्यंग्य करता है, साथ ही राजनीतिज्ञों की जटिलता पर भी। छात्राओं के मनोवैज्ञानिक स्तर पर विश्लेषण तथा उनसे द्वारा ऐसे व्यंग्यात्मक संवादों की उपलब्धी नाटक को प्रासंगिक तथा मर्मस्पर्शी बना देता है। नाटक में भाषा भी व्यंग्यात्मक दीख पड़ती है। शिक्षा संस्था की भ्रष्ट नीतियाँ, अध्यापकों की कामचोरी, कर्तव्यनिष्ठता का अभाव, उनकी आदर्शहीनता आदि समस्याओं को उद्घाटित करने में भाषा की व्यंग्यात्मकता काम आयी है। प्रसंगानुकूल भाव भाषा में निहित है। शैक्षिक मूल्यहीनता को उजागर करनेवाली भाषा नाटक के कथ्य को आसानी से समझने में मददगार रही है। अपनी छात्रों के भविष्य की चिंता न करके सिर्फ अपनी स्वार्थता और बडप्पन के लिए काम करनेवाले अध्यापकों की मनमानी नाटक की भाषा में स्पष्टत झलकता है-

"मिसिस दानी : कडककर पूछ नहीं पाती? ... तुम्हें रोका किसने है? पूरी क्लास पूछती है जो उसे पूछना होता है...तुम भी पूछा लिया करते जो पूछना हो?... तुम्हारा घमंड तुम्हें सास लेने दे तभी तो उद्धार तुम्हारा भी हो?

---

[27] ओम क्रांती क्रांती- कुसुम कुमार, पृ.10

मेनका : मेरा घमंड मेरा ही उद्धार नहीं होने देगा ना मैम? मत हो मेरा उद्धार...आप दूसरी लडकियों का तो उद्धार की जिए? आपके हाथों उनका उद्धार भी नही होगा इतना निश्चित है।"[28]

इस तरह संवाद-भाषा की दृष्टि से प्रस्तुत नाटक स्तरीय दीख पडता है।

5.5.4 रंगमंचीयता

रंगमंचीय दृष्टि से ओम क्रांती क्रांती एक उत्कृष्ट नाटक है। नाटक दो दृश्यों में विभाजित है। इसलिए ही दो अभिनय स्थलों की ज़रूरत है। महाविद्यालय का क्लास रुम और वहाँ का स्टाफ रुम। मंच पर सीधा परिवर्तन करके इन दो अभिनय स्थलों का निर्माण कर सकता है। क्लास रुम के दृश्य में कुछ बेंच, डेस्क तथा छत पर पंखा लडका हुआ है। दूसरे दृश्य में दो तिपाइयाँ कुछ कुर्सियाँ कुछ पेपर, चाय के पथार्थे तथा ट्रे आदि सामग्रियों की ज़रूरत है।[29]

प्रकाश योजना में कोई खासियत दीख नहीं पडती। हर एक दृश्य के प्रारंभ में प्रकाश का होना तथा दृश्य की समाप्ती में अंधेरा की सूचना देता है। बीच में प्रकाश व्यवस्था की कोई सूचना नहीं है। नाटक में ध्वनि प्रयोग को उतनी प्रधानता नहीं है। बीच-बीच में बेल बजने की ध्वनि का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत नाटक रंगमंचीय तत्वों से तादात्म्य पाने के कारण मंच पर सफल निकला है। इस नाटक का प्रथम मंचन 11, 12 दिसंबर 1981 में पटना में हुआ। एम.ए अनसारी के निर्देशन में ही यह मंचन हुआ है। 1986 मार्च 8 विश्व महिला वर्ष के अवसर को

---

[28] ओम क्रांती क्रांती- कुसुम कुमार, पृ.17

[29] ओम क्रांती क्रांती- कुसुम कुमार, पृ.24

इस नाटक का मंचन हुआ था। इसके अलावा अनेक शहरों में प्रस्तुत नाटक का लगातार मंचन होता रहा है।

5.6 दिल्ली ऊँचा सुनती है

5.6.1 वस्तुपक्ष

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' दो अंकों में विभाजित नाटक है जिसका वस्तुपक्ष सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक धरातल पर सक्षम हुआ है। इसमें माधोसिंह नामक एक आम आदमी की रूदन कथा के ज़रिए लालफीताशाही, नौकरशाही, भ्रष्टाचार और आर्थिक विपन्नता से पीडित और दमित व्यक्ति की करुण कहानी का बयान प्रस्तुत है। मानवीयता का ह्रास भी नाटक में उभरा है जो प्रांसगिक है। सरकारी व्यवस्था का उपयोग मनमाने ढंग से करनेवाले अफसरों और उनकी इच्छानुसार बदलनेवाले कानून का प्रत्यक्ष उदाहरण नाटक में हम देख सकते है। वित्तमंत्रालय से सेवानिवृत्त माधोसिंह को अपने पेंशन के मामले में दम घुटते देखते है। कार्यालयों की मनमानी और उनका भ्रष्टाचार माधोसिंह को ठेस पहुँचाता है। अफसरों का स्वामित्व भाव और हृदयहीन व्यवहार माधोसिंह के पेंशन को नही उनकी ज़िन्दगी को ही स्थगित करती है। अर्थाभाव से उनका शहरी जीवन से विरक्ति, आर्थिक समस्याओं का सजीव बयान करता है। शासकीय कार्य प्रणाली और वहाँ काम करनेवाले कर्मचारियों के कामचोरी की प्रवृत्ति एवं लापरवाही तथा पारिवारिक उलझनों में फँस आम आदमी की व्यथा आदि सारी समस्यायें प्रस्तुत नाटक का विषय रहा है। "लेखिका ने इस सारी स्थिति के माध्यम से देश में चल रही नौकरशाही और लालफीता शाही का अत्यंत क्रूरता से वर्णन किया है। जिसमें हृदयहीनता और मानवीय संवेदना का अभाव दिखाई देता है। यह स्थिति नाटक को

समकालीन बनाकर सामाजिक और आर्थिक चेतना को मार्मिक ढंग से उजागर करती है।"[30] नाटक का शीर्षक सार्थक निकला है कि आम आदमी की दबी हुई आवाज़ दिल्ली अर्थात् सरकारी कार्यालयीय व्यवस्था तथा वहाँ के कर्मचारी वर्ग सुन नहीं पाते हैं। अर्थाभाव से उनके जीवन की तंगी हुई अवस्था, आर्थिक समस्याओं में जूझता आम आदमी का स्पष्ट एहसास देता है। "आधुनिक जीवन में अर्थ का महत्व सबसे ज्यादा है। अर्थाभाव के कारण जो प्रभावित होता है उसका मार्मिक चित्रण किया गया है। आर्थिक-समस्या के कारण माधोसिंह और कमला दोनों अपने परिवार के लिए चिंतित है।"[31] इस प्रकार, लालफीताशाही, भ्रष्टाचार, आर्थिक पराधीनता आदि समस्याओं के साथ-साथ मानवीयता का अभाव, परित्यक्ता नारी का मानसिक उलझन, ज़िन्दगी में बेआसरा हुए व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक भाव आदि से प्रस्तुत नाटक के वस्तुपक्ष अधिक स्तरीय तथा प्रासंगिक रहा है।

5.6.2 चरित्र चित्रण

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में पात्र अपने विषयानुकूल श्रेष्ठ निकले है। भ्रष्टाचार, लालफीताशाही में उलझता आम आदमी की दर्दभरी कहानी के अनुकूल ही पात्र सज्जित है। नाटक के प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण आगे है।

5.6.2.1 माधोसिंह

नाटक का प्रमुख पात्र है माधोसिंह। सरकारी नौकरी से सेवानिवृत्त एक साधारण आदमी की सारी परेशानियाँ माधोसिंह के ज़रिए नाटक में उभर कर आयी

---

[30] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना- श्रीमती विनोद जैन, पृ.63

[31] कुसुम कुमार नाट्यसाहित्य - दीपा कुचेकर, पृ.59

है। माधोसिंह अपने पेंशन के स्थगित होने के कारण उपजी सारी परेशानियाँ को झेलता है जो आम आदमी की विवशता भरी ज़िन्दगी को सूचित करती है। एक समझदार पति की भूमिका में वह सफल है। कमला शहर छोडकर आने में अपनी बेचारी व्यक्त करती है तो वह आश्वास दिलाता है-

> “कमला तुम मुझसे नाराज़ हो! जैसे मैं चाहता था तुमसे तुम्हारा शहर छुडवाना? अपनी मज़बूरियाँ हमें यहाँ लायी है। मैं भी पैसावाला होता जो।”[32]

अपनी बेटी नीति को वह जान से भी प्यारी मानता है और उसकी खुशी को सबसे ज्यादा प्रधानता देता भी है। बेटी पर अदम्य प्यार दिखानेवाला पिता का स्पष्ट एहसास नाटक देखते है। अपने परिवार से माधोसिंह का प्यार असीम और अपार है।

पैंशन ठीक करने केलिए पे एंड एकाउंडस के कार्यालय में गये माधोसिंह को सारे कार्यालयी भ्रष्टाचार का सामना करना पडता है। वहाँ की दफतर शाही माधोसिंह जैसे आम आदमी केलिए एक भीषण सत्य रह जाता है। दफ्तर के तमाम बुरे व्यवहारों के बावजूद भी माधोसिंह शांतशील होकर कभी विचलित नहीं होते है। निम्न संवाद इसका उदाहरण है-

“माधोसिंह : काम शुरू हो गया

मि.ए. : अब बस काम हीतो होगा पूरा दिन।

माधोसिंह : साठे ग्यारह बजे है।

---

32 छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है- कुसुम कुमार, पृ.168

मि.ए : अभी तो शाम पाँच बजे तक पहरा देना है यहाँ।

माधोसिंह : राम आपका भला करे। मेरा भी काम बस अब जल्दी कीजिए।”[33]

रिश्वत के बोलबाले में डूबा हुआ अफसरों और कर्मचारियों के बीच माधोसिंह अपने को जीवित स्थापित करने को बडी मुश्किले झेलता है। उनके सामने ज़िन्दगी की सारी परेशानियाँ खुद आती है और वह सबके सामने सकपकाता है। घर की तथा कार्यालय की परेशानियाँ उसे जीवन से घृणा उत्पन्न करतीं हैं। वह इस सच्चाई से समझौता कर लेते है कि इस दुनिया में सबसे बडा दुःख गरीबी है। अपनी कष्ट भरी ज़िन्दगी पार करने में विफल होनेवाला एक आम आदमी को हम माधोसिंह मे देख पाते है। बेटी की मृत्यु तथा पेंशन का अभाव माधेसिंह को मृत्यु की ओर खींच लेता है। माधोसिंह हमारे आसपास का आदमी ही है जो कार्यालयी व्यवस्था के पात्रों में पिसा हुआ है। माधोसिंह, वास्तव में एक शहीद है, जो लालफीताशाही तथा कार्यालयी भ्रष्टाचार के कारण शहीद हुए है।

5.6.2.2 कमला

माधोसिंह की पत्नी है कमला। जो नाटक की नायिका कहलाने योग्य है। वह नाटक भर अपनी अस्मिता का परिचय देती है। साधारण रहन-सहनवाली कमला अपने परिवार की खुशी को सबसे प्रमुख मानती है। अपने पति की खुशी और दुःख कमला साथ देकर, एक आदर्श पत्नी की भूमिका वह निभाती है। दिल्ली छोडकर गाँव आते वक्त वह उतनी खुश न यी लेकिन, अपने पति पर वह अपना दुःख

---

[33] छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है- कुसुम कुमार, पृ.181

दिखाती नही है। एक ममतामयी माँ के रूप में कमला नाटक भर नीति के प्रति अपना वात्सल्य दर्शाती रहती है। अपनी बेटी की खुशी अपने जीवन का लक्ष्य मानती है। निहित लिखित कथन में यह प्रकट होता है-"ठीक है बाबा ठीक है। तुझे अच्छा लगा ना बस तो फिर मेरा क्या है? तेरा मन ठिकाने पे रहे जहाँ, वही मैं खुश हुँ।"[34]

पति जब पेंशन के मामले में विषम संधि में फँसता है तब कमला उसके लिए आसरा बनती है। उन्हें सान्त्वना देकर सही राह में चलाने की हिम्मत कमला में थी। लेकिन जब पति और बेटी की मृत्यु हो जाती है तब वह थकी-हारी हो जाती है। पति की मृत्यु के बाद मिले पेंशन की रजिस्ट्री पाने में कमला असमर्थ हो जाती है। अपने पति के जान लेने के बाद मिलें पेंशन के कागज़ से कमला नफ्रत करती है। इस प्रकार नाटक में कमला एक आदर्श पत्नी, ममता भरी माँ तथा त्यागमयी औरत की भूमिका को संपन्न किया है।

5.6.3 संवाद और भाषा

संवाद और भाषा की दृष्टि से 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' अधिक श्रेष्ठ निकला है। संवाद इतना चुटीला है कि जिन्से पात्रों का परिचय मिलता है। क्योंकि सवाद पात्रों क सुक्ष्म अभिव्यक्ति के वाहक रह गये है।

"माधोसिंह : अरे वाह यह मैं क्या देख रहा हूँ? दिल्ली के बाहर कदम रखते ही नीति बिटिया तो कूलाचें भरने लगी है? चाय बनाकर अभी लाओं नीतिजी, अभी! देखों में कहता था ना, माहौल बदल जाने से इसका जी अच्छा होने लगेगा?

---

[34] छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है- कुसुम कुमार, पृ.169

"कमला : अभी दूसरा ही दिन है! और फिर यहाँ इतना ख़ुश होने को ही क्या? सारी उमर शहर में बितायी है, अब गाँव में तो बस दिन पूरे करनेवाली बात है।

माधोसिंह : भीतर की ख़ुशी का वास्ता न शहर से होता है, न गाँव से कमला उसका वास्ता अपने हालात से होता है- हालात से।"[35]

इसके अलावा नाटक का संवाद यथार्थपरक है। माधोसिंह के जीवन की यथार्थ अवस्था को संवाद उकेरता है। भाषा की बात कहें तो, भाषा पात्रानुकूल है। पात्रानुकूल भाषा कथ्य को सीधा संप्रेषणीय बनाती है। माधोसिंह जैसे निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन संघर्ष नाटक की भाषा में प्रदर्शित है।

"माधोसिंह : यही रहूँगा, यही मगना, रही सही ज़िन्दगी का दुःख्र-सुख्र अब तुम्हारे साथ ही करेंगा।"[36]

नाटक में प्रयुक्त भाषा माधोसिंह, कमला, मगन जैसे आम आदमियों के जीवन का दस्तावेज़ है। इसके अलावा अंग्रेज़ी मिश्रित भाषा का भी प्रयोग नाटक में मिलता है। पेंशन कार्यालय के कर्मचारियों से अंग्रेज़ी भाषा बोली जाती है। मुहावरेदार भाषा का भी प्रयोग नाटक की भाषागत विशेषतायें है।

5.6.4 रंगमंचीयता

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' दो अंक तथा पाँच दृश्यों में विभाजित है। नाटक में मगनलाल तथा माधोसिंह के घर, सरकारी कार्यालय तथा सरकारी अस्पताल अभिनय

---

[35] छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है- कुसुम कुमार, पृ.169

[36] छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है- कुसुम कुमार, पृ. 172

स्थलों के रूप में है। पहले दृश्य में एक कटआउट लगाकर मगनलाल तथा माधोसिंह के घर दिखाया है। मगन के आँगन में एक चटाई चौकी दिखाई देती है। यही सामग्रियाँ अन्य दो दृश्यों में भी दिखाई देती है। सरकारी कार्यालय का दृश्य प्रस्तुत करने के लिए चार मेज़ तथा चार कुर्सियाँ रखी है। सरकारी अस्पताल के दृश्य में डाक्टर को प्रत्यक्ष नहीं दिखाया है। मरीज़ों की कतार, पर्चियाँ ऊपर नीचे करना आदि स्वाभाविक वातावरण दृष्टव्य है। नाटक को एक साधारण मंच में परिवर्तन करके इन दृश्यों का प्रस्तुतीकरण साध्य है। नाटक में प्रकाश योजना उचित ढंग से मिलती है। दृश्य एक में कमला और मगन पर प्रकाश केंन्द्रित करके उचित लक्ष्य पर नाटक मंचन का निर्देश दिया था जो एक नयी शैली को अपनायी है। इसी तरह पाँचवाँ दृश्य में कमला को प्रकाशवृत्त में दिखाकर पात्र की प्रमुखता को भी दर्शाया है। बीच-बीच प्रकाश को मंद करके स्थिति की गंभीरता तथा दयनीयता को उभारा है। माधोसिंह और कमला की चिंता को उभारनेवाला अंधेरा आदि प्रकाश योजना के नये आयाम नाटक में मिल पाते है। ध्वनिप्रयोग की विशिष्टता नाटक में मिलती है। सरकारी अस्पताल से निराश होकर लौटते समय माधोसिंह को नेपथ्य से नीति के स्वर गूँजने वाले सुनाई पडते है। “पापा... पापा... प्लीज़... पापा...बताइए ना, मुझे भी पापा आपने क्या समझ लिया? आप पर बोझ हुँ पापा मैं...।”[37] नीति की आत्महत्या से आहत माधोसिंह और कमला की सिसकियाँ और रोने का स्वर प्रसंगानुकूल है। दृश्य परिवर्तन में भी ध्वनियोजना सफल ढंग से की है। मंचन की दृष्टि से ‘दिल्ली ऊँचा सुनती है’ अत्यंत सफल नाटक है। इस नाटक की रंगमंचीय कुशलता सराहनीय और आकर्षक है। “यह नाटक रंगमंच में बडा ओजस्वी सरोकार

[37] छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँची सुनती है- कुसुम कुमार, पृ.196

रखता प्रतीत होता है...यह नाटक रंगशिल्प की दृष्टि से प्रशंसनीय, सफल सक्षम है।"[38] नाटक की मंचीय क्षमता के कारण ही अनेक निर्देशकों द्वारा प्रस्तुत नाटक का मंचन हुआ है। 1981 में त्रिपुरारी शर्मा एवं रवि शर्मा के निर्देशन में श्रीराम सेंटर फार आट्स एडं कल्चर द्वारा नाटक का प्रथम मंचन हुआ। 1986 को इलाहाबाद में आधार शिला के ज़रिए अजय केसरी के निर्देशन भी हुआ। अशोक लखानी, तपनदास गुप्ता, थामस पाल, राजीव वर्मा जैसे ख्यातिप्राप्त निर्देशकों द्वारा नाटक का मंचन हुआ है।

5.7 संस्कार को नमस्कार

5.7.1 वस्तुपक्ष

कुसुम कुमार का एक कालजयी नाटक है 'संस्कार को नमस्कार' जिसका वस्तु चयन अपने व्यापक परिवेश के कारण सफल रहा है। नाटक अपनी सच्चाई एवं यथार्थता से पाठकों को स्तब्ध कर देता है। सच्चाई का यह पक्ष प्रबुद्ध और आक्रामक पाठकों को समाज का वह नग्न यथार्थ दिखाता है, जहाँ व्यक्ति शर्मिदा होकर मूक, स्तब्ध और असहाय खडा रह जाता है। कुसुम कुमार की कुशलता है कि समाज के धिनौने यथार्थ को भी हास्य-व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत करें और समाज में अपने को पिटा हुआ सा अनुभव करें।

दुष्चरित्र और दोहरे व्यक्तित्व वाला संस्कारचंद का नारी निकेतन की लडकियों के शोषण का मनोवेज्ञानिक धरताल पर विश्लेषण हुआ है। सूत्रधार इस नाटक के संदर्भ को व्यक्त करता हुआ कहता है। 'हमारे नाटक का संबंध संस्कृति से नहीं

---

[38] समकालीन हिन्दी नाटक- डॉ. जसवंत भाई, डी. पांडय, पृ.201

संस्कार से है'। साथ ही वह नही को पहले ही इस नाटक की मैन प्रोब्लेम है- 'सेक्स एक्सप्लाइटेशन' कह डाला है। कोमोबेन आश्रम की लडकियों को संस्कार भाई की सेवा में भेजती है। और उनके द्वारा उसे पिता कहलवाती भी है। संस्कार चंद भी लडकियों को बेटी पुकारता है और उन का शारीरिक शोषण करता है। यहाँ एक सामाजिक सच्चाई का नंगा रूप उभरता है जो चिर प्रासंगिक है। हमारी सभ्यता, हमारे संस्कार, हमारी रिश्तों का सत्यानाश तथा मूल्यों का विघटन आदि पर नाटक सही प्रस्तुतीकरण करता है। महिला आश्रम की वास्तविकता स्वतः लक्षित होती है। पाँचाली का दो बार बलात्कृत होने के बाद वहाँ भर्ती हुई है, जिसका मतलब आगे भी वह ऐसे वलात्कारों का हकदार है? नाटक ऐसे अनेक प्रश्न हमारे सम्मुख खडा कर देता है जिसका जवाब हम ढूँढते तो भी नहीं मिल पाता है। समाजसेवा की कपटता का स्पष्ट रूप नाटक में दिखाई देता है। मन में धूर्तता और वाणी में छद्म भरे समाजसेवकों की कपटता संस्कार चंद में स्पष्टतः झलकता है। इस संदर्भ में ऐसा एक कथन महत्वपूर्ण है-"दलित, पिछडे, कमजोर और तिरस्कृत वर्ग के प्रति गहन संवेदना और पक्षधरता का एक ओर परिणाम है संस्कार को नमस्कार। यह नाटक शोषण, उत्पीडन लाचारी से लाभ उठाने की अनैतिकता, भ्रष्टाचरण और ज्यादातियों आदि के कलास्तर पर प्रतिकार को रूपायित करता है। इसलिए इसमें सोद्देश्य का गहरा और गाढ़ा रंग है।"[39] निष्कर्षतः यह कह सकते है कि प्रस्तुत नाटक के वस्तु चयन कुसुम जी ने बारीकी से किया है। समाज के बाहरी और भीतरी परिवेश का अंतर हमारे मन में सफल रूप में छापने की उनकी दक्षता प्रशंसनीय है।

[39] हिन्दी नाटक और रंगमंच, समकालीन परिदृश्य- बजराज किशोर, पृ.124

5.7.2 चरित्र चित्रण

संस्कार को नमस्कार के नायक संस्कार की मूल्यच्युति ही मुख्य विषय है। इसे दर्शान को या संप्रेषणीय बनाने को उचित पात्रों का चयन हुआ है। नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र आगे विशद रुप से दिया है।

5.7.2.1 संस्कार चंद

प्रस्तुत नाटक का नायक है संस्कार चंद। वह एक महिलाश्रम का अध्यक्ष है और उस महिलाश्रम का आर्थिक स्रोत भी वही है। अपने समाज सेवा को चार चांद लगाने के लिए नारी-आश्रम चलाता है। लेकिन एक पोषक की आड में शोषक का काम ही संस्कार चंद करता है। यानि, आश्रम की कुवारियों का यौनशोषण ही उनका प्रमुख लक्ष्य है। दोहरे चरित्रवाले समाज सेवियों के प्रतीक के रुप में ही संस्कार चंद नाटक में उभरता है। श्रीमती विनोद जैन के अनुसार-"नाटक में नायक यूँ कहिए खलनायक, संस्कार चंद है जो दुश्चरित्र और दोहरे व्यक्तित्व के स्वामी है। उनके व्यक्तित्व का एक रुप सामाजिक नेता का है और दूसरा एक चतुर मनोवैज्ञानिक शोषण करता का। लेखिका ने इन दोनों रुपों को मनोवैज्ञानिक और दृश्यात्मक धरातल पर अभिव्यक्ति दी है।"[40] नारी निकेतन में भर्ती होनेवाली लडकियों के शक्ल और उम्र पर वह विशेष ध्यान रखता है। नारी निकेतन की संचालिका कामोबेन से वह अवैध संबंध रखता है जिसका दृष्टांत है दोनों साथ बैठकर होनेवाली हरकतें। कामोबेन की लडकियों को भी वह अपने शिकार बनाने का इच्छुक है जिसके लिए उन्हें देखने की इच्छा प्रकट करता है। एक कामार्त अधेड

---

[40] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना- श्रीमती विनोद जैन, पृ.59

उम्र के आदमी की सारी आदतें हम संस्कार चंद में पाते है। संस्कार चंद दिन में आश्रम की लडकियों के साथ बाप जैसा व्यवहार करता है और रात को उनका यौन शोषण करता है। यहाँ नैतिक मूल्यों से परे अपनी धुरी भावनाओं को मुख्य माननेवाली समाजसेवी के रुप में संस्कार चंद का चित्रण है। दिन और रात का भेद उनकी आदत में भरा हुआ है। रात को फलाहार तथा कीमती खाद्य चीज़ों को उपयोग में लानेवाला संस्कार चंद राज्य में अन्न की कमी पर आशंका प्रकट करता है। वह 'संयम को एक नियामक तत्व मानता है जो हमारे जीवन को खुश रखता है। लेकिन खुद संयमहीन व्यवहार वह नियंत्रित नहीं रख सकता है। अपने को भला, श्रेष्ठ और आदर्शयुक्त घोषित करनेवाला संस्कार चंद का चरित्र बिल्कुल प्रासंगिक है। क्योंकि बातों में और करनी में अंतर समाज-सेवकों का ट्रेडमार्क है।

जनता के भविष्य को अंधकार में रखनेवाला सुखलोलुप नेता का रुप संस्कार चंद का है। अपनी उल्लू सीधा करने के लिए नीच-से नीच काम भी करता है। कामोबेन से पत्नी जैसा व्यवहार करनेवाला संस्कार चंद एक धोखेबाज़ पति का रुप लेता है। आदर्शों को कपटता में बांधकर भाषण देनेवाला संस्कार चंद यों कहता है- "हमारा देश सीता सावित्री का देश है। अनुसूया और उर्मिला जैसी सन्नारियों का देश है। आप सब कामनाओं को अपनी इस परंपरा को बनाए रखना है-अपनी इस गौरवशाली संस्कृति को चलाये रखना है-बस इन्ही शब्दों के साथ मेरी इस यात्रा का प्रसंग भी समाप्त होता है प्रभु आपका कल्याण करें- आप सुखी रहे।"[41] गौरवशाली संस्कार पर कलंक लगानेवाले संस्कार चंद जैसे कलंकित व्यक्ति ही हमारे समाज के उत्थान के विघातक है। नाटक में संस्कार चंद बुराइयों का प्रतीक रहा है। उनके

---

[41] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.52

ज़रिए कुचरित्र और धोखेबाज समाजनेताओं के आचरण के अनुछुए पहलुओं पर कुसुम कुमार ने प्रकाश डाला है।

5.7.2.2 कामोबेन

नाटक में कामोबेन नारी निकेतन की संचालिका है। एक स्वार्थमयी, दुष्चरित्रवाली कामोबेन अपना काम निकालने के लिए संस्कार चन्द की सहायिका बनी है। उसके नाम की तरह काममय व्यवहारों से भरी औरत है कामोबेन। संस्कार चंद और उसके बीच का व्यवहार पती-पत्नी जैसे कार्य कलाप रह जाते है। संस्कार चंद का ख्याल रखना ही उसका प्रमुख लक्ष्य है। उनके गुणों का वर्णन उसके लिए परम आनंद प्रदान करता है। जैसे-

> "कामोबेन : संस्कार भाई आप तो सचमुच गुणों की खाने है, जाने क्या-क्या छिपा रखा है अपने-अपने में। आज हम आप से कुछ और भी सुनना चाहते है- थोडा उपदेश दीजिए इन नादान बच्चियों के लिए। कुछ ज्ञान बदाइए इनका, हम सबका।"[42]

संस्कार चन्द अच्छी तरह जानता है कि कामोबेन जैसी स्वार्थ और चरित्रहीन औरत ही उनके दुष्कर्मों की सहायिका रहेगी। लेकिन कामोबेन की चालाकी इसमें है कि संस्कार चंद की प्रीती पाने के लिए अपने ही वर्ग का ठगना जिससे उसकी प्रतिपात्र बन जाना। यहाँ राजनेताओं की पिट्टु बनकर कुटिल साशिजें करनेवाले अनुयायी वर्ग का कामोबेन प्रतिनिधित्व करती है।

---

[42] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.34

अपनी बेटियों को होस्टल में सुरक्षित रखकर पढाने वाली कामोबेन आश्रम की निरीह लडकियों पर बहुत बुरा व्यवहार करती है। यहाँ कामोबेन का चरित्र एक दोहरे, चालाकी, भूमिका में उभरती है। नाटक के एक संदर्भ में जब पाँचाली उसकी इच्छा पर न आती है तो उसको डाँटती है और पीटती भी है। एक क्रूर आश्रम संचालिका के साथ साथ अमानवीय व्यवहार की मूर्ती के रूप में कामोबेन हमारे सम्मुख खडी है। वह "स्त्रियों की विवशता का मूर्त चरित्र है जो खुद भी भ्रष्ट हुई और दूसरों को भी भ्रष्ट करती है।"[43] कामोबेन एक क्रूर संचालिका, स्वार्थमयी औरत तथा दुष्प्रवृत्तियों की मूर्ती सम नाटक में आद्यत अपने चरित्र का परिचय देती है।

5.7.3 संवाद और भाषा

संस्कार को नमस्कार में संवादों के माध्यम से अमंचनीय घटनाओं का खबर दर्शकों को दिया है। नाटक का मुख्य विषय यौन शोषण है, जिसका संवादों से अभिव्यक्ति प्राप्त है। संवादों के बल पर घटनाओं का वर्णन किया गया है।

"नटी : फिर भाईजान? अरे तुमसे कितनी बार कहा है, यहाँ बहनें भी है विद्यमान!

सूत्रधार : सो तो ठीक है, डार्लिंग! पर मैं...मैं...मुझसे।

नटी : क्या मैं.. मैं मुझसे लगी रखी है? छोडो तुमसे कुछ नहीं होगा, मैं बताती हुँ, बहनो और भाइयो! इस नाटक की मेन प्राब्लम है- सैक्स एक्सप्लाइटेशन! याने कि याने कि..."[44]

---

[43] नया नाटक : उदभव और विकास - नरनारायण राय, पृ.175

[44] संस्कार को नमस्कार-कुसुम कुमार, पृ.12, 13

ऐसे संवादों से नाटक ज्यादा संप्रेषणीय बन जाता है, जो नाटक के आस्वादन में लचीलापन लाता है। संवादों की अन्य विशेषता है पात्रानुकूलता। हर एक पात्र के अनुकूल बुने गये संवाद नाटक की स्वाभाविक गतिविधियों को मददगार रहे है। संवादों में द्विअर्थकता आद्यंत, एक विशेषता के रुप में मिल पाती है। संस्कार चंद जैसे पात्रों के द्विमुखी व्यवहार का उदघाटन ऐसे संवादों से मिल पाता है। जैसे-

"संस्कार : आश्रम से शहर कुछ दूर वो वैसे भी होना ही चाहिए।

पहला : हाँ महिलाओं का मामला है।

संस्कार : उनकी सुरक्षा का सवाल है।

दूसरा : फिर भी बाहर कोई बार्ड-बार्ड तो लग ही देना चाहिए।

तीसरा : बार्ड-बार्ड लगा दें तो तुझ जैसे लोग तो नारी केंन्द्र को पान की दूकान समझ ले आते-जाते..."[45]

संस्कार चंद के संवाद ज्यादा द्वयार्थक और क्लिष्ट है। उनके संवादों में एक कपट समाज सेवी छिपा रहा है। लवकुमार लवलीन की राय में-"नाटक में यत्र-तत्र द्विअर्थक संवाद है जो नाटक की वस्तु को मज़बूत आधर प्रधान करते है और नाटक द्वारा किये गये व्यग्यों का एहसास भी कराते है। अश्लिष्ट एवं अश्लील द्विअर्थक संवाद एवं हरकतों से त्रासद स्थितियों एवं विसंगतियों का बोध होता है।"[46] ऐसे संवादों से नाटक के कथ्य को बाधा के बदले गति मिलते है। भाषागत दृष्टि से भी संस्कार को नमस्कार ऊँचा स्थान प्राप्त किया है। नाटक के कथा की कुटिलता का

[45] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.26

[46] साठोत्तर हिन्दी नाटककार- लवकुमार लवलीन, पृ.155

स्पष्ट एहसास देनेवाले भाषा का प्रयोग मिलते है। संस्कार चंद के कपट-छल भरे अस्तित्व को नाटक के संवादों द्वारा प्रस्फुटीकरण होता है।

भाषा की दृष्टि से कहे तो नाटक के कथ्य की कुटिलता का स्पष्ट एहसास देनेवाली भाषा का प्रयोग मिलता है। सूत्रधार के ये शब्द सुनिए-

"प्यारे दर्शक समाज आप तो जानते है हमारा देश..यह प्यारा भारतवर्ष सदियों तक अपनी प्रेयसी अपने प्रेरणा, अपनी शक्ति यानी की अपनी संस्कृति का गुणगान करना आया है... और यह बेयारी संस्कृति! हमारी प्यारी भारतीय संस्कृति! ... करोडों कर्तव्यहीन, निकम्मे मजनुओं की अभिसारिका। इसकी तो बस एक चुप!"[47]

भारतीय संस्कृति के अधपतन को उभारनेवाली व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है। नाटक की भाषा स्तरीय भी और परिनिष्ठित दीख्र पडती है। नटी और सूत्रधार की भाषा के संदर्भ में ऐती स्तरीय भाषा मिलती है। संस्कार चंद की भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों का मिश्रण भी है। आम तौर पर नाटक में भाषागत विशिष्टता दीख्र पडती है।

5.7.4 रंगमंचीयता

'संस्कार को नमस्कार' पाँच दृश्यों में विभाजित नाटक है। प्रस्तुत नाटक में विविध दृश्यबंधों की सूचना नहीं मिल पाई है। दृश्य परिवर्तन के लिए सूत्रधार का प्रवेश और प्रस्थान की सूचना ही है। आरती के लिए याल, शराब की बोतल, शहद के कटोरे, चाय के ट्रे-तोबे के भगोने चरखे, घूँघरू ढोलक आदि सामग्रियों का

[47] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ. 11

सार्थक प्रयोग भी मिलता है। नाटक में प्रकाश योजना में विशिष्टता दीख पडती है। हरेक प्रवेश में प्रकाश-व्यवस्था की कोई सूचना नहीं देख पाती। प्रसंगानुकूल कभी प्रकाश डिम होता है- तो कभी उज्ज्वल। नाटक में दुविधाग्रस्त प्रसंगों में प्रकाश धीमे होते है या बिलकुल बंद। उदाहरण के लिए-"संस्कार उसे जबरदस्ती ओर पिलाता है। शक्ति बेसुध है। उसके ऊपर झुका हुआ संस्कार-इस चैत में पूरे होंगे-क्यों? हे न! (अंधेरा)!"[48] ऐसे प्रकाशयोजना में अलग तरीका अपनाया गया है। नाटक में ध्वनिप्रयोग सूत्रधार के हर प्रवेश में उचित ढंग से है। संस्कार चंद के आने-जाने की सूचना देने के लिए जीव के रुकने तथा स्टार्ट होने की आवाज़ मिलती है। पाँचाली के ढोलक बजने की, आवाज़, घूँघरु की आवाज़ जैसे ध्वनि प्रयोग मे ज़्यादा प्रयोग मिलता है। लडकियों को पीटने, मारने की आवाज़ भी सुन सकते है। कीर्तन मंडलियों के उपकरणों की आवाज़ वातावरण के अनुकूल बन बैठा है। नाटक में गीतों की योजना विशेष रुप से मिल पाती है। गीतों का संयोजन प्रसंगानुसार उचित ढंग से किया है। संस्कार चंद की आरती उतारने को तथा संस्कार चंद की प्रीति प्राप्ति के लिए सारे गीत गये गये है।

रंगमंचीयता की दृष्टि से 'संस्कार को नमस्कार' सफल सिद्ध हुआ है। नाटक अपनी विषय गरिमा के कारण चिर प्रासंगिक भी है। निर्देशक राजु ताम्हणकर के अनुसार यह नाटक रंगमंच की दृष्टि से अत्यंत उपयुक्त है। इस नाटक का प्रथम मंचन 18 मार्च 1982 को राजू ताम्हणकर के निर्देशन में कल्चरल सोसाइटी ऑफ राजस्थान द्वारा किया गया। इसके बाद रविशर्मा, विनोद शर्मा जैसे ख्यातिप्राप्त निर्देशकों को निर्देशन में भी नाटक का मंचन हुआ है।

---

[48] संस्कार को नमस्कार- कुसुम कुमार, पृ.47

5.8 सुनो शेफाली

5.8.1 वस्तुपक्ष

'सुनो शेफाली' एक ऐसा नाटक है जिसमें राजनीतिक छल कपट कथ्य के रूप में उभरता है। नाटक अपनी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवेश से संबंद्ध होकर भी अकेली नारी के संघर्ष को आवाज़ दी है। यहाँ कथानक पुराना न होकर समसामयिक और चिंतोद्दीपक रहा है। शेफाली नाटक के केन्द्र में है जो शिक्षित, आत्मनिर्भर है। सत्यमेव दीक्षित कपट सत्तामोही तथा कपटता का प्रतिमूर्ती है-जो राजनीतिज्ञों के छल-कपट का उत्तम दृष्टांत है। बकुल कायर, डरपोक, पिता का आज्ञाकारी है। इसके माध्यम से अस्तित्वहीन नवयुवकों की ओर इशारा है। शेफाली-सत्यमेव-बकुल पर केन्द्रित नाटक की वस्तु समसामयिक संदर्भों का परिचायक रहा है। शेफाली का विद्रोह नाटक के मूल में है जो ज्यादा प्रभावोत्पादक रहा है। वर्षों से मिलनेवाली रियायतों से, बकुल के कुटिल लक्ष्य भरे प्यार से और सत्यमेव की कुटिल षडयंत्रों से उनका विद्रोह नाटक के कथ्य को महत्वपूर्ण बना देता है।

एक तरफ शेफाली भ्रष्ट व्यवस्था और ढोंगी समाज सेवियों के साथ अकेली लडती है तो भी दूसरी तरह उसका भावुक मन भी हम देख पाते है। शेफाली द्वारा बकुल के प्यार का त्याग, एक ओर उसके उज्ज्वल भविष्य का त्याग है जो शोषिक और दलितों से नाकना प्यार दिखानेवाला सत्यमेव जैसे राजनयिक, नाटक को आधुनिक संदर्भ की ओर खींच लेता है। गांधीवादी विचार धाराओं का ह्रास नाटक में स्पष्ट परिलक्षित है। यह नाटक की प्रासंगिकता को दिखाता है। साथ ही सच्चे आदर्शो का अपचय नाटक दर्शाता है। नारी संघर्ष के साथ नारियों की आत्मनिर्भता

की माँग नाटक का प्रमुख लक्ष्य है। अपनी बहिन द्वारा पराजित होने पर भी शेफाली समस्याओं को साहस तथा मनोबल के साथ सामना करती है। मन्नन आचार्य ज्योतिष है जो कपटता का "नाटककार ने नाटक में समाज सेवियों के छल-कपट, टूटते हुए जाति बंधन, हरिजनों को मिलनेवाली रियायतें तथा मन्नन आचार्य जैसे झूठे ज्योतिषियों के ढोंग और पाखंड आदि को आधार बनाकर समकालीन समाज का प्रभावशाली चित्रण किया है।"[49] सुनो शेफाली नाटक में नारी शाक्तीकरण, राजनेताओं की कपटता जैसी बिन्दुओं को कथ्य के रूप में स्वीकार कर नाटक के वस्तुचयन में ज्यादा सतर्कता रखी है।

5.8.2 चरित्र चित्रण

एक नारी के आत्मसंघर्षा को यथार्थ रूप से उभारनेवाले नाटक में पात्र भी सशक्त तेवर को लेकर खडे है। नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण यहाँ किया है।

5.8.2.1 शेफाली

शेफाली नाटक की नायिका है। वह आत्मनिर्भर, आत्मसम्मान से युक्त दलित युवती है। अपनी जाती की कमी के बावजूद वह एक शिक्षित और आत्मविश्वास से सजग औरत के रूप में पूरे नाटक में देख पाते है। जातिवाद के बलबूते पर सब कुछ हडपनेवाले एक स्वार्थसमाज में निराली रह जाती है शेफाली। सत्यमेव दीक्षित उसके पास अंग्रेज़ी पढने के लिए आते है। शेफाली में निहित आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता सत्यमेव जैसे कपट सत्तामोही की असलियत पहचानने में मदद करती है। उसकी राय में हरिजनों के नाम पर देनेवाली रियायते असल में शासकों और

---

[49] कुसुम कुमार का नाट्यसाहित्य- दीपा कुचेकर, पृ.55

राजनीतिज्ञों के छल-कपट और राजनैतिक साजिशों का परिचायक है। वह मानती है कि उनके द्वारा की जानेवाली नीतियों के पीछे दलितों के सुधार न रहकर राजनीतिज्ञों के सुधार ही है। वह कहती है-

"बचपन से लेकर अब तक घर से बाहर हर कदम पर रियायत ही रियायत समाने रखी मिली। ...हमें सिर्फ स्वीकारना होता था यह कहकर कि हम हरिजन है... स्कूल में पढते तो खाना, कपडा, कॉँपी, किताब, सब पर रियायत...बल्कि सब कुछ मुफ्त.. सिर्फ कह भर तो कि हम हरिजन है..."[50]

रियायत के प्रति उनका विद्रोह असल में व्यक्तियों की कूट नीतियों पर है। शेफाली अपने व्यक्तित्व को कभी किसी के सामने पराजित न करने देती है। चाहे किसी भी जाति का हो, वह मानवीयता पर विश्वास रखती है।

शेफाली अपनी नियति से ज्यादा अपनी करनी पर विश्वास रखती है। इसीलिए ही वह दलित होने पर भी अपने आत्मसम्मान को गिरवी रखना न चाहती है। सत्यमेव दीक्षित के लक्ष्य को ठीक तरह से समझी शेफाली, अपनी गरीबी और जातीयता के बावजूद भी अमीर और अपने को सबसे प्यारा बकुल को छोडने को निश्चय करती है। अपने प्यार को भी स्वार्थता की दृष्टि से परखनेवाले बाप-बेटे के सामने हार मानने को तैयार नहीं होता है। यहाँ सेफाली एक आदर्शवदी के ढाँचे में ढले दीख पडते है। दीपा कुचेकर की राय में- "अकेली और निहत्थी होते हुए भी व्यवस्था विरोध के प्रति उठाई हुई आवाज़ में शेफाली की निश्चित रुप में विजय

---

[50] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.22, 23

है।”[51] यहाँ व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाली एक शिक्षित और आत्मनिर्भर युवति को, शेफाली में देख पाते है। चुनाव जैसे मापदंडों पर भी वह करारा व्यंग्य करती है। नाटक में मन्नन आचार्य से एक बहन के रिश्ते वह कायम रखता है। एक प्यारी बेटी की भूमिका में भी शेफाली नाटक में अपना परिचय देती है। शेफाली द्वारा सत्यमेव और बकुल के राजनीति तंत्र का पराजय एक हद तक विजय पा रहा था लेकिन अपनी बहिन किरण बकुल से शादी करके उसे हराती है। शेफाली एकदम अंधी ठहर जाती है। इस प्रकार शेफाली के माध्यम से कुसुमजी ने व्यवस्था पर विद्रोह करनेवाली आदर्श चरित्र को उद्घाटित किया है। आत्मविश्वास और आत्मसम्मान को शास्त्र बनाकर अन्याय के विरुद्ध लडी शेफाली ने, नाटक में एक व्यक्ति पात्र के रुप में उज्ज्वल भूमिका निभायी है।

5.8.2.2 सत्यमेव दीक्षित

‘सुनो शेफाली’ का और एक मुख्य पात्र है सत्यमेव दीक्षित। कपट राजनेता के रुप में अपनी कुटिल नीतियों का वह परिचय देता है। सत्यमेव कपट-सत्तामोही राजनेता के रुप में सामने उभरता है। दलित शेफाली और अपने बेटे के प्यार को, ब्राह्मणजात, सत्यमेव दीक्षित एक वरदान मानते है। क्योंकि दानों की शादी होने से उनके राजनीति का भविष्य उज्ज्वल बन जायेगा। दलित शेफाली के पास अंग्रेज़ी पढने को सत्यमेव तैयार होते है जिसके दो लाभ है- अंग्रेज़ी पढना, साथ ही हरिजन लडकी से संबंध रखने से उनको प्राप्त ख्याति। यहाँ एक छल-कपट भरे राजनेता का रुप उसमें देख सकते है।

---

[51] कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य- दीपा कुचेकर, पृ.52

अपनी राजनीति के भविष्य जानने को वह ज़्यादा उत्कट दिखाई देते है। अपनी महिमा खुद कहनेवाला वह मन्नन के पास आता है और भविष्यवाणी सुनना चाहता है-

"सत्यमेव - ठीक कहा आपने मन्नन देव जी! एकदम ठीक कहा...रूपये में सौ पैसे ठीक कहा आपने। राजनीति पर जीवन न्योछावर कर देने वालों के पास फुर्सत नाम की चीज़ भी नहीं होती।"[52]

मन्नन जी सत्यमेव की कपटता जल्दी पहचान लेता है और उस पर व्यंग्य का बाण करते है। मन्नन का यह कथना सत्यमेव दीक्षित की धोखेबाज़ी तथा सत्तामोह को स्पष्टतः उभारता है।

"मन्नन - वधु यानी आपकी समाज सेवा और वर जिसके हाथ में आप अपनी कन्या का हाथ देने जा रहे है।...आपका वह चुनाव देवता! समाजसेवा वेड्स चुनाव देवता! दोनों मिलकर करेंगे देशसेवा। खायेंगे दीक्षित एंड कंपनी खूब फलमेवा! फूल बरसायेंगे ऊपर से मनन दे! अब तो आया समझ में?"[53]

प्यार, शादी जैसे पवित्र मामलों को भी अपने स्वार्थ के तहत उपयोग में लानेवाला सत्यमेव प्रसंगिकता रखनेवाला एक चरित्र रह जाते है। मिस साहब के पास आकर अपने बेटे से शादी के लिए शेफाली को मंजूर करवाने की उनकी कोशिश एक अस्तित्वहीन आदर्शहीन व्यक्ति के रूप में उसे पतित बनाता है। अंत में,

52 सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.31

53 सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.32

सत्यमेव दीक्षित सत्तामोही, पाखंड तथा आदर्शहीन राजनेता के तौर एक कालजयी पात्र रह जाता है।

5.8.3 संवाद एवं भाषा

संवाद एवं भाषा की दृष्टि से सुनो शेफाली अधिक महत्वपूर्ण है। भावों की तीव्रता संवादों की विशेषताओं में एक है। ऐसे होने से पात्र की सूक्ष्म मानसिकता दर्शकों में सीधे पहुँचती है-

"शेफाली : बस करो अम्मा बस करो! तुम अभी जात-बिरादरी के सपने देख रही हो...बचपन से लेकर अब तक जिन जात बिरादरियों के लिए मेरी आँखों से क्षोभ का लावा निकलने तुमने देखा है उसी को फिर तुम उद्दम पेंटू दायरों में खडा करके देखने लगती हो?... शायद तुम कुछ और सोचती हो... तुम सोचती हो अम्मा, मेरे इस जूठे शरीर का क्या होगा? इसका कुछ नहीं बिगडा... कुछ नही...कुछ बिगडा है तो मेरे अंतर... मेरे अंतर बहुत कुछ बिगड गया माँ! जो इतनी जलदी न बिगडता शायद तो अच्छा था।"[54]

बकूल के प्यार की कलंक से कलुषित शेफाली की मानसिकता को उभारने में यहाँ संवाद सक्षम निकले है। लंबे विश्लेषणात्मक संवाद तथा छोटे छोटे संवाद का भी प्रयोग हुआ है। प्रसंगोचित भाषा का प्रयोग नाटक में मिलता है। दलित युवती द्वारा तथाकथित कपट राजनीति पर विद्रोह देख जाता है। ऐसे प्रसंग को उचित

---

[54] सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.39

भाषा से प्रस्तुत किया है। भाषा की ओर एक विशेषता है अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग। शिक्षित शेफाली के कथनों में अंग्रेज़ी शब्द ही मिलते है।

5.8.4 रंगमंचीयता

'सुनो शेफाली' एक सफल रंगमंचीय नाटक है। छह दृश्यों में नाटक बांटा गया है। इसमें प्रमुखतः चार अभिनय स्थलों की ज़रूरत है। नदी का घाट, मन्नु आचार्य का डेरा, शेफाली का घर तथा मिस साहब का घर। मंचीय व्यवस्था में कुछ बदलाव लाकर इन स्थानों का आविष्कार किया हुआ देख पडता है। मन्नन आचार्य के डेरे में एक पिंजरा है, नदी के घाट में चार सीढियाँ भी है। दोनों दृश्यों को बाँस के पार्टीशन से विभाजित किया है। यहाँ चंद सामग्रियों का इस्तेमाल करके दृश्यात्मकता को ज्यादा प्रभावोत्पादक बनाया है। प्रकाश योजना की दृष्टि से अलग शैली का प्रयोग नाटक में मिलता है। हर एक दृश्य के प्रारंभ प्रकाश का आना और अंत में अंधेरा का प्रयोग दीख पडता है। दृश्यों के बीच में कथ्य को गति देने के लिए प्रकाश का उचित उतार-चढाव देख पाते है। पाँचवाँ दृश्य में प्रकाश योजना के ज़रिए एक दृश्य की पूरी योजना की है। नाटक के अंत में अंधेरा है जो नाटक का अंत सूचित है और उससे ज्यादा शेफाली की मानसिक व्यथा की कठोर अवस्था को सूचित करता है। प्रकाश योजना की दृष्टि से नाटक में नये प्रयोग देख सकते है।

ध्वनिप्रयोग नाटक में अपेक्षित मात्रा में मिलता है। कथ्य को गति देने में यह सफल निकले है। कीर्तन ध्वनि का प्रयोग उचित रूप से मिलते है। प्रसंगानुसार कीर्तन की आवाज़ धीमा और ऊँचा करती है। पक्षियों का स्वर लहरों के बहने का स्वर आदि भी बीच में सुनाई देते है, गीतयोजना नाटक की ओर एक खूबी है।

नाटक में चार-पाँच गीत है। चारों अपने प्रसंगानुकूल उचित मायना रखती है। मन्नन आचार्य का एक गीत है जो नाटक के कथ्य को सीधे संप्रेषण में उपकारी है।

"चलो छोडो! पीर पैंगंबर-महात्मा बगैरह-बगैरह
यह सब नाम है नाव!
जिन का चप्पु तक नहीं में ऐसा-गौरा!
और तुम कहती हो
मेरा उद्देश्य कुछ ओर है वेश कुछ और
मुझे देखकर तुम्हें याद आता है पीर कोई
बगैरह-बगैरह...।।"[55]

मन्नन आचार्य के व्यक्तित्व को उभारने में प्रस्तुत गीत उपकारी सिद्ध हुआ है। 'सुनो शेफाली' नाटक का अनेक, निर्देशकों द्वारा मंचन, नाटक की सफल रंगमंचीयता का प्रमाण है। "रंगमंचीय दृष्टि से यह नाटक अपेक्षाकृत अधिक गाहरी रंगानुभूति से परिचय कराता है। केवल मंचीय प्रस्तुति के समय नाटक के मंच विधान में कहीं कठिनाई उत्पन्न हो सकती है जिसे निर्देशकीय कुशलता से पार किया जा सक्ता है।"[56] नाटक का प्रथम मंचन गुलशन कुमार के निर्देशन में हुआ था। दिल्ली श्रीराम सेंटर द्वारा नाटक का कई बार मंचन हुआ था।

5.9 पवन चतुर्वेदी की डायरी

5.9.1 वस्तुपक्ष

पवन चतुर्वेदी की डायरी अस्तित्ववाद के आधार पर लिखा गया नाटक है। कुसुम कुमार के अन्य नाटकों से भिन्न एक अलग पहचान प्रस्तुत नाटक को है

---

55 सुनो शेफाली- कुसुम कुमार, पृ.44

56 साठोत्तरी हिन्दी नाटककार - लवकुमार लवलीन, पृ.152

जिसका कारण नाटक की वस्तुयोजना की पृथकता है। यह एक ऐसी डायरी है जिसमें पवन चतुर्वेदी की समस्यायें से भरी हुई है और उनकी ज़िन्दगी के बारे में हमसे बताती है। परिस्थितियों से जूझकर अपने में सिमट, थका-हारा आम आदमी नाटक के केन्द्र में है। अस्तित्वबोध के संकट का सबसे तीखा और प्रभावशाली रूप इस नाटक के माध्यम से कुसुम जी ने दर्शाया है। परिवेश के भंवर में डूबे हुए एक व्यक्ति की संवेदना का प्रस्तुतीकरण नाटक का प्रमुख लक्ष्य है। यहाँ पवन अपने पारिवारिक और आर्थिक सीमाओं के बाहर नहीं जा पाता है। फिल्मस्टार बनने के उद्यम में पवन का हार जाना एक आम आदमी की महत्वाकांक्षा की हार रह जाती है। शहर में ख्यातिप्राप्त डॉ. चतुर्वेदी का पुत्र पवन चतुर्वेदी का जीवन में असफल रह जाना व्यक्ति की नियति के नियामक परिस्थिति पर सोचने को हमें बाध्य बनाते है। यहाँ एक तथ्य उभरता है कि पिता की प्रसिद्धी या घर का संभ्रांत वातावरण व्यक्ति का नियामक तत्व नहीं रह जाता। "कुसुम कुमार का नवीनतम नाटक 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' एक विख्यात और लोकप्रिय बाप के अत्यंत साधारण बेटे की कारुणिक परिणति को लेकर लिखा गया है। ...यह दर्शाता है कि पवन नामक युवक अपनी सारी धाराणाओं और लक्ष्यों के बावजूद असफल रहता है।"[57] सुषमा और पवन के बीच 'इला' का आना पारंपरिक मूल्य विघटन का द्योतक है। पिता और बेटे के 'लव एंड हेट रिलेशनशिप' के ज़रिए पीढियों का अंतर यहाँ देखने को मिलता है। ऐसा एक सामाजिक यथार्थता नाटक को कालजयी बनाता है।

आर्थिक पराधीनता में जूझनेवाला तथा अपनी पत्नी का गर्भच्छेद करानेवाला पवन आर्थिक समस्याओं में जूझता नयामानव है जिसके सामने परिस्थितियाँ फीका

[57] हिन्दी नाटक और रंगमंच: समकालीन परिदृश्य- ब्रजराज किशोर, पृ.124

रह जाती है। पवन की आर्थिक पराधीनता वर्तमान आम आदमी के कमज़ोर आर्थिक धरातल की ओर इशारा है। 'शेयर मार्कट' नाटक में पूंजिपतियों के बोलबाले की ओर इशारा करता है। शेयर मार्कट का एजेंड मेहता और उनके द्वारा पैसे की सत्ता पर ज़ोर देकर, सामाजिक व्यवस्था में अर्थ का महत्व प्रतिपादित करता है। पवन और सुषमा के बीच भी, यह अर्थ ही एक महत्वपूर्ण चीज़ रह जाता है। अन्य मध्यवर्गीय औरतों की तरह वह भी अपने पति का बड़प्पन अल्प लोगों को बतायें लेकिन पवन निठल्ला तथा निकम्मा रह जाने के कारण सुषमा की सारी आशा-आकांक्षाओं पर पानी फिर जाता है। फलस्वरुप पवन और सुषमा में मतभेद तथा झगडा शुरू होता है जो उनके अलगाव का कारण बन जाता है। यहाँ परंपरागत पारिवारिक विघटन को सूचित करता है। पिता की मृत्यु के बाद पवन का आत्मपहचान नाटक में मील का पत्थर है। व्यक्ति के जीवन और उनके द्वारा लेनेवाले निर्णयों पर एक पुनर्चिंतन, नाटक में स्पष्ट परिलक्षित है। कुल मिलाकर हम कह सकते है कि 'पवन चुतर्वेदी की डायरी' अपनी वस्तुयोजना में महत्वपूर्ण उभरा है। एक व्यक्ति के आंतरिक तथा बाह्य संघर्ष को उभारने में नाटक सक्षम निकला है।

5.9.2 चरित्र चित्रण

'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में व्यक्ति की असफलता को ऊपर उठाया गया है। इसमें पात्रों की संख्या सीमित है। प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण आगे चर्चित है।

5.9.2.1 पवन चतुर्वेदी

इस नाटक का नायक है पवन चतुर्वेदी। नाटक के केन्द्रपात्र की भूमिका में पवन चतुर्वेदी ने अपने चरित्र को अविस्मरणीय बना रखा है। एक असफल व्यक्ति

के रूप में पवन के चरित्र ने नाटक में कामयाबी मिली है। नाटक के आरंभ में पवन एक जर्जर पुस्तकालय में दीख पडता है। उस पुस्तकालय और वहाँ के गंभीर दार्शनिकों की किताबें उनकी ज़िन्दगी की क्लिष्टता का परिचायक है। पवन के चरित्र की विशेषता है अत्यधिक महत्वाकांक्षी रहना। एक फिल्म स्टार बनने की उत्कट इच्छा उनकी पूरी ज़िन्दगी को बरबाद करता है। बि.एस.सी में पढते वक्त फिल्म स्टार बनने की उद्यम से पवन बंबई जाता है। लेकिन कामयाब नहीं होता है। यहाँ शुरू होती है पवन की असफलता की कहानी। एक लोकप्रिय बाप का बेटा होने पर भी पवन की ज़िन्दगी पराजित रह जाती है। बाप के बडप्पन से पवन का जलन उनकी थोथी मानसिकता का परिचायक है। ऐसे एक ख्यातिप्राप्त बाप का बेटा होने के कारण, वह बाप से अपनी मन की बात कहता है-

"पवन : आपका बेटा हुँ, यही सबसे बडा गुनाह है मेरा! मुझसे हर असाधारण चीज़ की आशा की जाती है।... यहाँ हर कोई अपने से प्यार करते है...और जो बडा है उसे तो बस अपने बडप्पन को बरकरार रखना है...जैसे आप! आपका बडप्पन मुझे कुछ दे नहीं सकता, तो मुझसे कोई आशा क्यों करता है? मैं जैसा हुँ, जिस हाल में हुँ, अच्छा हुँ।"[58]

यहाँ पवन के अंतरमन की व्यथा तथा पिता से जो अमर्ष दोनों व्यक्त है। यहाँ एक बेटे के तौर पर उनकी असफलता का स्पष्ट परिचय मिलता है। नयी पीढी का उद्धेलित विद्रोह पवन के चरित्र में देखा जा सकता है। वह विद्रोही और क्रांतीकारी बेटे के रूप में नाटक में आद्यंत दिखाई पडता है।

---

[58] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.10

एक प्रेमी के रूप में भी वह असफल है। उनकी असफलता सुषमा से उनकी शादी से देख्र जा सकता है। लेकिन आर्थिक पराधीनता तथा इला से उनका संबंध, दोनों सुषमा से पवन के संबंध में दरार लाता है। दोनों तलाक लेते है। पवन की कमज़ोरियों में एक है नारी। इला से पवन का संबंध इसी का द्रष्टव्य है। यहाँ परंपरागत पुरुष वर्चस्वी दृष्टिकोण में पवन को परख्रा जा सकता है। नारी के पीछे भटकनेवाले पुरुषवर्ग का पवन प्रतिनिधित्व करता है। ज़िन्दगी में, पैसे की लालच, पवन का मेहता से रिश्ता जोडता है। अपनी बेआशरा ज़िन्दगी में, पवन को मेहता आशरा बन जाता है। लेकिन पवन की पूँजी हडपने के बाद मेहता उन्हें धोख्रा देता है। हर हालात में हार माननेवाला पवन एक असफल व्यक्ति में परिणत होता है। अंत में पिता की मृत्यु के बाद उन्हें सूझता है कि पिता के सारे उपदेश सचे थे। मृत्यु के बाद पिता का चश्मा मिलना और कुछ दिख्राई न देना, पवन के आत्मपहचान का द्योतक है।

"पवन : बाबूजी... बाबूजी आपका चश्मा मिला लेकिन देरसे...आसपास
कुछ दिख्राई नहीं दे रहा..और दूर रख्रने की इच्छा ही मर गयी..।"[59]

पवन को पता चलता है कि वह जिस रास्ते से गुज़र रहा है वह गलत तथा अनुचित था। इस प्रकार एक असफल बेटा, असफल पति और एक नाकामयाब व्यक्ति के रूप में पवन चतुर्वेदी नाटक में अपनी भूमिका निभाता है। पवन के माध्यम से यह दिख्राया गया है कि एक व्यक्ति की कामयाबी उसके परिवेश पर निर्भर है।

---

[59] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.44

5.9.2.2 डॉ.चतुर्वेदी

इस नाटक का एक ओर मुख्य पात्र है डॉ. चतुर्वेदी। एक संभ्रात परिवार का सदस्य है डॉ. चतुर्वेदी। एक सिद्धांत प्रिय सफल डाक्टर होने के कारण ही उसे अपने पर पूरा गर्व है। अपने कामयाबी पर गर्व डॉ. चतुर्वेदी के चरित्र की विशेषता है। इसीलिए ही बेटे की दिशाहीन ज़िन्दगी उसके लिए असहाय रह जाती है। अतः वह बेटे को मशविरा देता रहता है-

> "डॉ. चतुर्वेदी : तुम गलतियाँ करने से कब बाज़ आओगे? कब नाव किनारे लगेगी तुम्हारी? कब कोई अच्छा फैसला ले सकोगे तुम भी?"[60]

एक पिता के रुआब वह बेटे पर डालता है क्योंकि उनकी अदम्य इच्छा है, बेटे की कामयाबी। बेटे से उनकी अदम्य वात्सल्य ही, नाटक में एक वत्सल पिता की भूमिका उसे देता है। अपने बेटे को वह उपदेश देते-रहते है कि वह सही रास्ता चुनें। सुषमा से अच्छी रिश्ता कायम रखने का उपदेश भी चतुर्वेदी देता है। सुषमा से समझौता करने को वह पवन को प्रेरित करता है। इला से संबंध काटने का सुझाव भी देते है। मेहता से पवन का संबंध चतुर्वेदी बरदाश्त नहीं कर सकता। एक अनुभवी बाप होने के कारण वह गलत दोस्ती को पहले ही पहचानता है और मेहता से रिश्ता तोडना चहता है।

> "डॉ. चतुर्वेदी : ऐसे लोग शुरु-शुरु में बिलकुल आँखों का सुरमा बनजाया करता है। और बाद में फँसा हुआ मछली का काँटा।"[61]

---

[60] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.14

एक कर्तव्यनिष्ठ तथा प्यारे पिता के रूप में डॉ. चतुर्वेदी का चरित्र अत्यंत उज्ज्वल है। अपने बेटे की असफलता को आत्मसात् करके उसे सुधारने की उनकी कोशिश उनके चरित्र की खूबी है। यहाँ डॉ. चतुर्वेदी एक आदर्श पिता के रूप में सक्षम है।

5.9.3 संवाद एवं भाषा

संवाद एवं भाषा की दृष्टि से पवन की चतुर्वेदी अत्यंत सफल नाटक है। नाटक के संवादों से पात्रों की मानसिकता स्पष्ट झलकती है। पवन के मानसिक संवेगों को उकेरने में संवाद सफल निकले है।

> "पवन : लेकिन परिस्थितियों को क्या किया जाये! परिस्थितियों...। परिस्थितियाँ ....एक बहुत बडा यंत्र, जिसकी गति में आदमी की उंगलियाँ फँसती है... परिस्थितियाँ... परिस्थितियाँ... परिस्थितियाँ... यही है परस्थितियाँ और कुछ नहीं।"[62]

नाटक में पवन नामक के पात्र की मानसिकता का स्पष्ट एहसास यहाँ संवाद देते है। संवादों में सादगी तथा सरलता मिल पाता है जो नाटक को संप्रेषणीय बनाने में उचित दीख्र पडती है। भाषा की दृष्टि से भी नाटक श्रेष्ठ है। नाटक में स्तरीय तथा अपरिनिष्ठत दोनों तरह की भाषायें प्रयुक्त है। डॉ. चतुर्वेदी के संदर्भ में परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग मिलता है। सुषमा और पवन के संदर्भ में अपरिनिष्ठित भाषा का प्रयोग मिलता है। चतुर्वेदी अपने इज़्ज़त और आबरू के अनुसार ही उचित

---

[61] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.66

[62] पवन चतुर्वेदी की डायरी- कुसुम कुमार, पृ.55

भाषा का प्रयोग करते है। पवन की भाषा कभी दार्शनिक की बन जाती है। मेहता के कैजुअल दृष्टिकोण का स्पष्ट एहसास उनके बातों से समझ सकते है। अंग्रेज़ी शब्दों का खूब प्रयोग नाटक की भाषा की ओर एक विशेषता है।

5.9.4 रंगमंचीयता

पवन चतुर्वेदी की डायरी मंचीय दृष्टि से सफल नाटक है। "नाट्यवस्तु को स्पष्ट करने एवं बल प्रदान करने के लिए उसी अनुरुपा शैली एवं शिल्प का प्रयोग किया गया है, जिसमें नाटक का रंगमंचीय वातावरण सजीव हुआ है।"[63] प्रस्तुत नाटक दो अंकों में विभाजित है। नाटक में एक वाचनालय, एक रस्टोरेंट तथा शेयर बाज़ार के दृश्य है। मंच सज्जा में थोडा परिवर्तन करके ये दृश्य निर्माण किये जा सकते है। वाचनालय में पाठकों को बैठने की व्यवस्था है। एक, दो स्टूल तथा डेस्क आदि भी वहाँ पडे हुए है। माँ, बाप, सुषमा तथा इला के साथ पवन का वार्तालाप भी इसी दृश्यबंध में संपन्न है। रस्टोरेंट की सज्जा एक छोटी मेज़ तथा दो कुर्जियाँ रखकर किया गया है। एक बार्ड लगाकर शेयर मार्कट की सूचना दिया है। बार्ड के सामने दो लंबे बेंच पडे है। नाटक में एक ही हाल में कुछ सामग्रियों के सहारे दृश्यबंध सजाया जा सकता है।

'पवन चतुर्वेदी की डायरी' में प्रकाश योजना दृश्यबंध को सूचित करने को प्रमुख रुप से प्रयुक्त है। मंचाग्र में प्रकाश, तथा बीच में अंधेरा प्रकाश का मिश्रित प्रयोग मिलते है। हर एक दृश्य के शुरु में और अंत में प्रकाश की उचित व्यवस्था दी है। बीच-बीच में पवन को प्रकाशवृत्त पर रखकर उसके खंडित व्यक्तित्व को उभारा है

---

[63] कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य- दीपा कुचेकर, पृ.80

नाटक में विशेष ध्वनि प्रयोग नहीं है। इस नाटक का प्रथम मंचन मार्च 8, 1986 को मर्सिया नाम से श्रीराम सेंटर फार आर्ट एंड कल्चर के नाट्यागार में हुआ था।

5.10 रावणलीला

5.10.1 वस्तुपक्ष

लोक-शैली में लिखा गया, कुसुम कुमार का एक नाटक है 'रावणलीला'। प्रस्तुत नाटक में रामलीला में काम करनेवाले कलाकारों की तकलीफ भरी ज़िन्दगी का सच्चा बयान है। रामलीला तथा कलाकारों की कथा नाटक में आद्यंत एक साथ चलता है। रामलीला जैसे पौराणिक कथानक में रावणलीला के ज़रिए नये संदर्भों को जोडने की कोशिश हुई है। जिगरपुर की रामलीला के ज़रिए वर्तमान नाट्यमंडलियों की जर्जर अवस्था, लोकरंगमंच का ह्रास आदि का यथार्थ रूप प्रस्तुत नाटक में उभरता है। रावण का किरदार निभानेवाला करतारसिंह नाटक के केन्द्र में है, जिसकी आर्थिक पराधीनता एक सामाजिक सच्चाई का रूप लेता है। मंच के आगे और पीछे के वैषम्य के बावजूद अपनी रंगलीला और रावणलीला दिखाने की विवशता यहाँ दर्शायी है। समकालीन जीवन की सबसे बडी विडंबना यह है कि श्रेष्ठ मंतव्यों से प्रारंभ किये गये काम की भी निकृष्टतम परिणति देखने में आ रही है। "निकलते हम हरिभजन को है और लगते है ओटन कपास, चाहते आपको नरक द्वार पर। समगत इसी विडंबित सत्य को रामलीला के व्याज से रावणलीला नाटक बडी सादगी से अभिव्यक्त करता है।"[64] रामलीला से रावणलीला तक व्यक्ति को खींचनेवाली परिस्थितियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।

---

[64] हिन्दी नाटक और रंगमंच, समकालीन परिदृश्य- ब्रजराज किशोर, पृ.130

नाटक की प्रमुख विशेषता रामलीला और रावणलीला, एक सिक्के के दो पहलू रह जाना है। क्योंकि नाट्यार्थ की दृष्टि से यह नाटक रामलीला का एकदम विपरीत और विलोम भाव उत्पन्न करता है। राम-रावण युद्ध के मिथक में रावण की मृत्यु यथार्थ न रह पाती है मतलब उसका पुनरजीवन होता है। यहाँ वर्तमान कुटिल नीतियों की ओर जोडा गया है। दुष्टता का अंत आज एक अनहोनी है तथा एक असंभव तथ्य है। रावण के साथ सीता के जीने की तैयारी, राम के हाथों रावण का ना मारा जाना आदि समकालीन वास्तविकताओं से नाटक को जोडते है। छोटे और बडे कलाकारों की मानसिकता, नाट्यमंडलियों पर कब्जा करनेवाले सेढों की स्वार्थपरता, व्यक्तिगत पराधीनता आदि समस्यायें नाटक की वस्तुयोजना की खूबियाँ है। आम तौर पर 'रावणलीला' नाटक अपने वस्तुपक्ष में ज्यादा महत्वपूर्ण निकला है।

5.10.2 चरित्र चित्रण

लोक नाट्य शैली में लिखे गये प्रस्तुत नाटक में पात्रों की संख्या ज्यादा तो है। लेकिन प्रमुख पात्रों के रूप में करतार सिंह, चेतराम, काशीराम आदि ज्वलंत है। उनके चरित्र का एक विश्लेषण आगे होने को है।

5.10.2.1 करतार सिंह

इस नाटक का प्रमुख पात्र करतार सिंह है। 'जिगरपूर' गाँव में आयोजित रामलीला में कर्तार सिंह रावण की भूमिका निभाते है। आर्थिक विपन्नता में जूझता एक कलाकार को हम करतार सिंह में देख सकते है। रावण के अभिनय में दक्षता करतार सिंह की विशेषता है। अपने काम में ईमानदारी एक कलाकार के तौर पर

उनकी प्रशंसा का परिचायक है। नाटक के बीच में वह गंभीर दार्शनिक बन जाता है। जैसे-

> "रावण : यही पे भले हो मारीच! राक्षस कुल में पैदा हुए हो तभी मरण से मुक्ति पा सकते हो। बाजुओं में बल हो और माथे में ज्ञान तो मौत के प्रसंग से सदा-सदा के लिए मुक्ति मिल सकती है।"

रावण के रुप में एक अच्छा अभिनेता होने के नाते संचालक रावण की भूमिका के लिए करतारसिंह पर आश्रित रहते है। कई सालों से तीस रुपये मजूरी पर काम करनेवाला करतारसिंह, अपनी ज़िन्दगी में आर्थिक पराधीनता झेलता है। कई बार संचालकों से मज़ूरी बढाने की विनती करते है लेकिन वे अनसुना करते है। इसके फलस्वरुप एक वक्त पर वह मंच पर अभिनय करने से इनकार करते है-

> "रावण : तो फिर सुन लो तुम भी। पचास रुपये में रावण और उसका बाप दोनों नहीं मार सकते। रेट हमारा और बढ गया है। हमें चाहिए अस्सी।"[65]

करतार सिंह अच्छी तरह जानते है कि रामलीला के संचालक बुरी तरह फंस गया है। काशिराम के पास कोई ओर चारा न था। वह मज़ूरी बढाता है। यहाँ रावण के रुप में कायापलट वास्तव में, करतारसिंह की विवशता है। अपना काम निकालने के लिए वह ऐसी एक अवस्था में आ जाता है। यहाँ करतार सिंह के चरित्र द्वारा लेखिका ने आदमी के परिवेश को उसके नियंता स्थापित करने का प्रयास किया है। ऐसे चरित्रों की खूबी नाटक को समकालीन बनाया है।

---

[65] रावणलीला- कुसुम कुमार, पृ.103

5.10.2.2 चेतराम

इस में, चेतराम रावण के दरबार का सेनापति है। एक छोटे कलाकार की परेशानियाँ चेतराम को मथती है। नाटक में अन्य पात्र के बातों के समय, चेतराम बेफायदे के कमेंट डालते है। एक स्त्रैण स्वर उसमें सदा है। नाटक में अपनी भूमिका अच्छे ढंग से प्रस्तुत करने में वे सदा सक्षम है। बाकी पात्र सदा चेतराम को चिढाता है। लेकिन चेतराम उनकी बातों को गंभीरता से लेता है। रावण के दरबार में एक ईमानदार सेनापति की भूमिका में उज्ज्वल चरित्र है चेतराम का। दरबार में जो भी विषय हो वह हा-हा करके उसका समर्थन करता है।

"मारीच : बोलो सियावर रामचंद्र की जय। बंदा सेवा में हाजिर है, काशीराम अपने लायक मारीच के पार्ट के अलावा भी कोई सेवा हो तको निःसंकोच कह दीजिए। आप के लिए कुछ भी करके हमें खुशी होगी।

चेतराम : आहा...हा.....

काशीराम : हा हा की बात नहीं चेतराम। तूही देख्र ले, सेवा ये मेरी करेंगे। जैसे ये सारा मेरे लिये हो।"[66]

यहाँ चेतराम नहीं-नहीं कहने के बजाय आहा हा करता है और दोनों का समर्थन करता है। एक छोटे कलाकार के रूप में चेतराम की भूमिका सफल हो पाया है। नाटक भर चेतराम का चरित्र हास्य-व्यंग्यात्मक गतिविधियों के प्रेरक के रूप में पाया जाता है।

---

[66] रावणलीला- कुसुम कुमार, पृ.17

5.10.2.3 काशीराम

नाटक का ओर एक प्रमुख पात्र है काशीराम। रामलीला समिति का प्रोपाइटर है काशीराम। कलाकारों की आर्थिक परेशानी और उनसे संबंधित किसी भी तकलीफ का जिम्मेदार काशीराम है। उनकी इस भूमिका में कभी वह थका हारा महसूस करता है-

"काशीराम : बिगाड रहा हुँ, क्योंकि असली गुनहगार जो मैं हुँ। हर साल लोगों को इकट्ठा करके रामलीला नाम का यह फन उनके सामने परेसना सिर्फ मेरा ही काम जो है। साले हर किसी का एहसान मुझ पर है। यह नहीं होगा तो पार्ट नहीं करेंगे। वह नहीं होगा तो रूढकर बैठ जायेंगे साले एक-एक को काशीराम से गिला है।"[67]

रामलीला से जुडी हुई सारी तकनीकी समस्याओं का दायित्व भी काशीराम पर सौंपा जाता है। नाट्यमंडलियों के संचालकों की विवशता काशीराम के ज़रिए व्यक्त हुई है। काशीराम की राय में आज मनुष्यत्व मर चुका है। राम-रावण युद्ध के पहले करतार सिंह पैसे की माँग करता है जो काशीराम को ज्यादा विवश बनाता है। ऐसे रावणत्व पर वह अपना धिक्कार खुल्लम-खुल्ला व्यक्त करता है-

"काशीराम : लोगों में पूरा उत्साह! तुम में भी कुछ कम नहीं। पर अब मुझमें वह पहले जैसा उत्साह नहीं। ज़माना भी तो देखो। ज़माना आज सिर्फ रावणों को पूजता है। नहीं है आज के आचरण, वही आदर्श।"[68]

---

[67] रावणलीला- कुसुम कुमार, पृ.30, 31

[68] रावणलीला- कुसुम कुमार, पृ.64

काशीराम, रामलीला मंडलि के संचालन से ऊब चुका था। अब तो रावण के जाल में भी फँस गया है। अंत में विवश होकर करतार सिंह की मज़ूरी वह बढाकर देता है। काशीराम की यह विवशता नाटक में सबसे मर्मस्पर्शी है। काशीराम, नाट्यमंडलियों की जर्जरता का जीवंत उदाहरण है। रावणों के राज में 'काशीराम' जैसे संचालकों का अस्तित्व ही संदेह पर है। काशीराम के ज़रिए नाट्यसंस्थाओं के बुरा हाल हमारे सम्मुख रख्रने की कोशिश यहाँ हुई है।

5.10.3 संवाद एवं भाषा

लोकनाट्यशैली में लिखा गया नाटक होने के कारण ही, रावणलीला में संवादों में नाटकीयता सबसे ज्यादा मिलती है। रामलीला के समय नाटक का संवाद काव्यात्मक निकलते है-तथा ज्यादा नाटकीय। बाकी स्थलों में संवादों में सरलता स्पष्ट परिलक्षित है। संवाद कभी लंबे विश्लेषणात्मक बन गये है जो कथ्य के अनुकूल समीचीन लगता है। विषयानुकूल संवाद नाटक की अन्य संवादगत विशेषता भाषा की दृष्टि से कुछ विशिषतायें नाटक में व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग नाटक में सब कहीं मिल पाता है। जैसे-

"दूसरा दरबारी : और वह तो फिर भी इस युग का मंत्री है जो ढेरी के बढले एक बेरी तो देता है। कलियुग के मंत्री को एक-एक बेरी भी नहीं दे सकेंगे और लेने की बारी पर दे देरी पर ढेरी।"[69]

यहाँ मंत्रियों पर किया गया व्यंग्य भाषा विशिष्टता की दृष्टि से समीचीन लगती है। प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग नाटक भर हुआ है। रामलीला के वक्त

[69] रावणलीला- कुसुम कुमार, पृ. 74

परिनिष्ठित नाटकीय भाषा का प्रयोग मिलता है तो मंच के पीछे करतार सिंह, काशीराम आदि की भाषा आम भाषा निकली है। भाषागत अन्य विशेषता है पात्रानुकूलता। रावण जैसे वीर शूर के अहं का परिचायक है उनकी भाषा। उनका अहं को सूचित है यह कथन-

"रावण यही कैसा सच लगता है? रावण इस धरती पर हमेशा था और हमेशा रहेगा। अरे तो अहमक रावण को साथ ले मारने वाला कोई भी इस धरती पर पैदा नहीं हुआ है।"[70] रावण का घमंड संवाद की भाषा में भरा है जो ज्यादा संप्रेषणीय भी है। इसके अलावा देशज शब्दों का प्रयोग, काव्यात्मकता आदि भाषागत अन्य विशेषतायें है।

5.10.4 रंगमंचीयता

एक 'रंगमंचीय' नाटक होने के कारण ही रावणलीला रंगमंचीय दृष्टि से सफल नाटक है। नाटक में दो-दो दृश्यों में विभाजित दो अंक है। प्रस्तुत नाटक में रावण का दरबार तथा अशोकवाटिका, दो ही अभिनय स्थलों की माँग है। 'रावण का दरबार' लिखा हुआ एक कार्ड से उसको सूचित किया है। देशीलीला तथा नाटकीय परिवेश को उभारने केलिए माईक, हार्मोनियम, सिगरेट, चटाई, चाल के गिलास, तलवार रंगी पर्दों अंगूढी पेड फल धनुष, बाण आदि सामग्रियों का इस्तेमाल किया गया है। प्रकाश-योजना प्रस्तुत नाटक में अच्छे ढंग से मिलता है। दृश्य बंध को सूचित करने को प्रमुख रूप से प्रकाश योजना का प्रयोग हुआ है। मंचाग्र में प्रकाश, तथा बीच में भी प्रकाश-योजना कार्यरत है। अंतिम दृश्य में रावण पर प्रकाश

---

70 रावणलीला- कुसुम कुमार, पृ. 101

प्रसंगानुकूल मर्मस्पर्शी उभरता है। पूरा रावणीय आचरण का स्पष्ट एहसास देने के लिए ऐसा प्रयोग सठीक रहा है। मध्यम मंद प्रकाश तथा घने अंधकार भी नाटक में यत्र-तत्र दिखाई देता है। नाटक में ध्वनिप्रयोग अपेक्षित मात्रा में मिलता है। रावणलीला में अभिनेताओं की तैयारी की सूचना, हार्मोनियम तथा अन्य वाद्यों की ध्वनियाँ, धमाके के साथ रावण का प्रवेश, पटाखों की आवाज़, भाई पर खोये बच्चे की सूचना आदि ध्वनियों की योजना है। ऐसे प्रयोग रामलीला की यथार्थता का द्योतक है। कव्वाली स्वरों का गायन तुकांत गीतों की योजना आदि भी ध्वनिप्रयोग में सफल निकले है।

गीतों की योजना भी नाटक में मिलती है। रामलीला के प्रसंग में गाये जानेवाले गीत ही ज्यादातर है। नाटक में कूल चार-पाँच गीत है। 'रावणलीला' मंचीय कुशलता से संपूर्ण नाटक है। "इनके नाटकों से यह साबित होता है कि रंगमंच की दृष्टि से इन्में सृजनात्मकता की कई संभावनायें है।"[71] इस नाटक का प्रथम मंचन दिसंबर 1981 को बंसी कौल के निर्देशन में श्रीराम सेंटर फार आर्ट्स एंड कल्चर को ओर से हुआ। प्रताप जालसवाल जैसे विख्यात निर्देशक से तक नाटक का मंचन हुआ है।

5.11 लश्कर चौक

5.11.1 वस्तुपक्ष

'लश्कर चौक' नामक नाटक का सृजन, सांप्रदायिक दंगों के कारण पीडित एक क्षेत्र के लोगों के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक गतिविधियों को केन्द्र में रखकर

---

[71] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रंगनाटक - डॉ. सुदर्शन मजीठिया, पृ. 133

हुआ है। सांप्रदायिकता का ज़हर फैलाने में धार्मिक नेताओं और संप्रदायविशेषों की भूमिका बताकर नाटक को समसामयिक परिवेश की और जोडने में कुसुम कुमार सक्षम हुई है। धर्म के ठेकेदारों द्वारा समाज में दहशत फैलाकर सामाजिक स्वास्थ्य बिगाड दिया जाता है। अपने धर्म से किस-तरह जीना है-यह निर्णय धार्मिक नेता लेता है, जिसका अच्छा नमूना है रामदास और उसकी ज़िन्दगी। रामदास की धार्मिक कट्ठरता उसकी ज़िन्दगी में उपयोगी सिद्ध नहीं होती है। सामाजिक नियमों और धार्मिक मान्यताओं से ज़रा भी विचलित न होने पर भी रामदास और परिवार के लिए उनका धर्म शिक्षक रह जाता है - यह अत्यंत प्रासंगिक है। रामदास और परिवार एक मुसलमान औरत को अपने घर में आश्रय देते है जिसके कारण वह हिन्दु धर्म से निष्कासित होते है। रामदास को अपने धर्म से निकालने के लिए, धार्मिक नेता ज्यादा उत्सुक दिखाई पडते है जो समकालीन विडंबित सत्य है। यहाँ धार्मिक तथा मानवीय संवेदना का ह्रास स्पष्ट परिलक्षित है। साथ ही धार्मिक और मानवीय संवेदना का ह्रास भी देखने को मिलता है।

रामदास का मुसलमान रह जाना, अनेक सवाल हमारे सम्मुख रखते है। एक व्यक्ति का धर्मांतरण उसकी मानसिकता पर कटु प्रहार है। व्यक्ति परिस्थितिवश ऐसा करता है, लेकिन उसकी मानसिकता पर होनेवाला घाव एक सच्चाई बन जाती है। सांप्रदायिकता और धर्मांधता की आग में दहकती नारी वेदना को भी नाटक प्रत्यक्ष रूप से दर्शाता है। सभी महिलायें एकजूट होकर हिन्दु मुस्लिम एकता का नारा लगाती है जो मानवीयता का संदेश है। और 'कान्हा' इसी उद्यम का माध्यम रह जाता है। नाटक की कथा आज़ादी के पहले शुरु होकर आज़ादी के बाद तक की है। यहाँ समझ आता है कि स्वतंत्रता के बाद भी व्यक्ति की मनोदशाओं में बदलाव

नहीं आया है। “इस प्रकार नाटक में मानवीय मूल्यों की प्रचलित एवं स्वीकृत अवधारणाओं के कारण उत्पन्न होनेवाले जीवन संघर्ष को अत्यंत प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत किया है।”[72] ‘लश्कर चौक’ नाटक का वस्तु सांप्रदायिकता से परे एक समाज की भावना से अत्प्रेरित है। धार्मिक नेताओं की स्वार्थपरता का अप्रतिम मिसाल नाटक में है जिसके ज़रिए नाटक प्रासंगिक रह जाता है। धार्मिक सांप्रदायिक दंगों की त्रासद भीषण हाल में रहने वाले लोगों के बीच यथार्थता का अवबोध कराने में नाटक सफल रहा है।

5.11.2 चरित्र चित्रण

लश्कर चौक नाटक में कूल सात आठ पात्र है। हरेक पात्र ने अपनी भूमिका को बहुत अच्छे ढंग से अदा की है। प्रमुख्र पात्रों की चरित्रगत विशेषतायें यों है।

5.11.2.1 रामदास/करीम

लश्कर चौक नाटक का प्रमुख्र पात्र है रामदास, जो एक आम परिवार का सदस्य है। पचास वर्षीय रामदास में देश भक्ति अपने चरमसीमा में है। गाँधीवादी आदर्शों पर अटूट विश्वास रख्रनेवाला रामदास देश के लिए अपना जान तक देने को तैयार है। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेनेवालों से अदम्य आदर वह प्रकट करता है और उसके बारे में यो बताता भी है-

“रामदास : क्यों न कहूँ? उस आदमी का गाँधी का रास्ता अपनाना चाहिए था वह तो अपनी बगावत अदावत से बाज नहीं आता था।... अव गाड दिया होगा किसी गोरे की ज़मीन में।

---

72 हिन्दी महिला नाटककार - भगवान जाधव, पृ.75

लीला : खुद ही कहते हो भलेमानुस सज्जत मानुष खुद ही गुस्सा भी झोडते हो उन पर...

रामदास : भलेमानुस तो वे थे ही .... तभी तो प्राणों से हाथ गवा बैठे होंगे।....”[73]

रामदास के चरित्र की खूबी है कि वह अपने धर्म पर कट्ठर विश्वास रखता है। हिन्दु धर्म पर अटल विश्वास तथा उस धर्म की सुरक्षा पर रामदास का ध्यान बहुत मर्मस्पर्शी है। अत्यन्त दयावान तथा परोपकारी भी है रामदास। अपने घर में एक मुस्लिम औरत के आने से वह, सुरक्षा देता है। उसके मन की उदारता का स्पष्ट रुप है यह। लेकिन ऐसी उदारता उसके लिए आपत्ती ठहर जाती है। घर में मुसलमान औरत को संरक्षित करने के कारण, रामदास और परिवार को हिन्दु धर्म से निष्कासित करता है। ईमानदारी और दया कि मूर्ती बने रामदास अपनी ज़िन्दगी में धर्मपरिवर्तन के लिए विवश हो जाता है। जिस धर्म को वह अपने जान से प्यारा माना था उसी धर्म द्वारा वह ठगे जाते है। धार्मिक नेताओं की कुटिलता से जूझता आम आदमी का प्रकट रुप ही रामदास में देख पाते है।

रामदास के लिए धर्मांतरण ही एकमात्र रास्ता था। इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए रामदास और परिवार तैयार होते है। रामदास करीम बन जाता है। रामदास जैसे हिन्दु कट्ठरवादी के सामने, इस्लाम धर्म स्वीकारना एक दोधारी तलवार बन जाता है। यहाँ रामदास के माध्यम से धर्मपरिवर्तन से प्रताडित व्यक्ति को दर्शाया है। मुस्लिम बनकर 10 वर्ष के बाद भी हिन्दु धर्म में लौट आने केलिए रामदास की इच्छा उसके हिन्दु धर्मप्रेम का उत्कृष्ट दृष्टांत है। धर्मो के बीच फँसा हुआ

[73] लश्कर चौक- कुसुम कुमार, पृ.10, 11

एक व्यक्ति की दुविधा रामदास के चरित्र को ज्यादा संकट में डालता है। रामदास के हिन्दु धर्म में जीने की स्वतंत्रता धार्मिक कट्ठरता से लथपथ समाज छीन लेता है। उनकी लाचारी इस कथन में व्यक्त है –

"करीम : वही मात खायी है मैने शर्माजी! वही....इस्लाम छू लेने मात्र से अब तक आत्मा कतई इस्लामिक नहीं हुई.. मुसलमान हुआ ज़रूर हुँ पर इस टुक से छुटकारा नहीं पा सका कि मैं सच्चा मुसलमान नहीं हुँ।... हिन्दु संस्कारों में रचा-बसा मेरा मन यह तसलीम करने से नही हिचकिचाता कि मैं इस्लाम एकमेव नहीं हो सके।"[74]

रामदास की विवशता यहाँ स्पष्ट झलकता है। अपने विनय तथा नम्रता का परिचय वे देते है कि धार्मिक नेताओं के आगे शांतशील रहता है। अपने विद्रोही बेटे को भी वह शांत रखता दिखाई पडता है। एक आम मानव की नियति को बदलने में धार्मिक नेताओं का हाथ तथा उनके द्वारा चकनाचूर आम आदमी की ज़िन्दगी को हम रामदास में देख पाते है। एक कट्ठर धर्मावलंबी होकर भी उसी धर्म के ज़रिए ढगा जाना रामदास की विडंबना है।

5.11.2.2 लीला

लीला रामदास की पत्नी है। धार्मिक कट्ठरता, ईमानदारी और इनसानियत से संपन्न व्यक्तित्व है लीला का। आत्मसम्मान लीला को एक अलग पहचान देता है। समाज में नारियों को आत्मसम्मान की ज़रूरत उनके चरित्र का एक अगला मोड है।

---

[74] लश्कर चौक- कुसुम कुमार, पृ.54

नारी शक्तीकरण उनके लक्ष्यों में एक था। औरतों को शिक्षा की ज़रूरत तो वह मानती है। उसकी राय में अगर वह पढी-लिख्री होती तो घर पर ही क्यों बैढ जाती?

> वह कहती है - "अब रहने भी हो ....जन्म-जन्मांतरों तक तुम मर्दों की जात ने हमें पढाई लिख्राई से दूर रख्रा और जब मौका आया तो अपनी धाक जमाए रख्रने के लिए हमें फतवा दिया। री री अनपढो, ध्योनियो, चोलियो..."[75]

लीला के व्यक्तित्व का ओर एक पहलु कट्ठर धर्मावलंबी का है। हिन्दु धर्म के वह इतना निकट है कि उसके अलावा लीला को मृत्यु ही वरेण्य है। अपने जीवन में वह धार्मिक रीति-रिवाज़ों को सबसे प्रमुख्र मानते है। वह देशप्रेमी भी है। स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं पर उसका आदर-सम्मान अपार है। अनपढ होकर भी वह अपनी सारी परिस्थितियों को समझने में ताकतवर है। उनका यह ताकत उसे एक सजग औरत बनाते में सिद्ध हुई है। धर्मांतरण लीला को फातिमा बनाती है जिसके कारण वह अपने को पीडित महसूस होती है। इस प्रकार लीला एक आदर्श पत्नी, आदर्श माँ, देशस्नेही तथा कट्ठर धर्मावलंबी के रूप में नाटक में अपने चरित्र को संपन्न किया है।

5.11.2.3 श्याम

रामदास का बेटा है श्याम। एक जोशीला युवक है विद्रोही पात्र के रूप में उन्होंने अपनी भूमिका संपन्न की है। धार्मिक कट्ठरता से परे, श्याम व्यक्ति की हैसियत को प्रमुख्र मानता है। अपने परिवार को ज्यादा चाहनेवाला श्याम, धार्मिक

---

[75] लश्कर चौक- कुसुम कुमार, पृ.11

नेताओं की साजिशें बरदास्त नहीं कर सकता है। यहाँ श्याम का विद्रोही चरित्र सामने उभरता है। अपने परिवार की धार्मिक स्वतंत्रता पर रोडा डालनेवालों पर उनका आक्रोश, उसे एक निराले व्यक्तित्व का हकदार बनाता है। वह धार्मिक नेताओं पर टूट पडता है-

> "श्याम : हम किसी धर्म में रहें, न रहें, किसी के बाबा का क्या जाता है..क्या मैं पूछ सकता हूँ आप सब है कौन? आप का नाम क्या है? हमें निकालने रखनेवाले आप कौन होते है?"[76]

लेकिन सारे प्रतिशोधों के बावजूद श्याम भी माता-पिता के साथ धर्मांतरण के लिए विवश पड जाती है। श्याम मदीन बन जाता है। श्याम का चरित्र एक आदर्श युवक के रूप में सामने उभरता है। अपने विचारों पर अडिग रहने पर भी वह परिस्थितियों में फँसकर बेडौल बन जाता है। धर्म से ज्यादा इनसानियत पर भरोसा रखने वाले एक युवक के रूप में श्याम का चरित्र संपन्न होता है।

5.11.3 संवाद एवं भाषा

संवाद भाषागत विशिष्टता नाटक में खूब मिलती है। संवादों की एक विशेषता है- व्यंग्यात्मकता। नाटक में श्याम का संवाद ज्यादातर व्यंग्यात्मक निकला है। धार्मिक कट्ठरता के विरुद्ध विद्रोह मचानेवाला श्याम अपने व्यंग्यात्मक कथन से तथा कथित संप्रदायों के विरुद्ध आवाज उठाता है-

---

[76] लश्कर चौक- कुसुम कुमार, पृ.34

"श्याम : मेरा क्या है जनाब, मेरे फैसले मेरा हुकम बजाते है और फिर मेरे पास कई जोडी जूते है...पहनता एक वक्त एक जोडी ही हुँ, बाकी यही है वे किरदार जो मेरे फैसलों पर शर्मिदा नहीं होते।"[77]

कई स्थानों में संवाद पात्रों की मानसिकता का परिचायक बन बैढा है। सांप्रदायिक द्वन्द्ध में फँसा रामदास की मानसिकता का परिचय उनके संवादों से मिलते है। धर्मांतरण किये गये एक इनसान के अंतरमन की पीडा या घुटन रामदास के कथनों में स्पष्ट झलकता है।

भाषागत विशेषताओं में प्रमुख्र है पात्रानुकूलता। पात्रों के परिवेश के अनुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। रामदास और लीला की भाषा स्तरीय जान पडती है। सरल भाषा का प्रयोग नाटक में आद्यंत मिलता है जो प्रसंगानुकूल है। इसके अलावा मुहावरेदार प्रयोग भाषा की अन्य विशेषता है। देशज शब्दों का प्रयोग और एक भाषागत ख्रासियत है।

5.11.4 रंगमंचीयता

लश्कर चौक में दस दृश्य है। रामदास का घर, गाँव की पंचायत, धीनापुर गाँव का चबूतरा, चौपाल का प्रांगण आदि कुछ अभिनय स्थलों की माँग नाटक में है। मंच में थोडा सा परिवर्तन करके मंच और पंचायत के दृश्यों का बंदोबस्त किया जा सकता है। देवी-देवताओं की तस्वीरें, चारपाई, शीशा आदि कुछ सामग्रियों का प्रयोग हुआ है जो आसानी से प्रबंध कर सकते है। प्रकाश योजना नाटक में ज्यादा

[77] लश्कर चौक- कुसुम कुमार, पृ.40

नहीं मिलती है। केवल दृश्य परिवर्तन के लिए हला सा प्रकाश प्रयोग में लाया है। ध्वनिप्रयोग तथा गीतों का प्रयोग भी कम मात्रा में है या न के बराबर है।

5.12 सकुबाई

5.12.1 वस्तुपक्ष

'सकुबाई' नादिरा ज़हीर बब्बर का एक सफल एकल नाट्य है। इसमें नारी जागरण और नारी के जीवन की संघर्षशील अवस्थाओं का मर्मस्पर्शी ढंग से अवतरण है। इस नाटक की वस्तु में सामाजिक-आर्थिक धरातल पर ज़ोर मिलता है। सकूबाई का इतिवृत्त समाज में नारियों की आत्मनिर्भरता से जुडी हुई है। निम्नमध्यवर्गीय कामगार औरत सकुबाई अपनी आत्मनिर्भरता और प्रयत्नशीलता के बलबूते पर जीवन में सफलता पर पहुँच जाती है। विकट आर्थिक, पारिवारिक, शैक्षिक परिस्थितियों से परे सकु की ज़िन्दगी की जीत हमें नया सीख्र देती है। बूरी आर्थिक स्थिति के कारण सकु अपनी माँ के साथ मुंबई आती है और घरेलु नौकर बन के अपनी आर्थिक सुरक्षा सुनिश्चित करती है। पलैटों में नौकरानी के रूप में उनको प्राप्त अनुभव असल में मुंबई जैसे महानगरीय उच्चवर्ग के जीवन की ओर एक झांकी है। नाटक में कथा एक बिन्दु पर सीमित न होकर समाज के सारे मामलो पर एक नज़र डालता है। नारी अत्याचार, गरीब-अमीर की विसंगतियाँ व्यक्तित्व का ह्रास जैसे कई विषय नाटक में वस्तु के रूप में उभरते है। मामा द्वारा सकु का यौन शोषण, वासंती पर होने वाला अत्याचार, मेमसाहब पर साहब का अतिक्रम आदि नारी अत्याचारों का स्पष्ट बयान है। मुंबई जैसे महानगरीय जीवन की सारी असंगतियाँ नाटक के वस्तु में समायोजित है। पार्टी में उच्चवर्गीय स्त्री द्वारा नेकलस की चोरी, पती-पत्नी का गैर संबंध आदि उच्चवर्गी अमीरों के ख्रोख्रलेपन को दर्शाते है।

सकु की मानसिकता को एक नये धरातल पर यहाँ प्रस्तुत की है। अपनी कमज़ोरियों और पिछडी अवस्थाओं को पीछे थकेलकर ज़िन्दगी में विजयी होने का सकु का मनोभाव, पलायनवादी विचार धाराओं पर सघन प्रहार है। अशिक्षित सकु अपनी परिस्थितियों से शिक्षित होती है और अपने परिवेश में बिना थकी आगे बढ जाती है। यहाँ कथ्य की गरिमा यह है कि ज़िन्दगी की परिस्थतियों को कामयाबी बनाने के लिए आत्मविश्वास और आत्मसम्माने बहुमूल्य रखता है। "यह नाटक हमें उम्मीद देता है कि यदि हममें आत्मविश्वास और साहस है तो समय और समाज को बदला भी जा सकता है।"[78] आर्थिक अवस्था की कमज़ोर हालात नाटक में सशक्त रूप से उभारा है। सकु की ज़िन्दगी की आर्थिक पराधीनता, गाँव की स्थिति, दवाईयों की महंगाई आदि कथ्य को आर्थिक पराधीनता से जोडती है। अपनी बेटी साईली की उच्चशिक्षा से गर्वीली सकु के माध्यम से नारी शिक्षा की महत्ता मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत है। नाटक एक कामगार औरत की कथा से होकर सामाजिक, आर्थिक समस्याओं तक पहूँचता है जो नाटक के वस्तु पक्ष को उत्कृष्ट बताता है। नारी अस्मिता के अनछुए पहलुओं से नाटक गुज़रता है।

5.12.2 चरित्र-चित्रण

एकल नाट्य 'सकुबाई' में पात्रों का परिचय तो सकु से मिलता है। अन्य पात्रों से भी ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका सकु को है। सकुबाई का चरित्र चित्रण ही आगे है।

---

[78] आधुनिक भारतीय नाट्यविमर्श – जयदेव तनेजा, पृ.289

5.12.2.1 सकुबाई

सकुबाई नाटक का प्रमुख्र पात्र है। सकुबाई, निम्न मध्यवर्ग की कामगार औरत है। ईमानदारी से संपन्न सकु अपनी ज़िन्दगी में कामलाब है। स्वयं नादिरा जी के मत में-"सकुबाई अपनी ज़िन्दगी के अनुभवों और कारनामों का विस्तृत ब्यौरा स्वयं बहुत सुक्ष्म परिहास के धागे में पिरोकर प्रस्तुत करती है।"[79] सकु के चरित्र का एक पहलू है उसका दायित्वबोध। घर की आर्थिक कठिनाई के कारण शहर में आई सकु और उसकी माँ, मुंबई में घरेलु नौकर बन जाती हैं। अपनी आर्थिक पराधीनता को आर्थिक स्वतंत्रता में बदलने के लिए सकु कोशिश करती रहती है और उसमें सफल भी होती है।

ईमानदारी सकु के चरित्र की सबसे महत्वपूर्ण ख्रूबी है। अपनी ईमानदारी पर लोगों की आस्था तो वह समझ्रती है लेकिन अपने ऊपर सारा काम छोडकर जानेवाले मेम साहबों पर वह अपना अमर्ष प्रकट करती है। सकु की राय में- "सकु- सब लोग यही सोचती है कि बाई रख्री है तो हम काम क्यों करें! फौकट की पगार देते है क्या? ... बात भी ठीक है, पगार तो देते ही है। पगार देते है तो काम करना ही पडेगा ना?.. करेगी।...करेगी सारा काम...। चल सकु आलस छोडों कम करों।"[80] यहाँ अमीरों के पद तले दमित नौकर वर्ग को, सकु के माध्यम से चित्रित है।

अन्यायों के विरुद्ध लडनेवाली एक विद्रोही औरत को भी हम सकु में देख्र पाते है। उसकी राय में अमीर होने से ज़िन्दगी में हम कुछ ना कमाते है, पैसे के

---

[79] सकुबाई- नादिरा ज़हीर बब्बर, कवर से

[80] सकुबाई-नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.17

अलावा। अमीरों के नाजायज़ संबंधों और अमीरी से उपजी बदमाशिय का वह सदा व्यंग्य करती थी। एक साधारण औरत की हाशिए से परे सामाजिक गतिविधियों का पहचान सकु को निराली बनाती है। व्यवस्था की कुटिल नीतियों के विरुद्ध सकु की आवाज़ हमेशा उडती रही। अपनी बहन का मृतशरीर मिलने को भी उसे रिश्वत देनी पडती है। मोरचरी के पहरेदार पर वह उछल पडती है। अपने पति की एड्स बीमारी की इलाज के लिए महंगी दवाइयाँ उसके लिए बोझिल बन जाती है। महंगई के विरुद्ध वह आवाज़ उठाती भी है-

> "मैं तो कहती हुँ कि गरीब में बीमार होने से अच्छा है उसका मर जाना। कितनी-कितनी महंगी दवाइयाँ...। सुईयाँ...। डाक्टर की फीस...तपासी का खर्च..फिर फल-फ्रूट...। ताकत की गोली। जूस...। रोज...रोज आना जाना... बस का किराया...। ऊपर से छुट्टी....। कहाँ से करेंगे बाबा...।"[81]

सकु की आत्मनिर्भरता उसके चरित्र की सबसे बडी खूबी है। यही आत्मनिर्भरता सकु को, अपने विकट परिस्थितियों में साथ देती है। अपनी अशिक्षा में, आर्थिक पराधीनता में, बहन ओर पति की मृत्यु के वक्त, सब मौके पर अपनी आत्मनिर्भरता तथा साहस उसके लिए रास्ता खोली ही देती है।

अपने को अशिक्षित मानने को वह तैयार है क्योंकि उसका परिवेश शिक्षा के प्रतिकूल था। लेकिन अपनी बेटी को वह खूब पढती है और वह खूब पढ़कर ऊँची शिक्षा प्राप्त करती भी है। यहाँ एक माँ की सफलता को दर्शेती है। सकु का चरित्र आम औरत की प्रयत्नशीलता और कर्तव्य बोध का स्पष्ट उदाहरण है। अपनी बेटी

---

[81] सकुबाई-नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.55

की लिखी कविता दोहराकर वह कहती है 'अब अपने अच्छे दिन आ गये है समय सर झुकाये खडा है, शर्मिन्दा है। जयदेव तनेजा के अनुसार-"यह नाटक हमें उम्मीद देता है कि यदि हममें आत्मविश्वास और साहस है तो समय और समाज को बदला भी जा सकता है।"[82] इस प्रकार सकुबाई एक नरम व्यक्तित्व के साथ उग्र आदर्शों की संरक्षिका भी है। एक ईमानदार नौकरानी, एक प्यारी माँ तथा एक सफल व्यक्तित्व के रूप में सकुबाई नाटक भर अपनी कामयाबी का संदेश फैलाती रहती है।

5.12.3 संवाद एवं भाषा

संवाद एवं भाषा की दृष्टि से सकुबाई सबसे महत्वपूर्ण निकला है। नाटक सकु के व्यंग्यात्मक संवादों से भरा है। ऐसे संवाद विकट स्थितियों पर नाटक को मर्मस्पर्शी बनाते है।

"सकुबाई- साली जाँडी बडी चालू औरत है। पार्टी में आती है तो आधा खाना खुद ही खा जाती है... टेस्टी! ...वेरी टेस्टी! कहती हुई सीधा किचन में घुस जाएगी।"[83] सकु के संवाद इतना व्यंग्यात्मक है कि सारे मर्म खुल जाते है और नाटक को ज्यादा प्रभावोत्पादक बना रखा है। पात्रानुकूलता संवादों की ओर एक विशेषता है। संवाद विवरणात्मक रह मये है। भाषा की दृष्टि से देखूँ तो भाषा ज़्यादा व्यंग्यात्मक है। भाषा यथार्थपरक शैली से मिल पाती है। सकु की मानसिकता का यथार्थ परिचय नाटक की भाषा से मिलता है। अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग ज़्यादा मिलता है। अशिक्षित सकु अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग करती दीख पडती है। देशज

---

[82] आधुनिक भारतीय नाट्यविमर्श - जयदेव तनेजा, पृ.289

[83] सकुबाई-नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.51

शब्दों का बाहुल्य नाटक में है। मुहाबरेदार भाषा और एक विशेषता है। सकु के परिवेश के अनुसार ही भाषा का सृजन हुआ है।

5.12.4 रंगमंचीयता

'सकुबाई' नाटक में मंचसज्जा एक ही प्लेटफार्म पर किया जाता है। एक ओर फ्लैट का एक कमरा जो महंगे तरीके से सजा हुआ है। उसके बाई और दरवाज़ा है। स्टेज के आधे हिस्से में एक काल्पनिक दीवार है, जिसके एक तरफ बेडरूम है। बीच में एक दरवाज़ा किचन में जाता है। बैडरूम वाला एरिया प्लेटफार्म द्वारा थोडी ऊँचाई देकर अलग किया जाता है। एक मेज, कपडे, बिस्तर, बालों का ब्रश, टेपरिकार्डर, टी.वी, फ्रिज, स्टूल चाय के ट्रे और कप, गीला तैलिया जैसे अनेक चीज़ों का भी इस्तेमाल नाटक में हुआ है। प्रस्तुत नाटक में प्रकाशयोजना की विशेष सूचना नहीं है। नाटक के शुरु में मंच पर प्रकाशयोजना की सूचना तो मिलती है। शेष भागों में प्रकाश योजना की कोई व्यवस्था नहीं। ध्वनिप्रयोग नाटक में अति शेचकता से की है। शुरु में ही रेडियों की आवाज़ मिलती है। टेपरिकार्डर भी चालू है। सकुबाई के कदम रखने की आवाज़ तक बडी सूक्ष्मता से तथा सफल ढंग से सुन सकते है। टेलिफोन की घंटी बजने की ध्वनि, डोर बेल बजने की आवाज़ आदि ध्वनिप्रयोग तक सूक्ष्मता से किया है। सामान बेचने वाली की आवाज़, फुलवाले की आवाज़, चाबी लगाने की आवाज़ आदि सूक्ष्म आवाज़ों तक का सुन्दर प्रयोग नाटक में मिलती हैं।

गीतों का प्रयोग नाटक में है। दो मराठी, एक बंगाली, एक हिन्दी गीतों की योजना नाटक को सुन्दर बनाती है। सकु की बेटी साइली अपनी माँ के जीवन पर लिखी गयी कविता, नाटक में गीत के रूप में प्रस्तुत है। 'सकुबाई' नाटक का मंचन

मुंबई में एकजूट द्वारा हुआ था। इसमें प्रसिद्ध अभनेत्री सरीता जोशी सकुबाई की भूमिका में मंच पर आई थी। उसकी राय में- "सकुबाई का अनुभव मेरे लिए बहुत ही अलग रहा है हम सकुबाई जैसी औरतों को देखते तो है उनसे काम भी लेते है। लेकिन जब मैंने ये पात्र किया और खुद सकुबाई बनी तभी उनके जीवन को समझ सकी, उनकी यातनायें, उनकी अच्छाइयों, बुराइयाँ और सबसे बडी बात, बडी-बडी समस्याओं में वो अपने साहस और मेहनत की वजह से कैसे बाहर निकल आती है और हाल में खुद रहती है। मुझे सकुबाई के द्वारा जीवन समझने का एक बहुत बडा अवसर मिला।"[84] नाटक अपनी मंचीय सघनता से नाट्यजगत में विशेष महत्व रखते है।

5.13 दयाशंकर की डायरी

5.13.1 वस्तुपक्ष

दयाशंकर की डायरी एकल नाट्य है। अस्तित्ववाद इसमें विषय के रूप में उभरता है। आम आदमी अपने चेतन और अवचेतन मन के द्वन्द में फँसकर पागल हो जाने की करुण व्यथा नाटक में मर्मस्पर्शी है। जीवन की विडंबनाओं से पलायन करनेवाले आम आदमी की त्रासद भरी ज़िन्दगी नाटक के वस्तु पक्ष में है। यू.पी के फरूखाबाद से एक फिल्मस्टार बनने की इच्छा से मुंबई में आया दयाशंकर एक मामूली क्लर्क की नौकरी में अपनी ज़िन्दगी को असंतुष्ट मानता है। इस असंतुष्टि उसकी ज़िन्दगी भर हावी होती है। फिल्म से उसका उत्कट चाह एक दर्शक की भूमिका में वह पूरा करता है। यहाँ मानव की कमज़ोर मानसिकता का परिचय मिलता है। जेब में पैसे की कमी की अपेक्षा करके सपनों की दुनिया में विचरने को

---

84 सकुबाई-नादिरा ज़हीर बब्बर, भूमिका से

पसंद करता है दया। अपने बोस की बेटी सॉनिया से उसका प्यार सिर्फ कल्पनाशील रह जाता है क्योंकि उसकी शादी और किसी से तय होती है। इस तरह वह पूरी काल्पनिकता में विचारने लगता है। यहाँ नादिरा जी की मान्यता है कि अपनी सीमाओं के परे जिन्दगी में महत्वाकांक्षी होना परिस्थितियों पर चुनौती रह जाते है।

दयाशंकर खुद को नेपाल के राजा के पद पर अभिषिक्त करना, गाँधीजी से उपदेश मिलना आदि राजनीतिक जर्जरता को उकेरता है। गाँधीजी दयाशंकर से राष्ट्र के निराश जनता को आशा और उम्मीद देने का उपदेश देता है। यह राष्ट्र में गाँधीवादी तत्वों के अपचय की ओर इशारा है। साथ ही वर्तमान राजनीतिक परिवेश में गाँधीवादी आदर्शों का महत्व भी सूचित है। दयाशंकर पूरी तरह कल्पना जगत में विचारता है तदफलस्वरुप पागल खाने में भर्ती होता है। लेकिन जब वह सूध प्राप्त करता है तो अपनी माँ के प्यार का भूखा रह जाता है। माँ के असीम प्यार में शरण पाने की उत्कट इच्छा, माँ के ममतामयी दिल की गरिमा को सूचित करता है। दयाशंकर की विडंबना आम आदमी की विडंबना है। दया आम आदमी का असली प्रतिरुप है जो अपने परिवेश के चक्कर में त्रासद ज़िन्दगी का मालिक रह जाता है। "हम सबके पाँव किसी के कंधों पर है और हमारे कंधों पर किसी और के पाव। इसलिए हम स्वयं भी दयाशंकर है और दयाशंकर बननेवाले भी। सपनों को हकीकत में बदलने के लि संघर्ष करना पडता है। जब हम संघर्ष नहीं करने, स्थितियों से समझौता कर लेते है, तो सपने हम पर हावी हो जाते है और दयाशंकर की तरह उन्हीं की काल्पनिक दुनिया में जीने लगती है।"[85] क्लर्क की नौकरी में असंतुष्ट दयाशंकर युवापीढी की काल्पनिकता से भरी ज़िन्दगी की ओर इशारा करती है।

---

[85] आधुनिक भारतीय नाट्यविमर्श - जयदेव तनेजा, पृ.289

काल्पनिक प्रसंगों के सहारे कथ्य को गरिमामय बनाया है। इस प्रकार एक असफल व्यक्ति की ज़िन्दगी के माध्यम से समसामायिक समस्याओं को उभारनेवाला प्रस्तुत नाटक कथ्य के स्तर पर स्तरीय है।

5.13.2 चरित्र-चित्रण

'दयाशंकर की डायरी' नाटक में एक ही प्रमुख पात्र है दयाशंकर। अपनी काल्पनिकता से भरी ज़िन्दगी को सफल ढंग से दयाशंकर नामक पात्र उकेरा है। दयाशंकर के निराले व्यक्तित्व का विश्लेषण आगे है।

5.13.2.1 दयाशंकर

'दयाशंकर की डायरी' नाटक का प्रमुख पात्र है दयाशंकर। उसके इर्द-गिर्द नाटक की सारी घटनायें घटित होती है। दयाशंकर के व्यक्तित्व में चेतन और अवचेन मन-इन दो पक्षों का हावी होना स्पष्टतः दर्शाया है। नाटक के एक निश्चित भाग तक वह कल्पना जगत और वास्तविक जगत के बीच से गुज़रनेवाला पात्र है तो शेष भागों में वह पूर्णतः अपना होश खो बैठता है। मुंबई जैसे महानगर की क्रूर दर्दनाक नीतियों मे दबा हुआ एक आम आदमी की नियति ही दयाशंकर की है।

दयाशंकर से संबंधित सबसे प्रमुख तथा सामान्य बात यह है कि वह एक निम्नवर्गीय परिवार का महत्वाकांक्षी युवक है। अपनी आर्थिक पराधीनतायें उसे ज़िन्दगी में बडे-बडे सपने देखने को प्रेरित करती हैं। एक पूरे परिवार की ज़िम्मेदारी दयाशंकर के कंधों पर थी। दयाशंकर सिनेमा और नाटक को इतना प्यार करता है कि एक फिल्म हीरो बनना उसके जीवन का लक्ष्य था। इसी लक्ष्य से यू.पी. से वह मंबई आता है। लेकिन वह एक फिल्म हीरो न बन सका। फिर भी उसके मन में फिल्म से अदम्य प्यार था। उसके शब्दों में-

"मैं होरो नहीं बन पाखा तो किसी न किसी तरह उस दुनिया की हल-चल का एक हिस्सा तो बना रहूँ। जब मैं नया-नया आया था तो बहुत भटकता था। लेकिन कोई काम नहीं मिला। मेरा एक दूर का रिश्तेदार जो जूनियर आर्टिस्ट सप्लायर था। उसने मुझे एक्स्ट्रा का रोल करने के लिए बोला। पर मैने मना कर दिया। मैंने कहा कि नही भाई एक्स्ट्रा नहीं बनूँगा। कल के दिन अगर मैं कामयाब हो गया, होरो बन गया तो, हीरोइन तो मेरे साथ करने से मना कर देगी। कहेंगी की मैं इसके साथ हीरोइन नहीं बनूँगी। ये तो कल एक्स्ट्रा था। नहीं मैंने तो अपना जीवन का एक नियम बनाया है कि भाई मछली की आँख्र देखनी है तो आँख ही देखो पूँछ मत देखो।"[86]

एक आदमी की काल्पनिक ऐयाशी की ओर यहाँ सूचना है। दयाशंकर अपने जीवन के लक्ष्य में पराजित न होता है। वह अपने बॉस की बेटी खूबसूरत सॉनिया को अपनी पत्नी बनाना चाहता है। एक आम आदमी की महत्वाकांक्षा को नादिरा जी ने दयाशंकर के माध्यम से दर्शाया है। दयाशंकर की ज़िन्दगी में एक मामूली क्लर्क बनना अनहोनी थी। लेकिन और कोई नौकरी न पाकर एक क्लर्क की नौकरी से उसे समझौता करना पडता है। वह अपने आपको, इस नौकरी में, कमीना, निचला समझता है। यह उनकी ज़िन्दगी में असफलता पैदा करती है। Betrold Brecht के अनुसार- "एक आदमी को कम तनख्वाह पर नौकरी देना उसे आजीवन कारावास की सजा देना है।"[87] उक्त कथन दयाशंकर के मनोवैज्ञानिक धरातल पर सठीक रह जाता है। दयाशंकर द्वारा पूछे जानेवाले सवालें इसका दृष्टांत है-

---

[86] दयाशंकर की डायरी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.28

[87] दयाशंकर की डायरी, नाटक के कवर से- नादिरा ज़हीर बब्बर

"दयाशंकर : मेरी जेब में सौ रूपये नहीं है तो क्या मैं सपने नहीं देख सकता? सपना देखना भी क्या इन लोगों की बपौती है? अगर मैं चाहूँ तो मेरा प्रमोशन यूँ करवा सकता हुँ। यूँ।"[88]

समाज में सबसे आगे खडे रहने की दयाशंकर की इच्छा आज के युवावर्ग की है। नयी पीढी की महत्वाकांक्षा का स्पष्ट रूप दयाशंकर में पाते है। हीरो न बन पाने पर, अच्छी नौकरी न मिल पाने पर भी वह स्वयं नियंत्रित है। लेकिन अपने प्रेमी बॉस की बेटी की शादी से वह पूर्णतः होश खो बैठता है। यहाँ महत्वाकांक्षाओं में पिसा हुआ एक व्यक्ति की नियति दयाशंकर में देख पाते है। दयाशंकर अपनी असली ज़िन्दगी में जो कुछ अप्राप्य है उसे प्राप्य बनाने की कोशिश अपनी अंदरूनी दुनिया में करता है। आम आदमी की ज़िन्दगी का पतन और उसके पागल होने की नियति का दयनीय चित्र यहाँ दयाशंकर में हमदेख सकते है। दयाशंकर के ज़रिए नादिरा जी ने यह दिखाने की कोशिश की है कि परिस्थितियों का सामना न कर पाने से आदमी ज़िन्दगी में कैसे पराजित हो जाता है। दयाशंकर के चरित्र में असफलता और नाकामायाबी सबसे आगे खडे है जो उनके जीवन की विडंबना बन जाती है।

5.13.3 संवाद एवं भाषा

'दयाशंकर की डायरी' एकल नाट्य है फिर भी संवाद एवं भाषा की दृष्टि से स्तरीय नाटक है। दयाशंकर के संवाद, ही नाटक के कथ्य को संप्रेषणीय बना देता है। उनकी विकट मानसिकता का स्पष्ट एहसास संवाद देते है।

---

[88] दयाशंकर की डायरी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.35

"दयाशंकर : मेरी जेब में सौ रुपये नहीं तो कथ्या मैं अपने नहीं देख सकता? सपने देखना भी क्या इन लोगों की बपौती है।"[89]

दयाशंकर के संवाद यथार्थपरक है तथा व्यंग्यात्मक भी है। अपने रहे-सहे श्रम की अपेक्षा दया सारे सामाजिक खोखले पन का व्यंग्य करते है। संवाद विवरणात्मक है। भाषा की दृष्टि से भी नाटक महत्वपूर्ण है। व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग नाटक में ज्यादा मिलता है। पात्रानुकूलता भाषा की और एक विशेषता है। नाटक की भाषा दयाशंकर जैसे कल्पनाशील आदमी के लिए बुनी गयी लगती है। अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग खूब मिलता है। मुहावरे दार भाषा, तथा देशज शब्दों का प्रयोग भी भाषागत विशेषतायें है। सरल भाषा का प्रयोग नाटक में मिलता है।

5.13.4 रंगमंचीयता

'दयाशंकर की डायरी' परंपरागत अंक या दृश्य की तरीका में न लिखा गया है। डायरी के पन्ने पलटने के साथ-साथ नाटक की घटनाओं का एहसास हमें मिलता है। नाटक में मंच निर्माण संबंधी रूपरेखा प्रस्तुत किया है, जिसके आधार पर मंच सज्जा आसान बन जाती है। मंच को तीन हिस्सों में बाँटकर अलग स्थान निर्दिष्ट कर नाटक का मंचन हुआ है। घर अफिस की सज्जा के लिए उचित फर्निचर का इंतजाम किया है। एक बिस्तर, कूर्सी, मेज़, मिट्टि का मटका, एक ड्रम, कुछ कपडे, हनुमान जी का तस्वीर, एक शीशा, एक चाय सेट, एक कंघी आदि सामग्रियों का नाटक में उपयोग हुआ है। डायरी शैली में कथ्य का गठन नवीन प्रयोग है। प्रकाश योजना की तरीका नाटक भर एक जैसा मिलता है। डायरी में हर एक पन्ने खुलने पर प्रकाश दिखाता है फिर अंत में बलैकअउट है। हर एक सीन में ऐसा, क्रम ज़ारी है।

---

[89] दयाशंकर की डायरी –नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.35

बीच बीच में प्रकाश का आना तथा फेड आउट होना दयाशंकर की मानसिकता का परिचायक है।

प्रस्तुत नाटक में विशेष रूप से ध्वनि-प्रयोग नहीं है। ट्रेन की खटर-खटर...आवाज़ यत्र-तत्र सुनाई पडती है। गीत योजना की दृष्टि से भी नाटक सफल है। नाटक के बीच-बीच में कुछ गीत है। नाटक के अंत का गीत दयाशंकर की मानसिक उलझन का परिचायक है। माँ के गोद में छिप जाने की अदम्य इच्छा को गाना प्रकट करते है। प्रस्तुत नाटक का मंचन नादिरा जी के ही निर्देशन में 'एकजूट' की ओर से 1998 में हुआ है। इसमें हिन्दी की सफल अभिनेता आशीष विद्यार्थी दयाशंकर की भूमिका में अभिनय किया था। आशिष विद्याथी के शब्द-"दयाशंकर की हर प्रस्तुति मेरे लिए नया अनुभव रही है। दर्शकों के सामने डेढ घंटे आपकी लिखी पंक्तियाँ बोलना, उन्हें हर बार नया आयाम और मायने पाता, ऐसा पिछले आठ सालों से होता रहा है और मिलती रही है सराहना प्रेक्षकों की।"[90] एक एकल नाट्य होकर भी नाटक अपनी मंचीयता में सफल निकली है।

5.14 जी जैसी आपकी मर्जी

5.14.1 वस्तुपक्ष

नादिरा जी का 'जी जैसी आपकी मर्जी' नाटक नारी समस्याओं का भरमार है। एक नारी केन्द्रित नाटक होने पर ही प्रस्तुत नाटक नारी जागरण की और ज्यादा लक्षित है। चार स्त्री पात्रों के ज़रिए नाटक समाज में नारियों के प्रति हो रहे मनोभाव, अत्याचार आदि का एक नया रूप हमारे सम्मुख रखता है। पारंपरिक

[90] दयाशंकर की डायरी- नादिरा ज़हीर बब्बर, भूमिका से

स्त्री विरुद्ध मनोभाव का एक पुनःसृजन नाटक में देख्र सकते है जो प्रासंगिक भी है। सामाजिक-पारिवारिक रुढियों से नारी ऐसे जकडी हुई है कि उसका स्वतंत्र चिंतन और जीवन अब भी असाध्य और अनहोनी बन जाती है।

वर्षा, दीपा, सुल्ताना और बबली ठंडन के ज़रिए नारियों पर होनेवाले तमाम अत्याचार-अन्याय नाटक का वस्तु रही है। एक नारी होने के नाते अपने अनुभूत समस्याओं का उत्कृष्ट ढंग से बयान यहाँ हुआ है। छुटकी दीपा की कहानी पारिवारिक मनोभाव के कारण जीवन में अकेली रह जानेवाली नारियों पर प्रकाश डालते है। पुरुष प्रधान समाज के विकृत वातावरण यहाँ चित्रित है। साथ ही परिवार वालों की दखियानूसी विचारधाराओं से जीवन में अकेली रह गयी लडकी को हम दीपा में पाते है। समाज में पुराने मूल्य बोध कायम रहने पर होनेवाला परिणतफल और उसे बदलने की ज़रूरत के बारे में वर्षा की कहानी याद दिलाती है। औरतों का आत्मसम्मान एक अनमोल चीज़ बनकर इस संदर्भ में सामने उभरता है। सुल्ताना कट्टर धार्मिकता और अशिक्षा का शिकार रह जाता है। जो नाटक को समकालीनता से जोडता है। कम उम्र में शादी करनेवाली धार्मिक नीतियों पर नाटक प्रहार करता है। सुल्ताना असल में अशिक्षा और धर्मांधता का शिकार है। परंपरा और आधुनिकता के बीच विटनेवाली औरत की रुदनकथा हम बबली टंठन में पाती है। यहाँ शिक्षित होने पर भी परिस्थितियों में जकडकर ख़ुद शहीद होनेवाली नारी की विचित्र कथा, बबली के ज़रिए प्रस्तुत की है। चार भिन्न उम्र की तथा भिन्न परिस्थितियों की औरतों की कथा के ज़रिए नादिरा जी का लक्ष्य यह कहना है कि, नारी चाहे उम्र में बडी हो या छोटी, शिक्षित या अशिक्षित तथा अच्छी पत्नी हो या नहीं, नारी की ज़िन्दगी एक दर्द भरी दास्तान है। परिवार, धर्म, समाज सब नारी

की उन्नति में बाधक तत्व के रुप में मिल पाता है जो एक चिरसत्य है। "हमारी धार्मिक मान्यतायें, परंपराएँ और सामाजिक रुढियाँ रही की इस दयनीय स्थिति और नियति के लिए ज़िम्मेदार है।"[91] प्रस्तुत नाटक समाज में नारी की स्थिति की यथार्थ अंकन रह जाता है। नारी की समस्या सदियों से वहीं की वहीं है। समय बीता, माहौल बदला मगर त्रासदी वहीं की वहीं है। इसलिए ही जी जैसी आपकी मर्जी पुरुष की मर्जी पर ज़ोर दोने वाले तथा कथित सामाजिक विसंगतियों पर सघन प्रहार है।

5.14.2 चरित्र-चित्रण

जी जैसी आपकी मर्जी में चार प्रमुख नारी पात्र है, बाकी सब गौण है। चारों का चरित्रपरक विश्लेषण आगे दिया है।

5.14.2.1 सुल्ताना

'जी जैसी आपकी मर्जी' नाटक के प्रमुख पात्र के रूप में सुल्ताना का चरित्र सबसे मर्मस्पर्शी ठहरा है। सुल्ताना की भूमिका नाटक में यथार्थ के परिप्रेक्ष्य लेकर उद्घाटित है। एक अशिक्षित नारी की ज़िन्दगी की कष्टता को सुल्ताना की कहानी के ज़रिए उभारने की कोशिश में, नाटककार ने दक्षता दिखायी है। बालविवाह के शिकार बनकर सुल्ताना को बारह तेरह के उम्र में शादी कराती है। वहीं से शुरू होती है उसके जीवन की विडंबनायें। समुराल की पीडाओं से वह ऊब जाती है। पति द्वारा उनपर हुए बलात्कार उसके लिए असह्य था। चार लडकियों को पैदा कराने के कारण, साँस और पति जब उसे घर से बाहर निकालते है तब उसके आगे ज़िन्दगी प्रश्नचिह्न खडा कर देता है। विकट सामाजिक नीतियों में दबी रहनेवाली आम

---

[91] आधुनिक भारतीय नाट्यविमर्श - जयदेव तनेजा, पृ.290

औरत का चित्रण सुल्ताना के चरित्र के हाथ किया गया है। अपनी विपन्न परिस्थितियों में भी वह सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह उठाती है-“ये क्या बात है? जब चाहा, बस औरत को तीन बार तलाक बोला और घर से बाहर निकाल दिया, बस फिर क्या था?”[92]

ऐसे विद्रोह के बावजूद भी वह परिस्थितियों से समझौता करने को विवश दीख पडती है। लेकिन जब उसकी बेटी का बलात्कार दूसरे पति द्वारा होता है तब वह अत्यंत क्रुब्द्ध हो जाती है। एक माँ की ममता की शक्ति, उसके दूसरे पती की हत्या को प्रेरित करती है। अपनी बेटी को बचाने के लिए उसे मारना पडती है। सुल्ताना के मानसिक तनाव और परिवेश जन्य साहस यहाँ व्यक्त है-

“इससे पहले भी मैंने ज़िन्दगी भर बहुत मुसीबतें काट के गुज़ारी थी लेकिन ये ज़िन्दगी सब से बुरी थी, जैसे दोधारी तलवार जितना भी संभलकर चलो कटना तो पडेगा ही।”[93]

एक माँ की अदम्य ममता यहाँ सुल्ताना के चरित्र की खूबी है। अपने बच्चों के लिए अपना भविष्य तक न्योछावर करनेवाली सुल्ताना एक आदर्श पात्र के रूप में उभरी है। अशिक्षित सुल्ताना को जब उसकी शिक्षित बेटी उपदेश देती है तो, शिक्षा के महत्व से वह उद्‌बोधित होती है। सुल्ताना, अपने-इर्द-गिर्द का एक ऐसा पात्र है जो अपनी ज़िन्दगी में मुश्किलें झेलने केलिए पैदा हुई है। कम उम्र में शादी करने को विवश, सुल्ताना, मुसलमान औरतों की ताडना को व्यक्त करती है। एक शांतशील

---

[92] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.31

[93] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.33

औरत, ममतामयी माँ की भूमिका में सुल्ताना सक्षम है। परिवेश जन्य विद्रोह उस के चरित्र को उज्ज्वल बनाता है।

5.14.2.2 बबली टंठन

इस नाटक का एक और सशक्त कथापात्र है बबली टंठन। बबली टंठन के चरित्र के माध्यम से यह स्पष्ट है कि अमीर और शिक्षित औरत भी अपने परिवेश से छुटकारा पा नहीं सकती। बबली का अस्तित्व विद्रोह करती है, लेकिन परंपरागत दखियानूसी नीतियों में पिसकर स्वातंत्र्य के लिए तड़पता भी है। बबली का चरित्र, पहले एक विद्रोही तेवर लेकर खडा होता है। घरवाले, उन्हें मिक्सड स्कूल में पढने न देते है। इसका वह विरोध करती थी। पति के घर जाते समय माँ से मिले उपदेश हर हाल में पति को खुश रखने, पर उसका अंतर्मन विद्रोह खडा कर देता है। शिक्षित होकर भी सामाजिक मान्यताओं का पालन करने को बाध्य एक औरत को हम बबली में देख सकते है। शादी के बाद हर हाल में अपने को पराजित वह महसूस करती है। पति का शारीरिक सुख भी उसकी ज़िम्मेदारी बन पडती है तो वह कहती है- "मेरी तो कुछ तमन्नायें है और मेरा भी तो जिस्म है, इसकी भी इच्छायें है। सारा जीवन एक नाटक की तरह तो नहीं जिया जा सकता।"[94] लेकिन अपनी इच्छाओं का बलिदान करके, पति को खुश रखनेवाली आम औरत के रूप में उसकी कायापलट होती है। पुरुषवर्चस्व समाज की नीतियों में दब जाती है बबली।

बबली की ज़िन्दगी की सबसे बडी विडंबना यह है कि अपने पति का गैर संबंध। मैनेजर की पत्नी अनीता से पति का संबंध, एक माँ बनने की खुशी में

---

[94] जी जैसी आपकी मर्ज़ी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.38

आनंदित बबली पर सघन प्रहार बन जाता है। पुरुष की बुरी नीतियों में दम घुटनेवाली आम औरत की अवस्था यहाँ बबली को भी होती है। बबली अपने पति के इस दोहरे चरित्र को भी बर्दाश्त करने को विवश हो जाती है। अपने पति या परिवार के लिए अपने अस्तित्व का बलिदान करनेवाली की नारी की विवशता आज के संदर्भ में भी प्रासंगिकता रखती है। बबली अपने को अंधी बहरी गूँगी समझकर खुद का त्याग अपना फर्ज समझी है। और सारे अन्यायों को झेलने केलिए तैयार भी होती है।

"बबली : हाँ मैं इन्हें खुश रखना चाहती हुँ... मैं एक बहुत अच्छी wife बनना चाहती हुँ... तो मतलब ...मैं अंधी, बहरी और गूँगी बन जाउँ क्यों... क्यों मर्दों को यह हक होता है कि वो सैकडों affair करें फिर भी फरिश्तें जैसे बने रहे। एक छत और दो वक्त की रोटी देना कोई चाँद तारे तोड लाना तो नहीं है, जिसके लिए हम अपना सब कुछ गंवा देते है क्यों-क्यों..क्यों..."[95] मन में ऐसे हज़ारों सवालों के रहने के बावजूद भी वह अपने परिवेश में सबसे हार मानती है। परंपरा और आधुनिकता के द्वन्द्व में जकडी हुई एक औरत को बबली टंठन के चरित्र के ज़रिए यहाँ चित्रित है। "चारों लडकियाँ/स्त्रीयाँ एक-दूसरे को पहचानती भले न हो, लेकिन एक दूसरे को अच्छी तरह जानती ज़रूर है-क्योंकि स्त्री होने के नाते थे चारों पुरुष वर्चस्ववाले क्रूर समाज में दर्द की एक ही डोर और उपेक्षा-अपमान की एक ही नियति बंधी है।"[96] यहाँ बबली टंठन के चरित्र के माध्यम से, परंपरागत मान्यताओं से पराजित होनेवाली नारी की नियति का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है।

---

[95] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.40, 41

[96] आधुनिक भारतीय नाट्यविमर्श - जयदेव तनेजा, पृ.290

5.14.2.3 छुटकी दीपा

प्रस्तुत नाटक के सबसे छोटी उम्र का पात्र है छुटकी दीपा। दीपा स्वयं जानती है कि डॉक्टर द्वारा गर्भच्छेद रोकने के कारण ही वह इस पृथ्वी में जन्म ले लिया है। उस डॉक्टर से वह सदा कृतज्ञ है जिन्होंने उसकी जान बचायी है। लडकी होने के कारण अपने ही घरवालों से वह पीडायें डालती रहती थी। वह इस सत्य से परिचित है कि समाज पुरुष सत्ता पर आधारित है। छोटी उम्र में ही वह ऐसी सच्चाई का सामना करती है। क्योंकि घर में भाई को लडकियों से ज्यादा सत्ता प्राप्त थी। दीपा हमेशा सोचती थी, लडकी और लडके की परिस्थितियों में अंतर लानेवाला वह कौन सा तत्व है? अपने परिवेश के इन अन्यायों के प्रति वह प्रतिषेध भी करती है। नारी होने के कारण होनेवाला अन्याय वह बरदाश्त करती नहीं। एक बार वह भाई की सेवा करने को इनकार करती है। उसके लिए सजा भी मिलती है। अपनी दीदी की मृत्यु उसके मन को कचोटती है। वह समझ लेती है कि दीदी की बीमारी से घरवालों की अवज़ा ही उसकी मृत्यु का कारण है। मर्दों के मनमानी और उनके समाज की अवस्था के विरुद्ध वह सदा आवाज़ उठाती है। उदाहरण स्वरुप वह यों पूछती है-

“मैं हमेशा सोचती हुँ ऐसा क्यों होता है? क्यों अम्मा को मार पडती है? क्यों हम बहनों को मार पडती है क्यों भैया इंगलिश मीडियम में और हम हिन्दी मीडियम में..? भैया के दो-दो ट्यूशन फिर भी घिसटघासट के पास होता है हम बिना ट्यूशन के स्कालरशिप लाते है फिर भी क्यों नहीं प्यार करते हमें...क्यों नहीं प्यार करते हमें सब लोग? क्या बुराई है हम में, हमें भी तो प्यार चाहिए न?”[97]

---

[97] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.19

सामाजिक नीतियों में फँसी हुई छोटी लडकी की दर्दे दिल का हाल, इन सवालों से समझ पाते है। दीपा अपनी छोटी उम्र में ही परिस्थितियों से समझौता कर, अपने स्वतंत्र अस्तित्व को व्यक्त करती है।

5.14.2.4 वर्षा पोटे

'जी जैसी आपकी मर्जी' नाटक के प्रमुख्र पात्रों में एक है वर्षा पोटे। वर्षा के चरित्र की सबसे बडी खूबी उसकी आत्मनिर्भरता है। अपने पारिवारिक दायरें में नारियों की पीडा, उसके मन को उद्वेलित करती है। माँ या शोभाकाकू, सब पुरुषों से ताडना पाती रहती थी। उसके मन सामाजिक मान्यताओं पर प्रश्न उठाती है-"अभी भी सोचती हुँ जो मेरा खून खौल उठता है। क्यों ऐसा होता है हम लोगों को पाव की जूती भी नहीं समझते उनके लिए अपनी जान दे देते है, क्यों हमें बचपन से कूट-कूटकर सिखाया जाता है कि पति जैसा भी Adjust करो क्योंकि अपने पति को खुश रख्रने में हमारी सबसे बडी कामयाबी है। और हमारा सुख हमारी आशायें हमारे सपने उनका क्या?"[98] अपने आत्मसम्मान को पुरुषवर्ग के सामने गिरवी रख्रने को वह तैयार नहीं होती है। यहाँ अपने आत्मसम्मान के मूल्य को सबसे ज्यादा महत्व देनेवाली औरत को हम वर्षा में देख्रते है। अपने पिताजी की बीमारी के वक्त, ओर किसी की सहारा न माँगकर वह और दीदी दूकान और घर संभालती है। उसकी आत्मनिर्भरता, किसी के सामने सिर झूकाने को नहीं देती है। जिग्नेष जैसे अमीर लडकों के जाल में वह कभी न फँसती है। पुरुष वर्ग के छल-कपट से परिचित वर्षा उसकी ओर मुँह मोडती है। उनके प्रति अपना अमर्ष वह व्यक्त करती भी है-

---

[98] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.23, 24

“Bullshit Community के बाहर की लडकियों को घुमाना चाहते हो, उनके साथ सोना चाहत हो, तब मम्मी-पापा से पूछ था?... किस चीज़ में माडर्न होते है ये लोग, विचारों से... ज़िन्दगी की जो बुनियादी चीज़ें है, मान्यतायें है, उनमें?”[99]

नारी मुक्ति की खोखली बातों पर व्यंग्य करती है वर्षा पोटे। वह उद्वेलित नयी पीढि का प्रतीक है। अपने अनुभवों से ज्यादा समझदार बनी एक औरत को हम वर्षा में देख सकते है। इस प्रकार हम कह सकते है कि वर्षा अपनी आत्मनिर्भरता तथा आत्मसम्मान से अपने चरित्र को गरिमामय बना रखा है।

5.14.3 संवाद एवं भाषा

संवाद एवं भाषा की दृष्टि से नाटक सफल है। सारे संवाद इतने चटुल है कि कथ्य को सीधा समझने में मददगार रहे है। व्यंग्यात्मक संवाद एक और विशेषता है। तत्कालीन विसंगतियों पर चोट करने में सारे संवाद सफल है।

“बबली- मुझे ऐसे लगता है जैसे मैं किसी showroom में सजी हुई साडी हुँ जिसे बेचने के लिए salesman भरपूर तारीफें कर रहा हो।”[100]

पुरानी दखियानूसी सामाजिक मान्यताओं पर बबली का प्रासंगिक रह जाती है। भावों की तीव्रता संवादों में ज्यादा पायी जाती है। सामाजिक रूढियों में दबे रहनेवाली औरतों के मानसिक संघर्ष को अधिक तीव्रता से संवादों में उकेरा है। लंबे विशेषणात्मक संवाद नाटक की विशेषता है। क्योंकि नाटक में पात्रों के बयान से ही कथ्य का उद्घाटन हुआ है। विवरणतात्मक संवाद ज्यादा सिलते है। भाषा व्यंगतात्मक

---

[99] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ. 24

[100] जी जैसी आपकी मर्जी- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.36

है। हर एक पात्र के परिवेशानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। “नाटक की भाषा व्यंग्यात्मक, प्रसंगानुकूल बनी है। नाटक की भाषा जीवित बनी है। उससे समस्त नाटक एक प्रकार से मूर्त हो उठता है। भाषा हर पात्र के वर्ग ओहदे के अनुकूल बनी है।”[101] देशज शब्दों का प्रयोग, अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग, बोलचाल की भाषा, जैसे अनेक भाषागत प्रयोग मिलते है। प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग भी हुआ है।

5.14.4 रंगमंचीयता

‘जी जैसी आपकी मर्जी’ परंपरागत अंक विभाजन को पूर्णता उपेक्षा की है। चार प्रमुख पात्रों के अवतरण से हर एक भाग शुरु होती है। मंच पर चार फीट चौडे और फीट लंबे चार प्लेटफार्मा को अलग-अलग ऊँचाई दी गई है। इन प्लेटफार्मों के ऊपर 4x8 की पेंटिंग खडी की गई है जो इन पात्रों के स्वभाव से मेल खाती है। चारों प्लेटफार्मों को अलग-अलग जगह पर स्थित किया है। इस प्रकार चार मुख्यपात्रों के लिए चार प्लेटफार्म का निर्माण अच्छे ठंग से कर सकते है। कठपुतलियों का प्रयोग हुआ है। परदा, काला कपडा पेंटिग्स आदि का भी इस्तेमाल हुआ है। प्रकाश योजना की दृष्टि से नाटक में खासियत नहीं है। शुरु में प्रकाश की सूचना है लेकिर फिर मद्धिम होते है। नाटक के अंत में प्रकाश-अंधेरा का मिश्रित योजना है। ध्वनि प्रयोग नाटक में बिरले ही मिलते है। कठपुतली नृत्य की धुन बजती है। वही धुन का उतार-चढाव मात्र है। ‘जी जैसी आपकी मर्जी’ नामक नाटक सीमित समय के अंतर दर्शकों के आस्वादन के लिए तैयार कर सकता है। प्रस्तुत नाटक का मंचन 1 सितंबर 2004 को मुंबई के नेहरु सेंटर द्वारा आयोजित राष्ट्रीय

---

[101] हिन्दी महिला नाटककार- डॉ. भगवान जाधव, पृ.223

नाट्य उत्सव में किया था। इनका निर्देशन स्वयं नादिरा जी द्वारा ही हुआ था। बाद में कई स्थानों में इसका मंचन हुआ था।

5.15 सुमन और सना

5.15.1 वस्तुपक्ष

आतंकवाद और सांप्रदायिक दंगे के शिकार हुए लोगों की त्रासद ज़िदगी का एक जीवित लेख्रा-जोख्रा है सुमन और सना। अपने राष्ट्र की उन्नती में विधातक तत्व रह रहे है- आतंकवाद और सांप्रदायिक दंगे। विकासोन्मुख्र राष्ट्र के आगे आतंकवाद और सांप्रदायिक दंगे एक दोधारी तलवार जैसे लटके हुए है। नादिरा ज़हीर बब्बर का सुमन और सना कश्मीर के आतंकवाद और गुजरात के सांप्रदायिक दंगे के शिकारों के बदहाल दिख्राता है। नाटक में कश्मीर तथा गुजरात के शरणार्थी शिबिर के पीडित लोगों की त्रासद ज़िन्दगी अत्यंत मर्मस्पर्शी ढंग से चित्रित है। शरणार्थी शिबिरों की निजस्थिति तथा वहाँ के दयनीय जीवन की यथार्थ अवस्था हमारे सम्मुख्र रख्रे है नाटक में। कश्मीर के शरणार्थी शिबिर में सुमन तथा गुजरात के शरणार्थी शिबिर में सना हमें रुलाती है। गुजरात में हिन्दु वर्गीयवाद के कारण तडपते मानवों की दयनीय व्यथा नाटक के ‘वस्तु’ को प्रासंगिकता की ओर ले चलते है। हम देख्र पाते है कि युवा लोग अपने देश में सेकेंट सिटिसन का पद बरदाश्त न करते है जो दँगे में पीडित लोगों की संवेदना का प्रकट रुप है। आतंकवाद के कारण अनेक माताओं को अपने बेटे ख्रोते है। शांता-अमीना आदि इसके प्रमाण है। प्यार और भाई चारा के अभाव से ग्रसित समाज की यथार्थ हालात बताकर, मानवीय गुणों के कायम रख्रने की ज़रुरतों पर नाटक ज़ोर देता है। लोगों के मन में अपने जन्म

देश से होने वाला प्यार और अपने मुल्क की ओर लौटने की उत्कट इच्छा नाटक मे प्रकट है।

नाटक में वस्तुपक्ष परिवेश के अनुकूल बना है। सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों से होकर मानवीय धरातल पर नाटक उभरता है। विश्वनीय वस्तु को ही नाटक में अवतरित की है और वह प्रासंगिक भी है। "प्रस्तुत नाटक सांप्रदायिक दंगे की वजह से पीडित समाज, लोगों की व्यथा, उससे उत्पन्न मानसिक आघात का बडे ही मार्मिक रुप में प्रस्तुत करता है। साथ ही शरणार्थी शिबिर में आई दो लडकियाँ, सुमन और सना की आपबीती प्रस्तुत करता है।"[102] सांप्रदायिक दंगे और आतंकवाद के फलस्वरुप होनेवाली तबाही तथा पीडित लोगों के अंतरमन के दर्द का नाटक में सठीक अभिव्यक्ति मिलती है।

5.15.2 चरित्र चित्रण

'सुमन और सना' नाटक में पात्रों की भरमार है। नाटक में दस से ज्यादा पात्र है। फिर भी हर एक छोटे पात्रों की भी अपनी भूमिका है। यहाँ नाटक के चंद पात्रों की चरित्रगत विशेषतायें है जो प्रमुख्र भूमिका में है।

5.15.2.1 सुमन

नाटक का केन्द्र पात्र है सुमन। प्यार और मानवीयता का प्रतीक है सुमन। आतंकवाद जैसे भीषण हथकंडों के शिकार के रुप में सुमन नाटक में चित्रित है। सुमन के माँ-बाप आतंकवाद के कारण मर जाते है और सुमन को शरणार्थी शिबिर मे रहना पडता है। अपने माँ-बाप का अभाव-वह वहाँ न अनुभव करता है। क्योंकि

---

[102] हिन्दी महिला नाटककार- डॉ. भगवान जाधव, पृ.136

छोटी होने के कारण सबका लाड प्यार का वह हकदार बन जाती है। नुन्द्ध ऋषि से सुमन की बातें मन को आंदोलित करती है। जैसे-

"सुमन :मुझे आपसे कुछ माँगना है। लेकिन मेरे पास धागा नही रुमाल बाध दूँ?

नुन्द :बोला, क्या चाहती हो?

सुमन :मेरे अम्माँ और बाबा। उनको आप ला सकते हो?"[103]

माँ-बाप को खोयी लडकी के मन की दयनीयता हम सुमन में पाती है। सुमन का चरित्र मासूमियत और इनसानियत पर सशक्त प्रहर करता है। आतंकवाद जैसी त्रासद स्थितियों का जीवंत उदाहरण है सुमन।

5.15.2.2 सना

नाटक का अगला कथापात्र सना अहमदाबाद के शाह आलम कैंप की छोटी सी शरणार्थी है। गुजरात के नरोदा पाट्या सांप्रदायिक दंगे में उसके माँ-बाप की हत्या हुई है। सबसे छोटी होने के कारण ही वह कैंप में सबसे लाडली है विशेष रूप से पटेल चाचा की। माँ-बाप से अपार ममता वह मन में रखती है और उनसे अपने लगाव हर एक प्रसंग में व्यक्त करती भी है। नाटक के एक प्रसंग में सना की माँ की रूह आती है और उसके साथ बातें भी होती है-

"सना : अच्छा, ये तो गलत बात है-मैं अभी अल्लाह पाक को फोन लगाती हुँ। हमारे कैंप में फोन भी है। और मुझे फोन करना आ गया है।....हलो अत्याह पाक...मैं सना बोल रही हुँ...शाह आलम कैंप से

---

[103] सुमन और सना - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ. 39

आप हमेशा मेरी मम्मी को ही भेज देते है...अब्बा को क्यों नहीं भेजते..? अच्छा। अलाह पाक भेज रहे है।”[104]

बच्चों की निरीह आदत का प्रतीक रह जाती है सना। छोटी सी अवस्था में माँ-बाप को खोयी सना अपनी परिस्थितियों से समझौता कर पाती है। सना के ज़रिए प्यार और शांती फैलाने का संदेश यहाँ देते है। नाटक के अंत में कृष्ण भगवान से सना, संसार को बुराइयों से बचने का अनुरोध करती है। संसार में प्यार और शांती फैलाने को इच्छित सना एक बच्ची की मासूमियत से परे एक सजग बालिका के रूप में उभरती है।

5.15.2.3 मुहम्मद अली

‘सुमन और सना’ नाटक में हरिकौल का दोस्त है मुहम्मद अली। हरिकौल के पूरे ज़मीन जायदाद का देखभाल वह करता है। मुहम्मद अली में, सांप्रदायिकता से दूर मानवीयता को प्रमुख माननेवाले एक सच्चा मानव को हम देख पाते है। अपने जान से भी ज्यादा वह अपने दोस्त को प्यार करते है। आतंकवादी बने अपने बेटे की धमकी को वह डालकर अपने दोस्त के ज़मीन का सच्चा पहरेदार बनता है। बेटा आतंकवादियों के जाल में फँसता है और पिता के दोस्त के जायदाद हडपने की धमकी देती है। लेकिन मुहम्मद अली अपने बेटे से ज्यादा अपने दोस्त को प्यार करते है अतः वह बेटे को पुलिस से पकडाकर एक नागरिक क फर्ज निभाता है। यहाँ उनका चरित्र मानवीयता के लिए खडे रहनेवाले एक सच्चा नागरिक के रूप में चमकता है। मुहम्मद अली का देशप्रेम उनके चरित्र की और एक खूबी है। उनकी राय में-

---

[104] सुमन और सना- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.42

"अरे हुक्कुस बुक्कुस ये हमारा कश्मीरी नगमा है। तुमको आता है। आजकल कश्मीर में ये सब गाना कोई बोलता ही नहीं। हमारी अपनी काश्मीरी जबान ही खत्म होती जा रही है। सच कहते है सब जी किसी कौम को खत्म करना हो तो उसे मारने की ज़रूरत नहीं है। कौम की ज़बान खत्म कर दो कौम अपने-आप मार जायेगी।"[105]

नाटक में मुहम्मद अली का देश प्रेम और दोस्त के प्रति उत्कट प्यार उनके चरित्र की प्रमुख विशेषता है। एक मानवीयता का प्रचारक के रुप में उनकी भूमिका सफल निकला है।

5.15.2.4 पटेल चाचा

प्रस्तुत नाटक के और एक प्रमुख पात्र है- पटेला चाचा। एक प्यार भरा व्यक्तित्व पटेल में हम देखते है। सना को अपनी बेटी जैसी लाड प्यार वह देता है। सना से उनका प्यार इनसानियत का सच्चा रूप रह जाता है। धार्मिक-संबंद्धों से अलग मानवीयता का स्पष्ट एहसास पटेल चाचा में हम पाते है। अपने ज़मीन से उसका प्यार उसके चरित्र की और एक विशेषता है। दंगे में बेघर हुए पटेल चाचा अपने घर जाने को सदा लालायित रहता है। अपने मुल्क में जीने के लिए वह धर्म परिवर्तन करने के लिए तक तैयार होता है।

"पटेल चाचा - कुछ भी हो मैं अपने घर जाऊँगा...जली हुई काली दीवारों को साफ करूँगा... फिर से कोई छोटा-मोटा धंधा शुरु करूँगा.. क्या कर लेंगे। वे लोगो मार देंगे मुझे? तो मार दे...। मुझमें अब वैसे भी ज़िन्दा होता

[105] सुमन और सना- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.35

है। कम से कम ये सुख्र तो रहेगा कि मरते वक्त इज़्ज़त से हम लोग कब्रिस्तान मे रह रहे है। तो क्या हम लोग ज़िन्दा है? मैं जा रहा हुँ।”[106]

शरणार्थियों की दयनीय दशा का स्वरूप हम पटेल चाचा में देख्र सकते है। अपने मुल्क के रहते, बनकर जीने की त्रासद अवस्था का वह शिकार होते है। सांप्रदायिक दंगे के कारण अपने अस्तित्व तक बिगड गये पटेल चाचा की दयनीय अवस्था, मर्मस्पर्शी ठहर जाता है। एक असहाय आदमी का दर्द उभारने में पटेल चाचा का चरित्र सफल हुआ है।

5.15.2.5 यूसुफ

सुमन और सना नाटक का एक महत्वपूर्ण चरित्र है यूसुफ। उसका चरित्र बहुत शक्तिशाली मायने रख्रता है। अहमदाबाद कैंप में यूसुफ की सेवा हम पाते है। परिवेश के प्रति सजगत तथा विवेकशील दृष्टिकोण यूसुफ की अपनी विशेषतायें है। शरणार्थियों के नाम पर सारी मदद हडपनेवाले अधिकारी वर्ग पर वह अपना अमर्ष प्रकट करता है-

“यूसुफ : किधर है सामान मैडम? सुनते तो हम भी बहुत है कि सामान आया है। सामान आया है। मगर हम तक तो नही पहूँचा। कोई कहता है कि ट्रक के ट्रक अहमदाबाद के बाहर ख्रडे है। अंदर आने नहीं देता।”[107]

---

106 सुमन और सना- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.51, 52

107 सुमन और सना- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ. 49

शरणार्थी होने पर भी, अपनों पर ऐसे आरोप वह बरदाश्त नहीं करता। एक सच्चा देशभक्त को यूसुफ के चरित्र में पाते है। अपने मुल्क से उसका प्रेम अपार है। देश की त्रासद अवस्था से वे मुक्ति चाहते है। साथ ही सारे मुसलमानों को आतंकवादी ठहरने से आशंका प्रकट करते है। एक मुसलमान होने के कारण ही ऐसे आरोप उसके अंतर्मन को छूता है। अपने मूलक की सेवा करने को उद्यत एक सच्चे देशप्रेमी का चित्र यूसुफ के चरित्र में उभारते है। यूसुफ एक विद्रोही शरणार्थी के साथ-साथ एक सजग नागरिक भी है।

5.15.3 संवाद एवं भाषा

संवाद एवं भाषा की दृष्टि से नाटक सबसे प्रमुख है। क्योंकि नाटक में इतने पात्र भरे हुए कि उनके संवाद पात्रानुकूल बन बैठे है। संवादों में लचीलापन है और विषय का उद्‌घाटन संवादों से सक्षम निकला है।

> "यूसुफ : अब क्या कर सकते है! इन्हीं हालात से हमें लडना है। मैं मानता हुँ हमारा मुल्क एक ऐसे दौर से गुज़र रहा है जहाँ हर वक्त हमें ऐसा लगता है जैसे हमारा कोई इम्तिहान हो।"[108]

सांप्रदायिक ज़हर का सीधा अनुभव यहाँ संवादों में मिलता है। संवादों ने जादू का काम किया है नादिरा जी ने नटों के संवाद पात्रों के भावों की तीव्रतम वाहिकायें है। प्यार, भाईचारा, का संदेश फैलाने में संवाद सशक्त भूमिका निभाई है। भाषा की दृष्टि से देखें तो पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। पात्रों की संख्या के बावजूद नाटक में उपयुक्त हुआ है। पात्रों की संख्या के बावजूद नाटक में उपयुक्त भाषा प्रयुक्त

---

[108] सुमन और सना- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.54

है। विषयानुकूलता भाषा की और एक विशेषता है। "नाटक में भाषा का सार्थक प्रयोग हुआ है। उसमें काव्य जैसी गहन लाक्षणिकता, चित्रवता और बोलचाल की भाषा की मूर्तता आयी है। भाषा पात्रानुकूल प्रसंगानुकूल बनी है।"[109] इस प्रकार भाषा की दृष्टि से नाटक उत्कृष्ट है।

5.15.4 रंगमंचीयता

रंगमंच पर 'सुमन और सना' एक हद तक कामयाब रहा है। यह ग्यारह दृश्यों में बांटा गया नाटक है। इस नाटक का सेट पहले अंक में अपस्टेज को थोडा सा ऊँचाई देकर दे सकता है। प्लेटफार्म के पीछे बर्फिले पहाड है। साथ में एक सूखा चिनार का पेड सिर्फ एक बडा सा चिनार का पता लडका रहा है। जिसके ऊपर खून के छींटे दर्शाये गई है और उसके पीछे से सटी हुई कंटीले तारों की बाड है। बाकी दृश्यों में इनको हटाकर उचित चीज़ों का प्रयोग किया है। पाँचवें दृश्य में नुन्द ऋषि की दरगाह के लिए एक नया लुक दिया गया है। लकडियों का गट्ठर, मशीनगण, पोटली, एक थैला, एक नोटबुक, दो या तीन पतंग, कुछ खिलौने, स्कूल बाग, दो कुर्सी, एक टेबल आदि सामग्रियों का भी उपयोग है। प्रकाश-योजना में विविधता दीख पडती हैं। प्रारंभ में प्रकाश है। फिर अंधेरा और प्रकाश का क्रमानुसार प्रयोग हुआ है। 11 वीं दृश्य में हल्की नीली रोशनी की सूचना है जो कृष्णा की काल्पनिक प्रवेश को सूचित करता है। अंत में दमघोर अंधेरा की सूचना है। यहाँ परिवेश की भीषण अवस्था सूचित है। ध्वनि-प्रयोग की दृष्टि से नाटक में विविधता मिलती है। नाटक के शुरू में ही हार्मोनियम के नगाडे सुनते है। कोरस का हम्मिंग, बाहर के हलचल आवाज़ें आदि प्रसंगानुकूल विशेष ढंग से सुनने को मिलते

---

[109] हिन्दी महिला नाटककार - भगवान जाथव, पृ.223

है। खाने के लिए बजनेवाली घंटी की आवाज़, शारणर्थियों के चीख-पुकार की आवाज़, बारिश होने की आवाज़, फायरिंग की आवाज़ आदि कई आवाज़ें नाटक में सुनने को मिलती है। नाटक के एक संदर्भ में कृष्ण का प्रवेश है, वहाँ बॉसुरी की आवाज़ सुनाई देती है। कोरस का प्रयोग भी ध्वन्यात्मक विशेषता का दृष्टांत है। 'सुमन और सना' अपनी विषयगत सीमा के बावजूद भी मंचन योग्य तथा दिलचस्प बना है। प्रस्तुत नाटक का निर्देश नादिरा जी के द्वारा हुआ था और मंचन एकजूट द्वारा भी।

5.16 आपरेशन क्लाउडबर्स्ट

5.16.1 वस्तुपक्ष

'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' नाटक विषय चयन की दृष्टि से एक अलग पहचान है। इसकी वस्तु पूर्वोत्तर राज्यों की समस्याओं पर आधारित है और आतंकवाद, तथा उसके कारणों पर भी प्रकाश डालता है। "नाटक उल्फा उग्रवाद को कश्मीर, आपरेशन ब्लूस्टार, चौरासी के दंगों, कारगिल गुजरात ओर अमेरिका-इरान से जोडकर देखता और व्यापक संदर्भ में आतंकवाद के मूल कारणों एवं समस्याओं को खोजने का गंभीर प्रयास भी करता है।"[110] उल्फा उग्रवाद के पनपने का कारण तथा भारतीय सेना की गरिमा को नाटक उद्‌घाटित करता है। नाटक में उल्फावालों से छोडा गया कैंप में मेजर गोयकवाड और उसके अधीन भारतीय सैनिकों को दिखाकर उनके साहस का मूर्तरूप हमको दिखते है। अपने मानसिक संतुलन उनके कर्तव्य के लिए ज़रूरी चीज़ है और ऐसे ही वे देश की गरिमा को कायम रखते है। मोरोमी

[110] आधुनिक भारतीय नाट्यविमर्श- जयदेव तनेजा, पृ.292

भारतीय सेना की ईमानदारी और मानवीयता से प्रभावित होती है और उनसे एक स्वस्थ मनोभाव रखती है। दुश्मनों पर भी अपना प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित करनेवाले भारतीय सेना सचमुच, आदर-सम्मान के लिए योग्य है।

पूर्वोत्तर राज्यों की समस्याओं को अपने वस्तुपक्ष में लेकर नादिरा जीने एक बेजोड काम किया है। क्योंकि ऐसे विषयों की ओर किसी का ध्यान अब तक न रहा है। असम जैसे प्रदेशों की दयनीय हालात नाटक में स्पष्ट रूप से उभरी है। इस से पाठक वहाँ की परिस्थितियों से संवेदना रखते भी है। मोरोमी के माध्यम से असम की आम औरत की सही स्थिति हमारे सम्मुख रखी है। नाटक अपने मानवीय संस्पर्श से भी पाठक के दिल को छूता है। सैनिकों का तथा मोरोमी का जीवन यथार्थ आम आदमी का है और जो काफी यथार्थता से भरा भी है। सीमा में हमारी सुरक्षा में कार्यरत सैनिकों का यथार्थ रूप भी नाटक में हम देखते है। 'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' जैसे नाटक राजनैतिक समस्याओं से परिचय कराने के साथ-साथ ज़िन्दगी के असलियत को भी चित्रित करते है। वस्तु चयन में सार्थकता और बारीकी इस नाटक की अपनी विशेषता है। इसलिए ही नाटक सभी तरह के पाठकों के लिए ग्राह्य है। आतंकवाद की समस्या को एक अलग नज़रिए से नाटक प्रस्तुत करता है।

5.16.2 चरित्र चित्रण

'आपरेशन क्लाउडबर्स्ट' में विषय की गरिमा के अनुकूल पात्रों की सजावट है। नाटक में पात्रों की संख्या ज्यादा है। लेकिन यहाँ प्रमुख पात्रों का विश्लेषण ही दिया है।

5.16.2.1 गेयकवाड - पात्र-चरित्र

आपरेशन क्लाउडबर्स्ट नाटक का प्रमुख पात्र है में गेयकवाड। में गेयकवाड नाटक का मेरुदंड है। अपनी ईमानदारी, देशप्रेम, सेवा मनोभाव आदि गुणों में वह मेजर पद के लिए सुयोग्य है। एक मेजर होकर भी उनमें विनय, सादगी भरी हुई है। अपने सैनिकों से एक भाई जैसा व्यवहार हम देखते है। साथ ही उन्हें सही दिशा में लाने की क्षमता भी मेजर में दीख पडती है। सेना की गरिमा मेजर गेयकवाड के लिए सबसे प्रमुख बात है। सैनिकों से सदा सेना की महत्ता पर कहते है-

"मेजर गेयकवाड:Indian army इस देश का महान institution है... जिसका गौरवशाली इतिहास है और उसका कारण न्यूक्लियर वेपन्स, टैंक्स, मेशीनगण्स हेलिकाप्टर या फाटूर फैंस नही बल्कि आप है। चारों तरह देश में जहाँ तरह की समस्यायें है, अराजकता, भ्रष्टाचार है वह इंडियन आर्मी एक ध्रुवतारे की तरह चमकती है। देश का और देश की जनता का हमारे ऊपर विश्वास।"[111]

शास्त्र से भी ज्यादा सैनिकों की आस्था पर गर्व करनेवाला गेयकवाड भारतीय सेना की गरिमा पर गर्वीले दीख पडते है। इन्सानियत को सबसे मूल्यवत समझनेवाला गेयकवाद एक सच्चा कर्तव्यनिष्ठ अफसर है। अपने आप में उनकी सफलता, अपने सैनिकों को उपदेश देने के काबिल बनाते है। गेयकवाड सारे सैनिकों के लिए एक उत्तम नमूना है। मेजर के दिल की भावुकता का भी नाटक में परिचय मिलता है। एक कर्मठ अफसर के साथ-साथ एक भावुक व्यक्ति को भी मेजर में हम देख पाते है। लाल रंग से उनको नफ्रत, खून देख-देखकर ऊब गये है। ऐसी बातों में डूबते समय वह ज्यादा भावुक बन जाते है। ऐन वक्त सैनिकों को सही दिशा

---

[111] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.37

लाने में भी वह कामयाब है। हव राठी के संदर्भ में यह द्रष्टव्य है। इस प्रकार, मेजर की कर्तव्यपरायणता, साहस, मनोबल देशप्रेम आदि उनके चरित्र को श्रेष्ठ बनाती है। एक मेजर की भूमिका में वह सफल है।

5.16.2.2 मोरोमी

प्रस्तुत नाटक का अगला पात्र है- मोरोमी। वह असम की शिक्षिका है। रास्ता भटककर वह, अपनी बच्ची मातू के साथ भारतीय सेना के अड्डे में पहुँचती है। मोरोमी की विद्रोहभावना ही उसके चरित्र की गरिमा है। सैनिकों के द्वारा पकडे जाने पर एक सिंहीनी की तरह वह उन पर गरजती है। भारतीय सेना के प्रति नफ़रत उसके हर व्यवहार में झलक्ती है। एक संघर्षशील औरत की भूमिका में मोरोमी को हम पाते है।

"मोरोमी : न मैं उल्फा से मिली हुँ...और न मै उल्फा से हुँ...लेकिन दिल से मैं...मैं ही क्या ज्यादातर असम के लोग उनको सही समझते है। तुम जिन्हें आतंकवादी, बोलते हो उन्हें हम क्रांतिकारी कहते है। अगर दो पल के लिए भी तुम्हारे सीने में असमिज़ दिल आ जाए और फिर जब तुम से बातें सुनो कि तुम्हारा भी कलेजा फट जायेगा।... लेकिन तुम लोग तो।"[112] मोरोमी का दिल असाम के लिए थडकता है। अपने राज्य की और वहाँ की जनता से उसका अदम्य प्यार यहाँ उभारा है। उल्फावालों से उसके मन में आदर-सम्मान है क्योंकि वे ही असम के रक्षक है।बदलते सरकारों से अपने राज्य की छुटकारा, उनके लिए अप्राप्य है। असम की ज़िन्दगी उसे ऐसी एक हालात बनाती है कि वे अपने ऊपर किसी भी अन्याय सह

[112] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.48

नहीं पाती। अपने राज्य से मोरोमी का अपार, असीमित आदर यहाँ स्पष्ट झलकता है। मोरोमी भारतीय सेना को नफ्रत करती है।

उसके चरित्र की एक ओर विशेषता है परिस्थितियों से सजगता। अपने पति और बेटे की मृत्यु का कारण जिस भारतीय सेना है, उसीसे वह घृणा कायम रखती है। उसकी राय में भारतीय सेना रेपिस्ट है तथा गुण्डों से कमीना आचरण रखने वाले है।

"मोरोमी : क्यों झूठ है?... अखबार नहीं पढते? कितनी आसामी औरतों का Rape किया है...हिन्दुस्तानी पुलिस ने और फौज ने...। हरामजादे।"[113] मोरोमी के चरित्र की खूबी है सद्‌चरित्रों से संपर्क में आने पर उसका मनपरिवर्तन। में गेयकवाड जैसे ईमानदार सैनिकों के व्यवहारों से मोरोमी का मन परिवर्तित होती है। भारतीय सेना के प्रति उसके मन में जो घृणा मौजूद थी, सब मिट जाती है। इस प्रकार हम मोरोमी को एक आदर्श पात्र के रूप में देख सकते है। "मोरोमी अनेक सवाल आर्मी के सामने उपस्थित कर असामी लोगों के ऊपर हो रहे अन्याय, अत्याचार का वर्णन राजनेताओं की पूर्वाचल राज्य के प्रति उदासीनता को उजागर करती है।"[114] मोरोमी में देशप्रेम तथा विद्रोह एक साथ झलकता है। अपने आत्मसम्मान पर गर्वीली मोरोमी किसी के आगे सिर झुकाने को तैयार नहीं होती। मोरोमी का चरित्र एक निराले व्यक्तित्व से संपन्न है।

---

[113] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट- नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.45

[114] हिन्दी महिला नाटककार - भगवान जाधव, पृ.139

5.16.2.3 हव राठी

हव राठी आपरेशन क्लाउडबर्स्ट नाटक के प्रमुख पात्रों में एक है। एक नकारात्मक व्यक्तित्व के रूप में राठी को नाटक में देख पाते है। नाटक के शुरु में ही वह अपने भिन्न स्वर और प्रतिकूल मनोभाव से मेजर गोयकवाड से विद्वेष पाते रहते है। छोटी-छोटी बातों के लिए वे अपने सहयोगियों से झगडा करते है और रूढता है, ताडन पाता भी रहता है। एक मौके पर वह मोरोमी से बुरा व्यवहार भी करता है, जो सैनिकों के बदचलन को सूचित करता है। ऐसे भी सैनिक है जो मौका मिलने पर अत्याचार करते रहते है। ऐसे एक व्यवहार के कारण वह कार्ट मार्शल तक पहुँचता है। और किसी का सपोर्ट न मिलने पर वह ज्यादा आक्रामक दिखाई पडता है। अपना सुध-बुध खोकर विद्रोही बन जाता है और सेना पर अपना द्वेष उदारता है-

> "हव राठीः दो साल हो गये सालों ने छुट्टी नहीं दी। ना बहिन की शादी में जा पाया। ना माँ के बीमार होने पे। और पोस्टिंग भी ऐसी जगह पर करते है जहाँ हर वक्त टेंशन किसी भी क्षण गोली लग सकती है। न रात को नींद न दिन को चैन।"[115]

राठी की शिकायत आम सैनिक की तो है लेकिन यहाँ परिवेशगत मनोव्यापार को प्रस्तुत करती है। उसके लिए अपने ऊपर किसी का रुआब असह्य है। इस कारण से वह एक आदर्शहीन चरित्र रह जाता है। उनका अंत भी बहुत दर्ददायक है कि सैनिकों से हुए गुत्थम गुत्थी में वह मारा जाता है। ऐसे हम कह सकते है कि हव

---

[115] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.55

राठी एक कर्तव्यहीन, आदर्शहीन सैनिक के रूप में नाटक भर में अपनी भूमिका का परिचय देते है।

5.16.3 संवाद एवं भाषा

आपरेशन क्लाउडबर्स्ट नाटक, संवाद एवं भाषागत दृष्टि से स्तरीय है। नाटक के संवादों में भावों की तीव्रता है। मोरोमी के ज्यादातर संवाद उसके तीव्र मानसिक संघर्ष के परिचायक है। पूर्वोत्तिर राज्यों की जनता के प्रति सरकार तथा शासकों की अवज्ञा के प्रति उसका दिल कटु रह जाता है।

"मोरोमी - .... तुम जिन्हें आतंकवादी बोलते हो उन्हें हम क्रांती कारी कहते है... अगर दो पल के लिए तुम्हारें सीने में आसामीज़ दिल आ गये और फिर जब तुम ये बातें सुनो कि आसाम की जनता पर क्या-क्या जन्म हुए है.. तो फिर तुम्हारा भी कलेजा फट जायेगा।..."[116]

सैनिकों की नरम मानसिकता के प्रसंग में भी संवादों में भावों की तीव्रता है। पात्रानुकूलता तथा प्रसंगानुकूलता संवादों की अन्य विशेषतायें है। आतंकवाद जैसे विषय की गंभीरता संवादों में झलकती है। छोटे-छोटे संवादों के साथ-साथ, लंबे विश्लेषणात्मक संवाद भी है। भाषा की दृष्टि से कहूँ तो, अलग पात्रों के चरित्रों के लिए अलग भाषाओं का प्रयोग हुआ है। अंग्रेज़ी, पंजाबी, उर्दु, मराठी असमी आदि कई भाषाओं का प्रयोग नाटक में मिलते है। सैनिक परिवेश से जुडे होने के कारण नाटक में भाषा की गंभीरता भी मिलती है। मेजर गेयकवाड की भाषा में ऐसी

[116] आपरेशन क्लाउडबर्स्ट - नादिरा ज़हीर बब्बर, पृ.48

विशेषता ज्यादा मिलती है। भाषा आम तौर पर स्तरीय है, फिर भी हव राठी तथा मोरोमी के संदर्भो में अपरिष्कृत शब्दों का प्रयोग हुआ है।

5.16.4 रंगमंचीयता

रंगमंचीयता की दृष्टि से आपरेशन क्लाउडबार्स्ट अत्यंत सक्षम है। नाटक में अंक-दृश्य का पुराना ढाँचा मिल नहीं पाता है। एक ही दृश्य बंध पर पूरा नाटक मंचित है। मंच पर उजडे हुए कैंप की सज्जा की गयी है। एक बडा सा कमरा तथा एक बरामदा के निर्माण मंच पर किया है। चारों और घना जंगल दिखाया है। नाटक में मंच सज्जा आसानी से कर सकते है। वायरलेस सेट, नक्शा, डम्मी, मेशीन गण, दूरबीन, चाकलेट, फर्स्ट एड बाक्स टार्च आदि मंचसज्जा के लिए ज़रूरी सामग्रियाँ है। प्रस्तुत नाटक में प्रकाश-व्यवस्था में नये प्रयोग है। नाटक के शुरू में अंधेरा है फिर हल्की रोशनी। बीच-बीच में प्रकाश फेड आउट होता है और अंत में अधेरा है। बीच में बिजली के कडकने की इशारा प्रकाश-योजना में खासियत है। बीच में प्रकाश का उजला होना और मद्धिम होना प्रसंगानुसार किया गया है जो प्रकाश संबंधी खूबी है। आपरेशन क्लाउडबर्स्ट का मंचन अति कुशलता से हुआ है। “सामान्य असम निवासियों तथा हिन्दुस्तानी फौज की अंतर्निहित कुंठित भावनाओं की अनेक पर्तों को मंच पर सफलता से उद्घाटित कर देना लेखिका की कल्पनाशीलता एवं रंग कुशलता का प्रमाण है।”[117] नादिरा जी के निर्देशन में एकजुट द्वारा ही इसका मंचन हुआ है।

---

[117] आधुनिक भारतीय नाट्यविमर्श - जयदेव तनेजा, पृ.292

निष्कर्षत

हम कह सकते है कि कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में कथ्य के समान ही शिल्पपक्ष का भी अपना विशिष्टता स्थान है। इनके नाटकों में कथ्य, समसामयिक भ्रष्ट परिस्थिति और उसमें दहकती आज की ज़िन्दगी है। कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर की विशेषता यह है कि उनके नाटक किसी एक विषय की सीमा मे कैद न रहकर समसामयिक, बहुआयामी विषयों को अपने नाटकों में कथ्य के रुप में चुना है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है', 'संस्कार को नमस्कार', 'रावणलीला', 'सकुबाई', 'सुमन और सना' जैसे इनके नाटक अपने विषयगत महत्व के कारण बहुत मर्मस्पर्शी हैं।

चरित्र चित्रण की खूबियाँ इनके नाटकों की ओर एक विशेषता है। माधोसिंह, संस्कार चंद, रामदास, दयाशंकर, सुल्ताना जैसे यथार्थपरक चरित्रों की सृष्टि के ज़रिए चरित्र-चित्रण में यथार्थता लाने में वे सफल हुए है। इनके हर एक पात्र अपने चरित्र विशेष के कारण अलग अस्तित्व रखते है। शेफाली, सकुबाई, वर्षा पोटे, श्याम, मै. गोयकवाड जैसे कई आदर्श पात्र है जो अपने आदर्श चरित्र के कारण नाट्य साहित्य में हमेशा के लिए अपना अस्तित्व रख्रते है। कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर, दोनों ने ही अनेक उत्कृष्ट कथा पात्रों की सृष्टि की है जो आज भी प्रासंगिक है। संवाद-भाषागत गरिमा भी इनके नाटकों को अतुल्य बनाते है। कथ्यगत विशिष्टता को नाटक की भाषा में बरकरार रख्रने की कोशिश इनके नाटकों के विश्लेषण से श्रम साध्य है। संवादों की नाट्य भाषा से संक्षिप्तता, उद्देश्यात्मकता, दृश्यात्मकता, चित्रात्मकता, व्यंग्यात्मकता आदि विशेषताओं को देख्रा जा सकता है। इनके नाटक रंगमंच के संस्कारों को आत्मसात करके दृश्य कौशल के

अनमोल प्रयोगों को उजागर करते है। ‘संस्कार को नमस्कार’, ‘पवनचतुर्वेदी की डायरी’, ‘सकुबाई’ आदि नाटक रंगसंस्कारों की प्रयोगधर्मिता का परिचायक रहे है। परंपरागत अंक विभाजन ज्यादातर नाटकों में नहीं है। दृश्यविधान का चमत्कार नाटकीय उत्कृष्टता का परिचायक है। ‘सकुबाई’ जैसे एकल नाट्य रंग कौशल का नगमा है। अतः दोनों के नाटक शिल्पपरक सीमाओं को पहचानकर अपनी पूर्ण क्षमता का परिचायक रहे हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अपने इन रंगनाटकों के ज़रिए कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर दोनों निश्चय ही अपने रंगकर्म को पहचान कर उसका निर्माण करने कामयाब हुई हैं।

उपसंहार

'हिन्दी का महिला नाटकः एक अध्ययन (कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के विशेष संदर्भ में' नामक विषय पर शोधकार्य करने पर महिला नाटक तथा उससे संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान आकर्षित हुआ है। साहित्य जितना सामाजिक तथा लोकधर्मी है, नाटक का स्थान उससे भी कुछ आगे है। एक रंगमंचीय विधा होने के कारण नाटक का अपना अलग महत्व है जो साहित्य की अन्य विधाओं को अप्राप्य है। नाटक एक ऐसी विधा है जिसका विकास संस्कृत और पाश्चात्य नाट्य सिद्धांतों के आधार पर हुआ है। ऐसे सुविकसित नाट्य-विधा की परंपरा में भारतेन्दु युग अपना महत्व रखता है। उसके बाद जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण मिश्र, मोहन राकेश, हर्कृष्णप्रेमी, लक्ष्मीनारायण लाल आदि नाटककार स्वतंत्रतापूर्व नाटककारों की कोटि में ख्याति प्राप्त है। स्वतंत्रता के बाद नाटक साहित्य विकास की और उन्मुख हुआ। स्वातंत्र्योत्तर काल में विष्णु प्रभाकर, मुद्राराक्षस, शंकर शेष, सुरेन्द्र वर्मा, विभुकुमार, सुशीलकुमार सिंह, हबीब तनवीर, बादल सरकार, विजय तेन्दुलकर, भीष्मसाहनी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, हमीदुल्ला, रमेशबक्षी, मन्नु भंडारी, मृदुलागर्ग, मृणाल पांडे, मणिमधुकर, शांती महरोत्रा, कुसुम कुमार, त्रिपुरारी शर्मा, जैसे सशक्त नाटककारों ने नाट्य परंपरा को आगे बढाया है। जिस प्रकार समय का बदलाव सामाजिक गतिविधियों में परिवर्तन खडा करता है उसी प्रकार साहित्य में भी कालानुक्रम परिवर्तन आ पहुँचा है। ऐसी गतिविधियों में सबसे प्रमुख तथा अनिवार्य एक था महिला-लेखन। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों में आये परिवर्तन के फलस्वरुप नारियाँ अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए उत्सुक हुई। जिसकी नतीजा यह है कि नाटक के क्षेत्र में भी महिलाओं की सशक्त उपस्थिति हो गयी। नाटक साहित्य में महिला लेखन की परंपरा स्वतंत्रतापूर्व श्रीमती लाली देवी से शुरु होती है। उसका नाटक 'गोपीचंद' 1934 में

प्रकाशित हुआ था। उसके बाद श्रीमती अनुरुपा देवी, श्रीमती तरामित्रा आदि स्वतंत्रतापूर्व महिला नाटककारों में प्रमुख रहीं। स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद की महिला नाटककारों में मन्नु भंडारी, शांती महरोत्रा, मृदुला गर्ग, त्रिपुरारी शर्मा आदि नाटककारों ने महिला नाट्य लेखन की इस परंपरा को ओर अधिक संपन्न तथा समृद्ध किया है। इनके नाटकों की विशेषता यह रही कि वे समूचे समाज की गतिविधियों को पहचानकर, समाज तथा राष्ट्र की सारी समस्याओं को आत्मसात किये हैं। इनके राह पर चलने के लिए मृणाल पांडे, गिरीश रस्तोगी, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, विमला प्रभाकर, कुसुम कुमार, नादिरा ज़हीर बब्बर, आयशा अहम्मद जैसी अनेक लेखिकायें निकल पडी और अपने उद्यम में विजयी भी हुई है। इन सबों का नाट्य-साहित्य हिन्दी महिला लेखन को समृद्ध करने के साथ-साथ अपने लेखनीय गरिमा का परिचायक भी रहा।

हिन्दी नाट्य साहित्य में कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर की भूमिका विशेष मायना रखती है। मौलिक नाट्य लेखन के क्षेत्र में दोनों ने अपनी दक्षता का परिचय दिया है। इनके नाटक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक धरातल के बदलते मूल्यों तथा आस्थाओं की आज्ञानुवर्ती रह गये हैं। कुसुम कुमार के सात नाटक उपलब्ध है वे हैं- ‘ओम क्रांती क्रांती’, ‘सुनो शेफाली’, ‘संस्कार को नमस्कार’, ‘दिल्ली ऊँचा सुनती है’, ‘पवन चतुर्वेदी की डायरी’, ‘रावणलीला’, ‘लश्कर चौक’ आदि। इसके सभी नाटकों में समाज की सारी गतिविधियों का प्रतिफलन हुआ है। ‘ओम क्रांती क्रांती’ शिक्षा व्यवस्था की बदचलन को रेखांकित करता है तो ‘सुनो शेफाली’ राजनेताओं की कपटता का पोल खोलता है। ‘संस्कार को नमस्कार’ कपट समाजसेवियों के मुखौटे फाड देता है। वैयक्तिक असफलता तथा

परिस्थितियों से जूझनेवाला आम आदमी 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' के केन्द्र में है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक सरकारी अव्यवस्थाओं पर सघन प्रहार करता है। 'रावणलीला' कलाकारों की तथा नाट्यमंडलियों की जर्जरता का प्रत्यक्ष रुप उभारता है। 'सांप्रदायिकता' की विपत्ती का एहसास 'लश्कर चौक' नाटक का इतिवृत्त है।

नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में प्रमुख है 'सकुबाई', 'दयाशंकर की डायरी', 'जी जैसी आपकी मर्जी', 'सुमन और सना', 'आपरेशन क्लाउट बर्स्ट'। नादिरा जी के सभी नाटक अपने परिवेश के धड़कन से परिचित है। 'सकुबाई' तथा 'दयाशंकर की डायरी' एक व्यक्ति की अस्फलता तथा उसके कारणों पर प्रकाश डालता है। आतंकवाद और धार्मिक सांप्रदायिकता के दुष्परिणामों को 'सुमन और सना' तथा 'आपरेशन क्लाउट बर्स्ट' उकेरते हैं। दोनों नाटककार ने अपने समय और परिवेश को ध्यान में रखकर, अपने सामाजिक दायित्व को निभाया है। दोनों के नाटक अपने युग की समस्याओं को उकेरने में सफल हुए है। कुसुम कुमार के नाटकों में राज-सामाजिक नेताओं के पोल खोले है। समाज के कल्याण के लिए जो बाध्य है, उन्हीं से समाज का सत्यानाश हम देख पाते हैं। समाज सेवा को अपने स्वार्थ जीवन की पीढी बनाने वाले नेताओं की विकल नीतियों पर नाटक व्यंग्य करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत के अभिशापों में रिश्वतखोरी, प्रशासनिक भ्रष्टाचार आदि प्रमुख है। इनके नाटकों में ऐसी समस्याओं का विशद रुप से प्रकटीकरण है। आदमी की ज़िन्दगी पर ही, ऐसे सामाजिक अन्यायों का दूषित फल ज्यादा पडता है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' इसका स्पष्ट उदाहरण है। पूर्वोत्तर राज्यों की समस्या, शरणार्थियों का दर्दभरा जीवन, सांप्रदायिकता से उजडा वातावरण, आतंकवाद का भीषण

परिणाम आदि मन को छूनेवाली समस्यायें इनके नाटकों में भरी पडी है। वैयक्तिक असफलता, विवाह-संबंधों में बिखराव, तलाक की समस्या, भ्रूणहत्या, लिंगविवेचन जैसे कटु यथार्थ का स्पष्ट रूप से नाटक वर्णन करते हैं। वर्तमान परिवेश के परिवर्तन के साथ ही आर्थिक शैक्षिक क्षेत्र में भी अनेक परिवर्तन उठ खडे हुए है। जिसके फलस्वरूप महंगाई, गरीबी आदि प्रश्न वर्तमान जीवन को तंग करते हैं। ऐसी आर्थिक मामलों को भी नाटककारों ने अपने नाटकों में चित्रित किये हैं। आम आदमी को कष्टता की ओर थकेलनेवाली आर्थिक नीतियों पर नाटक व्यंग्य करते हैं। शिक्षा का व्यावसायीकरण, अध्यापकों में कर्तव्य का अभाव आदि शिक्षा संबंधी प्रश्नों पर भी ये नाटककार सजग हुए है। आम तौर पर हम कह सकते है कि ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिसकी ओर दोनों नाटककारों का ध्यान न रहा है। दोनों नाटककारों ने अपने-अपने नाटकों के ज़रिए आम आदमी की ज़िन्दगी को निकट लाने की कोशिश की है। इनके नाटक सचमुच युगीन यथार्थ का आईना रह गया है।

स्त्री-विमर्श हिन्दी-साहित्य में एक नई पहलू है, जिसमें नारियों के लिए आवाज उठायी जाती है। शिक्षा का प्रचार-प्रसार, पश्चिमी सभ्यता का फैलाव, नई वैज्ञानिक उपलब्धियाँ आदि के कारण नारियों के परिवेश तथा कार्यमंडल में बहुत परिवर्तन हुए है। फलस्वरूप अपने अधिकार के लिए खडे होने को वे हमेशा आगे खडी रहीं। नारी समस्याओं को संवेदन शील रूप में अभिव्यक्ति देने में पुरुष लेखन से ज्यादा स्त्रीलेखन ही सक्षम दीख पडती है। कुसुम कुमार के 'सुनो शेफाली' 'संस्कार को नमस्कार', 'पवन चतुर्वेदी की डायरी', 'लश्कर चौक' तथा नादिरा ज़हीर बब्बर के 'सकुबाई', 'जी जैसी आपकी मर्जी', 'सुमन और सना' आदि नाटक स्त्री विमर्श के सतह पर पूर्णतः जीत पाये हैं। यौनशोषण जैसी सामाजिक

कुरीतियों का चित्रण दोनों नाटककारों ने अत्यधिक सशक्त रूप में किया है। इसके अलावा अशिक्षित नारियों की पीडा, लिंगभेद की समस्या, भ्रूणहत्या जैसी वर्तमान समाज की समस्याओं को भी नाटकों में प्रमुख स्थान दिया गया है। नारी की रूदन कथा के साथ-साथ उसकी जीत की कहानियों को भी ये नाटककार, हमारे सम्मुख रखते हैं। 'सकुबाई' नाटक इसका प्रत्यक्ष नमूना है। नारी से संबंधित सारे पहलुओं पर प्रकाश डालने में दोनों के नाटक सफल हुए हैं।

शिल्पपरक खूबियों में कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक स्तरीय देख पाते हैं। नाटक में शिल्पपक्ष के महत्व को ध्यान में रखकर उन्होंने शिल्प के नये आयामों को स्वीकार किया है। दोनों नाटककार कल्पना के उडान भरने के बदले आम आदमी के जीवन की कथा को अपने नाटकों में वस्तु पक्ष के रूप में चुन लिया है। आम आदमी के जीवन की परेशानियों के कद्र करके, उन्हीं परेशानियों को इनके नाटकों ने केन्द्र में रखा है। कुसुम कुमार तथा नादिरा ज़हीर बब्बर के सारे नाटक इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है', 'पवन चतुर्वेदी की डायरी', 'सुनो शेफाली', 'सकुबाई', 'जी जैसी आपकी मर्जी' आदि उनमें प्रमुख है। पात्र और चरित्र की अवधारणा को ध्यान में लेते समय देख पाते हैं कि उन्होंने अपने पात्रों का सृजन यथार्थता के फर्श पर किये हैं। उनके नाटकों के पात्र उच्च चरित्रवाले तथा आम वातावरण में पनपे हैं। आदर्श तथा यथार्थ पात्रों की भूमिका से संपन्न है उनके नाटक। 'सुनो शेफाली' की 'शेफाली', 'ओम क्रांती क्रांती' की 'थैलमा', 'लश्कर चौक' में 'कान्हा', 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में 'माधोसिंह', 'संस्कार को नमस्कार' में 'संस्कार चंद' जैसे पात्र, इनके नाटकों के प्रमुख पात्रों में आते है। कुसुम कुमार के नारी पात्र विद्रोही भूमिका निभानेवाली है तथा अपने

आत्मसम्मान को बनाये रखने वाली है। नादिरा की नायिकायें आत्मसम्मान को कायम रखने की कोशिश करती भी है तथा अपने उद्यम में कभी-कभी पराजित भी दीख पडती है। संवाद और भाषा की दृष्टि से विविधता इनके नाटकों में प्राप्त है। कथ्यानुकूलता, व्यंग्यात्मकता पात्रानुकूलता जैसी संवादगत विशेषतायें इनके नाटकों में उपलब्ध है। लंबे, वर्णनात्मक संवादों को प्रयोग इनके नाटकों में प्रायः मिलते हैं। लेकिन ऐसे संवाद नाटक की गरिमा बढाने में काबिल सिद्ध हुए हैं। 'सकुबाई', 'दयाशंकर की डायरी' जैसे एकल नाट्यों में संवाद वर्णनात्मक रहा है जो परिवेश के अनुकूल है। भाषागत विशेषताओं में विविधता दोनों के नाटकों में खूब मिलती है। सरल भाषा का प्रयोग प्रायः अधिक नाटकों में मिलता है। व्यंग्यात्मकता, कथ्यानुकूलता, चित्रात्मकता आदि भाषा की विशेषताओं में प्रमुख है। हिन्दी भाषा के अलावा, उर्दु, खडीबोली, मराठी, अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी नाटक में ज्यादा मिल पाता है। रंगमंचीयता नाटक की अपनी विशेषता है अपना धरोहर है। कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक रंगमंचीयता की सारी खूबियों से भरे पडे हैं और इसलिए ही रंगमंच पर खडे उतरे हैं। अंकविभाजन की परंपरागत तरीका इनके कुछ नाटकों में उड गया है। 'दयाशंकर की डायरी', 'पवन चतुर्वेदी की डायरी', 'लश्करचौक', 'जी जैसी आपकी मर्जी' आदि इसका उदाहरण है। 'दयाशंकर की डायरी' में डायरी के पन्ने के पलटने के साथ-ही दृश्य बदलता है। 'सकुबाई', 'दयाशंकर की डायरी' आदि एकल नाट्य की शैली में लिखा गया है। प्रकाश-योजना, ध्वनि प्रयोग, गीत-योजना आदि रंगमंचीय तत्वों के प्रयोग में इनके नाटक कुछ अलग मायना रखते हैं। फेड आउट, फेट इन आदि नये प्रयोग इनके नाटकों में प्रकाश योजना के अन्तर्गत मिलते हैं। फ्लैश बैक शैली का प्रयोग दोनों ने

स्वीकारा है। ‘सुमन और सना’ कोल्लाश की शैली में लिखा गया है। कीर्तन, भजन, कोरस, बिजली का कडक जैसे प्रयोग इन दोनों के नाटकों की ध्वन्यात्मक विशेषतायें है। मंचन की दृष्टि से कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के सारे नाटक एक हद तक कामयाब हुए हैं। कुसुम कुमार के सारे नाटक कई प्रमुख निर्देशकों के निर्देशन में रंगमंच पर प्रस्तुत हुए हैं। नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक उन्हीं के द्वारा संचालित ‘एकजुट’ नामक संस्था द्वारा निर्देशित तथा अवतरित हुए। इस प्रकार कह सकते हैं कि कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर दोनों ने अपने नाटकों के माध्यम से अपनी सर्जनात्मक क्षमता का परिचय कराने के साथ-साथ अपने सामाजिक सरोकार को भी प्रत्यक्ष दर्शाये हैं। उनके हर एक नाटक समाज में आम आदमी की दर्द भरी कहानी का सच्चा बयान है जिसें अधिकारी वर्ग की आँखें खोलने की ताकत समाहित है। दोनों ने अपने नाटकों में वर्तमान समाज की विभिन्न समस्याओं को चित्रित करते हुए जनता को वस्तु स्थिति से अवगत कराकर सही रास्ता प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। अतः कह सकते है कि डॉ. कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर दोनों ने अपने नाटक के द्वारा पूरे हिन्दी नाट्य साहित्य केलिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

परिशिष्ट

(अ) कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों की सूची

(क) कुसुम कुमार के नाटक-

1. ओम क्रांती क्रांती- हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली, प्र.सं. 1992
2. छः मंच नाटक, दिल्ली ऊँचा सुनती है- किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1992
3. पवन चतुर्वेदी की डायरी- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1986
4. रावणलीला- सरस्वती विहार, नई दिल्ली, प्र.सं. 1983
5. लश्कर चौक- सारांश प्रकाशन, दिल्ली
6. सुनो शेफाली- हिमाचल पुस्तक भंडार, दिल्ली, सं. 2004

(ख) नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक-

1. आपरेशन क्लाउड बर्स्ट- वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008
2. जी जैसी आपकी मर्जी - वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008
3. दयाशंकर की डायरी - वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008
4. सकुबाई - वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008
5. सुमन और सना - वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 2008

(आ) विवेच्य नाटकों की सूची

1. अपने हाथ बिकानी- डॉ. गिरीश रस्तोगी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1990
2. आओ तनिक प्रेम करें- विभा रानी, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2006

3. काठ की गाडी- त्रिपुरारी शर्मा, विद्या प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1986

4. काली बर्फ- कंधे पर बैठा था श्राप, मीराकांत, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, प्र.सं. 2006

5. चोर निकल के भागा- मृणाल पांडे, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, आवृत्ति 2007

6. ठहरा हुआ पानी- शांती महरोत्रा, लिपि प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1980

7. तुम लौट आओ- मृदुला गर्ग, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1981

8. नेपथ्य राग- मीरा कांत, भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली, प्र.सं. 2004

9. बहु/अकस पहेली- त्रिपुरारी शर्मा, राजकमल वेपरट बैक्स, दिल्ली, प्र.सं. 1984

10. भरत की आत्मा- विमला प्रभाकर, माया प्रकाशन, मंदिर जयपुर, प्र.सं. 1985

11. मैंने कब चाहा?- डॉ. मधु धवन, ऋषभ चरण जैन एवं सन्तति प्रकाशन, प्र.सं. 1992

(इ) संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरस्तु का काव्यशास्त्र- डॉ.नगेन्द्र, (अनुवाद अंश), हिन्दी अनुसंधान परिषद दिल्ली, सं. 1986

2. आधुनिक कथा साहित्य में नारी, स्वरुप और प्रतिभा- डॉ. विनय, शुभा चिटणीस, शुभेच्छा प्रकाशन, प्र.सं. 1995

3. आधुनिक परिवेश और नवलेखन- डॉ.शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, सं. 1971

4. आधुनिक भारतीय नाट्य विमर्श- डॉ. जयदेव तनेजा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2010
5. आधुनिक हिन्दी नाटक भाषिक और संवादीय रचना- गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, प्र.सं. 1982
6. आधुनिक हिन्दी परिवेश- डॉ. शिवप्रसाद सिंह ___________
7. आधुनिक भारत की सामाजिक समस्यायें- एच.एस. वर्डिया, राजस्थान हिन्दी-ग्रंथ अकादमी, जयपुर, प्र.सं. 1983
8. इक्कीसवीं सदी की ओर- सुमन कृष्णकांत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2001
9. उपन्यास का समाज शास्त्र- डॉ.विश्वंभर दयाल गुप्त, श्री पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, प्र.सं. 1979
10. औरत एक दृष्टिकोण- अमृता प्रीतम, सं. 1975
11. औरत के लिए औरत- नासिरा शर्मा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002
12. औरत के हक में- तसलीमा नसरीन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 2002
13. औरत होने की सजा, शोषण से हबी स्त्री देह- अरविंद जैन, विकास पेपर बैक्स, दिल्ली, प्र.सं. 2004
14. कबीर ग्रंथावली- अयोध्यासिंह उपाध्याय, संपा.पारसनाथ तिवारी, राका प्रकाशन, इलाहाबाद
15. कामकाजी भारतीय नारी- बदलते जीवन मूल्य और सामाजिक स्थिती- डॉ. प्रेमिला कपूर, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1989

16. कुसुम कुमार का नाट्य साहित्य- डॉ. दीपा कुचेकर, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2010

17. जीवन और साहित्य, चिंतन मनन- सं. डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र- डॉ. संपूर्णानंद अशोक प्रकाशन, दिल्ली

18. टूटता परिवेश- डॉ. गोविन्द चातक, राधाकृष्ण प्रकाशन

19. दलित साहित्य और सामाजिक न्याय- डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, समता प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1997

20. दूसरा दरवाजाः मेरा अपना रंगमंच- डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1966

21. द्वितीय युद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास- डॉ. लक्ष्मी सागर वाष्णै, राजपाल एंड सन्स, प्र.सं. 1973

22. नया नाटक उद्भव और विकास- नरनारायण राय, कादंबरी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2001

23. नाटक और रंगमंच- (सं) डॉ. शिवराम माली, डॉ. सुधाकर गोकाकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं. 1976

24. नाटक की साहित्य संरचना- गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली

25. नाट्य चिंतन, नये संदर्भ- डॉ. चंद्र, साहित्य रत्नालय, कानपुर, प्र.सं. 1987

26. नाट्य शास्त्र- आचार्य भरत, (सं) बलदेव उपाध्याय, चौखब्भा ओरियंटल, वाराणसी, सं. 1929

27. नये आयामों को तलाशती नारी, हिन्दी साहित्यकार और अभिव्यक्ति का संकट- (सं) दिनेश नंदिनी डालमिया, रश्मि मलहोत्रा, नवचेतन प्रकाशन, नयी दिल्ली, सं. 2003

28. प्रगतिवाद एक समीक्षा- धर्मवीर भारती ग्रंथावली 5, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं. 1998

29. भारतीय नाट्य साहित्य- डॉ. नगेन्द (सं), एस चांद एंड कंपनी, दिल्ली, सं. 1968

30. भारतेन्दु की नाट्यकला- प्रेमनारायण शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

31. भारतेन्दु के नाटकों का शास्त्रीय अनुशीलन- डॉ. गोपीनाथ तिवारी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1971

32. मनुस्मृति- पं.केशवप्रसाद (टीकाकार), सं. 1955

33. मंचीय यात्रा

34. युगबोध और हिन्दी नाटक- डॉ. सरिता वसिष्ठ, निर्मल प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1993

35. युद्ध यात्रायें- ग्रंथावली 7, धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

36. रामलीला परंपरा और शैलियाँ- डॉ. इंदुजा अवस्थी, रिचर्ड शेनर, सं. 1985

37. रंगदर्शन- डॉ. नेमी चंद्र जैन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, दू.आ. 2008

38. रंगमंच, कला और दृष्टि- गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1976

39. विद्रोह और साहित्य- नरेन्द्र मोहन, (सं) देवेन्द्र इस्सर, साहित्य भारती, दिल्ली, सं. 1985

40. वीरेन्द्र जैन के साहित्य में आधुनिक युगबोध- डॉ. रामकुमार शर्मा, दिल्ली लोकप्रकाश, सं. 2010

41. व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्येत्तर हिन्दी उपन्यास- डॉ. पुरुषोत्तम दुबे, अनुपमा प्रकाशन, बंबई, सं. 1973

42. व्यक्ति विवेक- महिम भट्‌ट, चौखंबा प्रकाशन, बनारस
43. शाब्दिता- धर्मवीर भारती, ग्रंथावली 6, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
44. शिक्षा मनोविज्ञान और मापन- डॉ. नाथूराम शर्मा, रतन प्रकाश मंदिर, आगरा, सं. 1961
45. समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचनासंदर्भ- अशोक हज़ारे, माधव सोनटक्के विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 1998
46. समकालीन हिन्दी नाटक- डॉ. जसवंत भाई, डी. पाड्य, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2005
47. समकालीन हिन्दी नाटक एवं नाटककार- डॉ. दिनेश चन्द्र वर्मा, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2003
48. समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच- डॉ. नरेन्द्र मोहन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2001
49. समकालीन हिन्दी नाटक (टूटता संदर्भ)- नर नारायण राय, सन्मार्ग प्रकाशन, प्र.सं. 1996
50. समकालीन हिन्दी रंगमंच- डॉ. रमिता गुप्त, विद्या प्रकाशन, कानपुर
51. समय और हम- जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1962
52. समसामयिक नाटकों में चरित्र सृष्टि- डॉ. जयदेव तनेजा, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1971
53. समसामयिक हिन्दी नाटक बहु आयामी व्यक्तित्व- डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया, साहित्यकार प्रकाशन, प्र.सं. 1979
54. साठोत्तरी हिन्दी नाटककार- लवकुमार लवलीन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 1979

55. साठोत्तरी हिन्दी नाटक- सविता चौधरी, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2012

56. सामाजिक विघटन- डॉ. गोपाल कृष्णा अग्रवाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1980

57. सामाजिक विघटन- डॉ. सत्येन्द्र त्रिपाठी, सामयिक प्रकाशन, प्र.सं. 1973

58. साहित्य का उद्देश्य- प्रेमचंद, सत्यसायी प्रकाशन, मथुरा, सं. 1980

59. साहित्य का श्रेय और प्रेय- जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं. 1972

60. साहित्य दर्पण- आचार्य विश्वनाथ, व्याख्याकार रामसुखदास, गीता प्रेस, कानपुर, सं.आ.सं. 2014

61. स्वातंत्र्योत्तर साहित्य का इतिहास- डॉ. बप्पुराम देसाई, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2000

62. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक संवेदना और शिल्प- डॉ. श्यामसुंदर पांडेय, ज्ञान प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2012

63. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी महिला नाटककारों के नाटकों में सामाजिक चेतना, श्रीमती विनोद जैन, के.के. प्रवित केशन्स, दिल्ली, प्र.सं. 2007

64. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रंग नाटक - डॉ. सुदर्श मजीठिया, नीरज बुक सेंटर, दिल्ली, प्र.सं. 1979

65. स्त्री उपेक्षिता- प्रभा खेतान, हिन्दी पॉकेट बुक्स प्रा. लि. दिल्ली, प्र.सं. 2002

66. स्त्री विमर्श- विनयकुमार पाठक, भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2005

67. स्त्री विमर्श, कलम और कूदाल के बहाने- डॉ. रमणिका गुप्ता, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2007

68. हिन्दी उपन्यासों में कामकाजी महिला- डॉ. रोहिणी अग्रवाल, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1992

69. हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग- डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी, प्र.सं. 1978

70. हिन्दी उपन्यास शिल्पः बदलते परिप्रेक्ष्य - डॉ. प्रेम भटनागर, अर्चना प्रकाशन, सं. 1973

71. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि- डॉ. आदर्श सक्सेना, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बिकानेर, सं. 1971

72. हिन्दी के प्रतीक नाटक और रंगमंच- डॉ. केदारनाथ सिंह, विद्या विहार, कानपुर, सं. 1985

73. हिन्दी नाटक आजकल- जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, द्वि. सं. सं. 2010

74. हिन्दी नाटक : उदभव और विकास- डॉ. दशरथ, ओझा, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, प्र.सं. 1970

75. हिन्दी नाटक और नाटककार- डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल, कु. नीलम, मसंद, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, सं. 2003

76. हिन्दी नाटक और रंगमंच समकालीन परिदृश्य- ब्रजराज किशोर, जनप्रिय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1988

77. हिन्दी नाटक और लक्ष्मी नारायण लाल की रंगयात्रा- डॉ. चन्द्र शेखर, आत्माराम एंड सन्स, दिल्ली, सं. 1988

78. हिन्दी नाटकों में समसामयिक परिवेश- डॉ. विपिन गुप्त, निर्मल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2000

79. हिन्दी नाट्य विमर्श- गुलाबराय, गया प्रसाद एंड सन्स, दिल्ली, सं. 1964

80. हिन्दी नाटक विमर्श- जया परांजपे, अतुल प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं. 2007

81. हिन्दी महिला नाटककार- भगवान जाधव, ए.बी.एस. पब्लिकेशन्स, वाराणसी, प्र.सं. 2013

82. हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा- जयदेव तनेजा, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2010

83. हिन्दी शब्द सागर- डॉ. श्यामसुन्दर दास, काशी नागरी प्रचार सभा, सं. 1965

84. हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास- डॉ. सुमन राजे, भारतीय ज्ञानपीठ, तृ.सं. 2006

85. हिन्दी साहित्य का इतिहास- (सं) डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपर बेक्स, प्र.सं. 1992, तीसवां सं. 2004

(ई) पत्र-पत्रिकायें

1. आलोचना- अप्रेल-जून, सन् 1961

2. कलावार्ता- सं कमला प्रसाद- अंक 103

3. कल्पना- नवलेखन- विशेषांक

4. दैनिक हिन्दुस्तान- 15 मई 1995

5. धर्मयुग- नारी अंक- 5 मार्च 1995

6. धर्मयुग- 3 नवंबर 1973

7. धर्मयुग- सितंबर 1979

8. धर्मयुग- गणतंत्र विशेषांक 1980

9. मानुषी- मई जून- 1996

10. रविवार- 28 दिसंबर-1986

11. राष्ट्रवाणी- सितबर-अक्टूबर- 2010

12. संबोधन त्रैमासिक- अक्टूबर- 2004

13. संबोधन त्रैमासिक- अक्टूबर- 2005

14. हंस- नवंबर- 2009

(उ) कोश

1. बृहद हिन्दी कोश- सं. कालिका प्रसाद, ज्ञानमंडल लिमिटड, वाराणसी, सं. 2005

(ऊ) अंग्रेज़ी किताबें

1. Form of Fictions - Van O' Corner

2. Suicide - Emile Durckeim- Trans. by N.A. Spaw and G. Simpson- The Free Press, Glencoe, Illinois.

3. Elementary Forms of the Religious life - The Free Press, Glencoe Illinois, 1947

4. Play Marking - William Archer

5. Ibson to Eliot - Raymond Williams

6. Theory of Drama - Allar Dyce Nicoll

7. Men, Women and Rape- Agasthe Overwill

8. Women in Indian Society- Rahna Galdeli

'हिन्दी का महिला नाटकः एक अध्ययन (कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के विशेष संदर्भ में' नामक विषय पर शोधकार्य करने पर महिला नाटक तथा उससे संबंधित कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ध्यान आकर्षित हुआ है। साहित्य जितना सामाजिक तथा लोकधर्मी है, नाटक का स्थान उससे भी कुछ आगे है। एक रंगमंचीय विधा होने के कारण नाटक का अपना अलग महत्व है जो साहित्य की अन्य विधाओं को अप्राप्य है। नाटक एक ऐसी विधा है जिसका विकास संस्कृत और पाश्चात्य नाट्य सिद्धांतों के आधार पर हुआ है। ऐसे सुविकसित नाट्य-विधा की परंपरा में भारतेन्दु युग अपना महत्व रखता है। उसके बाद जयशंकर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण मिश्र, मोहन राकेश, हर्कृष्णप्रेमी, लक्ष्मीनारायण लाल आदि नाटककार स्वतंत्रतापूर्व नाटककारों की कोटि में ख्याति प्राप्त है। स्वतंत्रता के बाद नाटक साहित्य विकास की और उन्मुख हुआ। स्वातंत्र्योत्तर काल में विष्णु प्रभाकर, मुद्राराक्षस, शंकर शेष, सुरेन्द्र वर्मा, विभुकुमार, सुशीलकुमार सिंह, हबीब तनवीर, बादल सरकार, विजय तेन्दुलकर, भीष्मसाहनी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, हमीदुल्ला, रमेशबक्षी, मन्नु भंडारी, मृदुलागर्ग, मृणाल पांडे, मणिमधुकर, शांती महरोत्रा, कुसुम कुमार, त्रिपुरारी शर्मा, जैसे सशक्त नाटककारों ने नाट्य परंपरा को आगे बढाया है। जिस प्रकार समय का बदलाव सामाजिक गतिविधियों में परिवर्तन खडा करता है उसी प्रकार साहित्य में भी कालानुक्रम परिवर्तन आ पहुँचा है। ऐसी गतिविधियों में सबसे प्रमुख तथा अनिवार्य एक था महिला-लेखन। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों में आये परिवर्तन के फलस्वरुप नारियाँ अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए उत्सुक हुई। जिसकी नतीजा यह है कि नाटक के क्षेत्र में भी महिलाओं की सशक्त उपस्थिति हो गयी। नाटक साहित्य में महिला लेखन की परंपरा स्वतंत्रतापूर्व श्रीमती लाली देवी से शुरु होती है। उसका नाटक 'गोपीचंद' 1934 में

प्रकाशित हुआ था। उसके बाद श्रीमती अनुरुपा देवी, श्रीमती तरामित्रा आदि स्वतंत्रतापूर्व महिला नाटककारों में प्रमुख रहीं। स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद की महिला नाटककारों में मन्नु भंडारी, शांती महरोत्रा, मृदुला गर्ग, त्रिपुरारी शर्मा आदि नाटककारों ने महिला नाट्य लेखन की इस परंपरा को ओर अधिक संपन्न तथा समृद्ध किया है। इनके नाटकों की विशेषता यह रही कि वे समूचे समाज की गतिविधियों को पहचानकर, समाज तथा राष्ट्र की सारी समस्याओं को आत्मसात किये हैं। इनके राह पर चलने के लिए मृणाल पांडे, गिरीश रस्तोगी, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्पा, विमला प्रभाकर, कुसुम कुमार, नादिरा ज़हीर बब्बर, आयशा अहम्मद जैसी अनेक लेखिकायें निकल पडी और अपने उद्यम में विजयी भी हुई है। इन सबों का नाट्य-साहित्य हिन्दी महिला लेखन को समृद्ध करने के साथ-साथ अपने लेखनीय गरिमा का परिचायक भी रहा।

हिन्दी नाट्य साहित्य में कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर की भूमिका विशेष मायना रखती है। मौलिक नाट्य लेखन के क्षेत्र में दोनों ने अपनी दक्षता का परिचय दिया है। इनके नाटक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक धरातल के बदलते मूल्यों तथा आस्थाओं की आज्ञानुवर्ती रह गये हैं। कुसुम कुमार के सात नाटक उपलब्ध है वे हैं- 'ओम क्रांती क्रांती', 'सुनो शेफाली', 'संस्कार को नमस्कार', 'दिल्ली ऊँचा सुनती है', 'पवन चतुर्वेदी की डायरी', 'रावणलीला', 'लश्कर चौक' आदि। इसके सभी नाटकों में समाज की सारी गतिविधियों का प्रतिफलन हुआ है। 'ओम क्रांती क्रांती' शिक्षा व्यवस्था की बदचलन को रेखांकित करता है तो 'सुनो शेफाली' राजनेताओं की कपटता का पोल खोलता है। 'संस्कार को नमस्कार' कपट समाजसेवियों के मुखौटे फाड देता है। वैयक्तिक असफलता तथा

परिस्थितियों से जूझनेवाला आम आदमी 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' के केन्द्र में है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक सरकारी अव्यवस्थाओं पर सघन प्रहार करता है। 'रावणलीला' कलाकारों की तथा नाट्यमंडलियों की जर्जरता का प्रत्यक्ष रुप उभारता है। 'सांप्रदायिकता' की विपत्ती का एहसास 'लश्कर चौक' नाटक का इतिवृत्त है।

नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में प्रमुख है 'सकुबाई', 'दयाशंकर की डायरी', 'जी जैसी आपकी मर्जी', 'सुमन और सना', 'आपरेशन क्लाउट बर्स्ट'। नादिरा जी के सभी नाटक अपने परिवेश के धड़कन से परिचित है। 'सकुबाई' तथा 'दयाशंकर की डायरी' एक व्यक्ति की अस्फलता तथा उसके कारणों पर प्रकाश डालता है। आतंकवाद और धार्मिक सांप्रदायिकता के दुष्परिणामों को 'सुमन और सना' तथा 'आपरेशन क्लाउट बर्स्ट' उकेरते हैं। दोनों नाटककार ने अपने समय और परिवेश को ध्यान में रखकर, अपने सामाजिक दायित्व को निभाया है। दोनों के नाटक अपने युग की समस्याओं को उकेरने में सफल हुए है। कुसुम कुमार के नाटकों में राज-सामाजिक नेताओं के पोल खोले है। समाज के कल्याण के लिए जो बाध्य है, उन्हीं से समाज का सत्यानाश हम देख पाते हैं। समाज सेवा को अपने स्वार्थ जीवन की पीढी बनाने वाले नेताओं की विकल नीतियों पर नाटक व्यंग्य करते हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत के अभिशापों में रिश्वतखोरी, प्रशासनिक भ्रष्टाचार आदि प्रमुख है। इनके नाटकों में ऐसी समस्याओं का विशद रुप से प्रकटीकरण है। आदमी की ज़िन्दगी पर ही, ऐसे सामाजिक अन्यायों का दूषित फल ज्यादा पडता है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' इसका स्पष्ट उदाहरण है। पूर्वोत्तर राज्यों की समस्या, शरणार्थियों का दर्दभरा जीवन, सांप्रदायिकता से उजडा वातावरण, आतंकवाद का भीषण

परिणाम आदि मन को छूनेवाली समस्यायें इनके नाटकों में भरी पडी है। वैयक्तिक असफलता, विवाह-संबंधों में बिखराव, तलाक की समस्या, भ्रूणहत्या, लिंगविवेचन जैसे कटु यथार्थ का स्पष्ट रुप से नाटक वर्णन करते हैं। वर्तमान परिवेश के परिवर्तन के साथ ही आर्थिक शैक्षिक क्षेत्र में भी अनेक परिवर्तन उठ खडे हुए है। जिसके फलस्वरूप महंगाई, गरीबी आदि प्रश्न वर्तमान जीवन को तंग करते हैं। ऐसी आर्थिक मामलों को भी नाटककारों ने अपने नाटकों में चित्रित किये हैं। आम आदमी को कष्टता की ओर थकेलनेवाली आर्थिक नीतियों पर नाटक व्यंग्य करते हैं। शिक्षा का व्यावसायीकरण, अध्यापकों में कर्तव्य का अभाव आदि शिक्षा संबंधी प्रश्नों पर भी ये नाटककार सजग हुए है। आम तौर पर हम कह सकते है कि ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिसकी ओर दोनों नाटककारों का ध्यान न रहा है। दोनों नाटककारों ने अपने-अपने नाटकों के ज़रिए आम आदमी की ज़िन्दगी को निकट लाने की कोशिश की है। इनके नाटक सचमुच युगीन यथार्थ का आईना रह गया है।

स्त्री-विमर्श हिन्दी-साहित्य में एक नई पहलू है, जिसमें नारियों के लिए आवाज उठायी जाती है। शिक्षा का प्रचार-प्रसार, पश्चिमी सभ्यता का फैलाव, नई वैज्ञानिक उपलब्धियाँ आदि के कारण नारियों के परिवेश तथा कार्यमंडल में बहुत परिवर्तन हुए है। फलस्वरूप अपने अधिकार के लिए खडे होने को वे हमेशा आगे खडी रहीं। नारी समस्याओं को संवेदन शील रूप में अभिव्यक्ति देने में पुरुष लेखन से ज्यादा स्त्रीलेखन ही सक्षम दीख पडती है। कुसुम कुमार के 'सुनो शेफाली' 'संस्कार को नमस्कार', 'पवन चतुर्वेदी की डायरी', 'लश्कर चौक' तथा नादिरा ज़हीर बब्बर के 'सकुबाई', 'जी जैसी आपकी मर्जी', 'सुमन और सना' आदि नाटक स्त्री विमर्श के सतह पर पूर्णतः जीत पाये हैं। यौनशोषण जैसी सामाजिक

कुरीतियों का चित्रण दोनों नाटककारों ने अत्यधिक सशक्त रूप में किया है। इसके अलावा अशिक्षित नारियों की पीडा, लिंगभेद की समस्या, भ्रूणहत्या जैसी वर्तमान समाज की समस्याओं को भी नाटकों में प्रमुख स्थान दिया गया है। नारी की रूदन कथा के साथ-साथ उसकी जीत की कहानियों को भी ये नाटककार, हमारे सम्मुख रखते हैं। 'सकुबाई' नाटक इसका प्रत्यक्ष नमूना है। नारी से संबंधित सारे पहलुओं पर प्रकाश डालने में दोनों के नाटक सफल हुए हैं।

शिल्पपरक खूबियों में कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक स्तरीय देख पाते हैं। नाटक में शिल्पपक्ष के महत्व को ध्यान में रखकर उन्होंने शिल्प के नये आयामों को स्वीकार किया है। दोनों नाटककार कल्पना के उडान भरने के बदले आम आदमी के जीवन की कथा को अपने नाटकों में वस्तु पक्ष के रूप में चुन लिया है। आम आदमी के जीवन की परेशानियों के कद्र करके, उन्हीं परेशानियों को इनके नाटकों ने केन्द्र में रखा है। कुसुम कुमार तथा नादिरा ज़हीर बब्बर के सारे नाटक इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है', 'पवन चतुर्वेदी की डायरी', 'सुनो शेफाली', 'सकुबाई', 'जी जैसी आपकी मर्जी' आदि उनमें प्रमुख है। पात्र और चरित्र की अवधारणा को ध्यान में लेते समय देख पाते हैं कि उन्होंने अपने पात्रों का सृजन यथार्थता के फर्श पर किये हैं। उनके नाटकों के पात्र उच्च चरित्रवाले तथा आम वातावरण में पनपे हैं। आदर्श तथा यथार्थ पात्रों की भूमिका से संपन्न है उनके नाटक। 'सुनो शेफाली' की 'शेफाली', 'ओम क्रांती क्रांती' की 'थैलमा', 'लश्कर चौक' में 'कान्हा', 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' में 'माधोसिंह', 'संस्कार को नमस्कार' में 'संस्कार चंद' जैसे पात्र, इनके नाटकों के प्रमुख पात्रों में आते है। कुसुम कुमार के नारी पात्र विद्रोही भूमिका निभानेवाली है तथा अपने

आत्मसम्मान को बनाये रखने वाली है। नादिरा की नायिकायें आत्मसम्मान को कायम रखने की कोशिश करती भी है तथा अपने उद्यम में कभी-कभी पराजित भी दीख पडती है। संवाद और भाषा की दृष्टि से विविधता इनके नाटकों में प्राप्त है। कथ्यानुकूलता, व्यंग्यात्मकता पात्रानुकूलता जैसी संवादगत विशेषतायें इनके नाटकों में उपलब्ध है। लंबे, वर्णनात्मक संवादों को प्रयोग इनके नाटकों में प्रायः मिलते हैं। लेकिन ऐसे संवाद नाटक की गरिमा बढाने में काबिल सिद्ध हुए हैं। 'सकुबाई', 'दयाशंकर की डायरी' जैसे एकल नाट्यों में संवाद वर्णनात्मक रहा है जो परिवेश के अनुकूल है। भाषागत विशेषताओं में विविधता दोनों के नाटकों में खूब मिलती है। सरल भाषा का प्रयोग प्रायः अधिक नाटकों में मिलता है। व्यंग्यात्मकता, कथ्यानुकूलता, चित्रात्मकता आदि भाषा की विशेषताओं में प्रमुख है। हिन्दी भाषा के अलावा, उर्दु, खडीबोली, मराठी, अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी नाटक में ज्यादा मिल पाता है। रंगमंचीयता नाटक की अपनी विशेषता है अपना धरोहर है। कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक रंगमंचीयता की सारी खूबियों से भरे पडे हैं और इसलिए ही रंगमंच पर खडे उतरे हैं। अंकविभाजन की परंपरागत तरीका इनके कुछ नाटकों में उड गया है। 'दयाशंकर की डायरी', 'पवन चतुर्वेदी की डायरी', 'लश्करचौक', 'जी जैसी आपकी मर्जी' आदि इसका उदाहरण है। 'दयाशंकर की डायरी' में डायरी के पन्ने के पलटने के साथ-ही दृश्य बदलता है। 'सकुबाई', 'दयाशंकर की डायरी' आदि एकल नाट्य की शैली में लिखा गया है। प्रकाश-योजना, ध्वनि प्रयोग, गीत-योजना आदि रंगमंचीय तत्वों के प्रयोग में इनके नाटक कुछ अलग मायना रखते हैं। फेड आउट, फेट इन आदि नये प्रयोग इनके नाटकों में प्रकाश योजना के अन्तर्गत मिलते हैं। फ्लैश बैक शैली का प्रयोग दोनों ने

स्वीकारा है। ‘सुमन और सना’ कोल्लाश की शैली में लिखा गया है। कीर्तन, भजन, कोरस, बिजली का कडक जैसे प्रयोग इन दोनों के नाटकों की ध्वन्यात्मक विशेषतायें है। मंचन की दृष्टि से कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के सारे नाटक एक हद तक कामयाब हुए हैं। कुसुम कुमार के सारे नाटक कई प्रमुख निर्देशकों के निर्देशन में रंगमंच पर प्रस्तुत हुए हैं। नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटक उन्हीं के द्वारा संचालित ‘एकजुट’ नामक संस्था द्वारा निर्देशित तथा अवतरित हुए। इस प्रकार कह सकते हैं कि कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर दोनों ने अपने नाटकों के माध्यम से अपनी सर्जनात्मक क्षमता का परिचय कराने के साथ-साथ अपने सामाजिक सरोकार को भी प्रत्यक्ष दर्शाये हैं। उनके हर एक नाटक समाज में आम आदमी की दर्द भरी कहानी का सच्चा बयान है जिसें अधिकारी वर्ग की आँखें खोलने की ताकत समाहित है। दोनों ने अपने नाटकों में वर्तमान समाज की विभिन्न समस्याओं को चित्रित करते हुए जनता को वस्तु स्थिति से अवगत कराकर सही रास्ता प्रदान करने का सफल प्रयास किया है। अतः कह सकते है कि डॉ. कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर दोनों ने अपने नाटक के द्वारा पूरे हिन्दी नाट्य साहित्य केलिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

प्रथम अध्याय

हिन्दी का महिला नाटक : एक सर्वेक्षण

दूसरा अध्याय

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों का सामान्य परिचय

तीसरा अध्याय

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में युगीन संदर्भ

चौथा अध्याय

कुसुम कुमार और नादिरा ज़हीर बब्बर के नाटकों में स्त्री-विमर्श

पाँचवाँ अध्याय

शिल्पविधान

उपसंहार

संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्राक्कथन